भाकृअनुप
ICAR

इक्षु

राजभाषा पत्रिका

वर्ष 4 अंक 1
जनवरी-जून 2015

भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ
ISO 9001 : 2008

भाकृअनुप-भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

इक्षु-राजभाषा पत्रिका का "अंतर्राष्ट्रीय मृदा वर्ष-2015" को समर्पित विशेषांक

यत् ते भूमे विखनामि क्षिप्रं तदपि रोहतु।
मा ते मर्म विमृग्वरि मा ते हृदयमर्पिपम्।।

{स्रोतः अथर्व वेद (भाग–2) 12/1/35, श्लोक संख्या 3334।।}

अर्थात् जब हम कृषि कार्य हेतु भूमि की जुताई करें तो फसलें शीघ्र वृद्धि को प्राप्त हो तथा इस कार्य से भूमि को हानि न हो (अर्थात् हम भूमि संरक्षण की विधा अपनाएँ)।

यस्याश्चतस्त्रः प्रदिशः पृथिव्या यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः।
या बिभर्ति बहुधा प्राणदेजत् सा नो भूमिर्गोष्वप्यन्ने दधातु।।

{स्रोतः अथर्व वेद (भाग–2) 12/1/4, श्लोक संख्या 3303।।}

अर्थात् जिस भूमि में उद्यमी, षिल्पकला और कृषि कार्य में निपुण व्यक्ति कार्यरत है तथा धान, गेहूँ आदि पैदा करके विभिन्न प्रकार से प्राणधारियों और वनस्पतियों का पोषण और संरक्षण होता है वह भूमि हमें गौ आदि पशु (दुग्ध) और अन्नादि प्रदान करें।

यस्यामन्नं व्रीहियवौ यस्या इमाः पृच कृष्टयः।
भूम्यै पर्यन्यपल्यै नमोऽस्तु वर्षमेदसे।।

{स्रोतः अथर्व वेद (भाग–2) 12/1/42, श्लोक संख्या 3341।।}

अर्थात् जिस भूमि में निश्चित समय पर जल वर्षा होने पर धान, गेहूँ, जौ आदि धान्य उत्पन्न होते है तथा इससे यहाँ रहने वाले पाँच प्रकार के विभिन्न वर्णों के लोगों का पालन–पोषण होता है, ऐसी भूमि को हमारा नमन है।?

युनक्त सीरा वि युगा तनोत कृते योनौ वपतेह बीजम्।
विराजः श्नुष्टिः सभरा असन्नो नेदीय इत् सृण्यः पक्वमा यवन्।।

{स्रोतः अथर्व वेद (भाग–2) 3/17/2, श्लोक संख्या 480।।}

अर्थात् हल का प्रयोग करके तैयार किए गए खेत में बीजों को बोओ जिससे भरपूर पैदावार मिले। ये (फसल) पकने पर उपयुक्त उपकरणों से काटकर हमें (उपयोग हेतु) प्राप्त हों।

इन्द्रः सीतां नि गृहणातु तां पूषाभि रक्षतु।
सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम् ।।

{स्रोतः अथर्व वेद (भाग–2) 3/17/4, श्लोक संख्या 482।।}

अर्थात् देवताओं में इन्द्र व पूषादेव खेती वाली भूमि की देख–भाल करें, जिससे यह भूमि हमारे लिए अन्न आदि प्रदान करें।

इक्षु: राजभाषा पत्रिका
वर्ष 4 : अंक 1
जनवरी–जून, 2015

इक्षु

संरक्षक एवं प्रकाशक
ओ.के. सिन्हा

सम्पादक मण्डल
प्रवीण कुमार सिंह
तपेन्द्र कुमार श्रीवास्तव
राजेश कुमार सिंह
अभिषेक कुमार सिंह

कला एवं छायांकन
विपिन धवन
योगेश मोहन सिंह
अवधेश कुमार

भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान
लखनऊ–226002

भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ
ISO 9001 : 2008

© भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

पत्रिका में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार एवं दृष्टिकोण संबंधित लेखक के हैं। संस्थान अथवा राजभाषा प्रकोष्ठ का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

अपने लेख एवं सुझाव भेजें :

संपादक, इक्षु एवं सदस्य–सचिव
राजभाषा प्रकोष्ठ
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान
पो. आ.: दिलकुशा, लखनऊ–226 002
ई–मेल : ikshuiisr@yahoo.in

वर्ष 2015–16: संस्थान राजभाषा कार्यान्वयन समिति के सदस्य

डा. ओ.के. सिन्हा	अध्यक्ष
डा. टी. के. श्रीवास्तव	सदस्य
डा. अमरेश चन्द्रा	सदस्य
डा. ए. डी. पाठक	सदस्य
डा. राम जी लाल	सदस्य
डा. ए. के. सिंह	सदस्य
डा. आर. के. सिंह	सदस्य
डा. एस. आई. अनवर	सदस्य
श्री रत्नेश कुमार	सदस्य
श्री राजा राम	सदस्य
डा. जी. के. सिंह	सदस्य
श्रीमती आशा गौर	सदस्य
श्री अभिषेक कुमार सिंह	सदस्य
डा. पी. के. सिंह	सदस्य सचिव

प्रकाशक
निदेशक
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान
रायबरेली रोड, पोस्ट : दिलकुशा, लखनऊ 226 002
फोन : 0522–2480735/36, 37, फैक्स : 0522–2480738
ई–मेल : iisrlko@sancharnet.in
वेबसाइट : www.iisr.nic.in

नोट : पत्रिका में प्रकाशित कहावतें घाघ और भड्डरी की प्रचलित कहावतों में से संकलित की गई हैं।

डॉ. ओ.के. सिन्हा
निदेशक

भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान
लखनऊ–226002

ISO 9001 : 2008

निदेशक की लेखनी से..........

मन प्रसन्नता से पुलकित हो उठता है जब 'इक्षु' का कोई पाठक पत्र लिखकर या फोन से यह बताता है कि उसने पत्रिका के अमुक लेख से प्रेरणा लेकर अपनी खेती में या अपने जीवन में कुछ सार्थक प्रयोग किए और लाभान्वित हुआ। किसी भी पत्रिका की सफलता इसी पर निर्भर है कि कितने अधिक से अधिक लोग उसको पढ़कर कुछ नया सीखते हैं या कोई नई जानकारी प्राप्त करते हैं।

अब जब की खरीफ की बुआई का समय है, ऐसे में 'इक्षु' का यह अंक आप सभी पाठकों को एक अत्यंत गंभीर और सामयिक विषय से अवगत कराने को तैयार है। यह विशेषांक 'अन्तर्राष्ट्रीय मृदा वर्ष' को समर्पित है तथा इस आशा के साथ प्रस्तुत किया जा रहा है कि मृदा के स्वास्थ्य के प्रति हम सब और अधिक जागरूक तथा संवेदनशील होगें।

यह एक चिन्ता का विषय है कि मृदा की उर्वरता निरंतर कम होती जा रही है। इसका प्रमुख कारण फसल द्वारा मृदा से लिए गए कुल पोषक तत्वों की भरपाई मृदा में पूर्ण रूप से नहीं हो पा रही है। सिंचाई के लिए पानी का आवश्यकता से अधिक प्रयोग भी मृदा की उर्वरकता को प्रभावित करता है। अतः यह नितान्त आवश्यक है कि बुआई से पहले मृदा में उपस्थित पोषक तत्वों का परीक्षण अवश्य करायें और आवश्यकता के अनुरूप ही उर्वरक का प्रयोग किया जाय। मृदा की उर्वरकता में जैविक कार्बन की मात्रा का महत्वपूर्ण योगदान है। इसे बढ़ाने के लिए जैविक खाद एवं हरित खाद–फसलों का अधिक से अधिक प्रयोग खेती में करना चाहिए। साथ ही सिंचाई के लिए पानी की जितनी आवश्यकता हो उतना ही देना चाहिए। खेतों का समतलन करना अति आवश्यक है। इससे पानी का समान रूप से खेत में प्रसार होता है और हर पौधे को बराबर से पानी मिलता है। इसके लिए आवश्यक है कि खेतों का लेजर समतलन करायें जिससे पानी की खपत कम हो।

आशा है कि हम सब मिलकर आने वाली पीढ़ी के स्वर्णिम जीवन के लिए मृदा की उर्वरकता को बढ़ाने में योगदान देंगे और खाद्य की सुरक्षा सुनिश्चित करने में सहयोग करेंगे।

इस 'इक्षु' पत्रिका के प्रकाशन व लेखन सामग्री के लिए दिये गये योगदान प्रशंसनीय हैं। भविष्य में यह पत्रिका पाठकों के लिए और भी उपयोगी हो, इसी कामना के साथ।

लखनऊ

1 जुलाई, 2015

(ओ.के. सिन्हा)

डॉ. प्रवीण कुमार सिंह
प्रधान वैज्ञानिक (फसल सुधार)
संपादक (इक्षु) एवं प्रभारी (राजभाषा प्रभाग)

भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान
लखनऊ–226002
भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ
ISO 9001 : 2008

'इक्षु–सार'

प्राचीन धर्म ग्रँथों के अनुसार मानव शरीर प्रकृति द्वारा प्रदत्त पंचतत्वों यथा जल, वायु, अग्नि, पृथ्वी तथा आकाश से निर्मित होता है। इन पंचतत्वों से निर्मित शरीर का भरण–पोषण भी इन्हीं तत्वों के मेल से होता है। अतः इनमें से किसी भी तत्व के प्रदूषित होने या फिर कमजोर पड़ने पर हमारा शरीर, हमारा जीवन और हमारी संस्कृति–सभ्यता सभी दुर्बल हो जाएँगें। यह भी माना जाता है कि किसी भी देश की सुख–समृद्धि तथा विकास के लिए उस देश की मृदा और अन्य प्राकृतिक संसाधनों का अच्छा होना नितांत आवश्यक है। मानव जीवन के लिए नित्य–प्रतिदिन जिन वस्तुओं की आवश्यकता होती है, वे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से मृदा से ही प्राप्त होती हैं। द्वितीय विश्व युद्ध के उपरांत जिस गति से रसायनों एवं रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग बढ़ा, उससे उपज तो बढ़ी किन्तु उपजाऊ मृदा अपनी मूल प्रकृति से दूर होती जा रही है। मृदा के भौतिक, रासायनिक और जैविक गुणों के आधार पर ही फसलों का चयन तथा उत्पादकता सुनिश्चित की जा सकती है। वर्तमान में जब अधिक उपज हेतु कृषक भाई केवल रासायनिक उर्वरकों को महत्व दे रहे हैं, तब यह आवश्यक होता जा रहा है कि उन्हें मिट्टी की खराब हो रही गुणवत्ता तथा भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों के परस्पर संतुलन हेतु जागरूक किया जाय।

विश्व खाद्य संगठन से प्रेरित 'अंतर्राष्ट्रीय मृदा वर्ष' इस दिशा में एक महत्त्वपूर्ण पहल है और 'इक्षु' का यह अंक एक विशेषांक के रूप में आपके समक्ष प्रस्तुत है। हमारी कोशिश है कि मृदा स्वास्थ्य, मृदा गुणों की स्थिति तथा संतुलित रूप से विभिन्न उर्वरकों के प्रयोग से संबंधित लेखों का संकलन इस अंक को विशेष बना सकें।

मानसून का आगमन होने को है और सबकी कामना है कि बादल खूब बरसें, मिट्टी स्वस्थ रहते हुए खूब उपजाए और 'इक्षु' के सभी पाठक तन–मन–धन से प्रसन्न हों। पिछले अंक की समीक्षा से संबंधित पत्रों के लिए सभी का धन्यवाद। हमें उम्मीद है कि मृदा की सोंधी–सोंधी महक के साथ जब यह अंक आपको प्राप्त होगा, आप अपनी प्रतिक्रिया जरूर प्रेषित करेंगे।

लखनऊ

1 जुलाई, 2015

(प्रवीण कुमार सिंह)

इक्षु: राजभाषा पत्रिका
राजभाषा प्रकोष्ठ की अर्धवार्षिक पत्रिका
वर्ष 4 : अंक 1
जनवरी–जून, 2015

विषय वस्तु

राजभाषा प्रभाग 1–4

सही हिंदी सीखना बहुत सरल है 1
श्रीराम मेहरोत्रा

राष्ट्र– निर्माण और शब्द–निर्माण 3
पत्रिका 'कल्याण', सन् 1948 से प्राप्त

ज्ञान–विज्ञान प्रभाग 5–78

मृदा गुणों का गन्ना, रस गुणवत्ता व प्रसंस्करण पर प्रभाव 5
अशोक कुमार श्रीवास्तव, अमरेश चन्द्रा, वरूचा मिश्रा, मीना निगम एवं सोमेन्द्र प्रसाद शुक्ल

मृदा परीक्षण: गन्ने में पोषक तत्व प्रबंधन का प्रमुख आधार 8
अनिल कुमार सिंह

भारत की विभिन्न प्रकार की मृदाओं में गन्ने की खेती हेतु उन्नत सस्य क्रियायें एवं सुझाव 13
ओम प्रकाश, मीना निगम, अशोक कुमार श्रीवास्तव, सोमेन्द्र प्रसाद शुक्ल, ब्रह्म प्रकाश एवं वरूचा मिश्रा

मृदा का गन्ने के रस एवं गुड़ की गुणवत्ता पर प्रभाव 17
मीना निगम, ओम प्रकाश, सोमेन्द्र प्रसाद शुक्ल एवं अशोक कुमार श्रीवास्तव

मृदा परीक्षण के आधार पर गन्ने में संतुलित पोषक तत्व प्रबन्धन 19
विनय कुमार सिंह, अशोक कुमार श्रीवास्तव, विनोद कुमार, राकेश कुमार सिंह एवं अजीत कुमार सिंह

अपरदन रोकने हेतु मृदा संरक्षण परमावश्यक 22
ब्रह्म प्रकाश एवं अश्विनी कुमार शर्मा

गन्ने की अधिक उपज पाने के लिए मृदा एवं सिंचाई जल प्रबंधन 25
राजेन्द्र गुप्ता एवं रश्मि गुप्ता

गन्ने की लाभकारी उत्पादकता हेतु मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन 31
शिव राम सिंह, राम रतन वर्मा एवं तपेन्द्र कुमार श्रीवास्तव

ऊसर भूमि को उपजाऊ बनाया जा सकता है 37
मनीष कुमार बिसेन एवं डी एस श्रीवास्तव

मृदा में उर्वरकों के सक्षम उपयोग के उपाय 40
राज कुमार सिंह, विनोद कुमार, विनय कुमार सिंह एवं रविन्द्र कुमार राजपूत

उत्तम पैदावार के लिए एकीकृत पादप पोषक तत्व प्रबन्धन 44
रविन्द्र कुमार राजपूत, विनोद कुमार, विनय कुमार सिंह एवं राज कुमार सिंह

टिकाऊ मृदा उर्वरता एवं गन्ना उत्पादन के लिए हरी खाद का प्रयोग 46
एस.एन. सिंह एवं ए.के. साह
जैविक खेती 51
मोनिका जायसवाल, अजीत सिंह, मेघा विभूते एवं भूपेन्द्र सिंह
जैविक उर्वरकों का गन्ने की खेती में लाभकारी उपयोग 54
शिव राम सिंह, ईश्वर सिंह, राम रतन वर्मा एवं के.के. सिंह
गन्ने की उपज एवं गुणवत्ता पर सिलिका ग्रेन्यूल्स का प्रभाव 59
राधा जैन, स्मिता सिंह, अंशु सिंह, नीरू जैन, आर.के. सिंह, आशा गौर, एस.के. शुक्ला एवं अमरेश चन्द्रा
उत्तर भारत हेतु संस्तुत उन्नत गन्ना किस्में 61
संजीव कुमार, पी के सिंह एवं जे सिंह
गेहूँ फसल का कटाई के बाद भण्डारण एवं प्रबंन्धन 65
पंकज कुमार सिंह, राजीव कुमार सिंह एवं रामजीत
पॉली मल्च तकनीक–मैरो कद्दू के लिए लाभकारी 67
वी.पी. सिंह, वीरेन्द्र कुमार एवं ललित भट्ट
कोदों की उन्नत खेती 71
के.एम. सिंह
धान में समेकित खरपतवार नियंत्रण 73
कमलेश मीना, ए.आर.कुमारी, शमशेर सिंह एवं दीपक राय
खाद एवं उर्वरकों का प्रबन्ध तथा गन्ने की मिठास 76
सुधीर कुमार शुक्ल, शशिविन्द कुमार अवस्थी एवं आशा गौर

आरोग्य एवं संजीवनी प्रभाग 79–89
वर्मी कम्पोस्ट : एक उत्तम जैविक खाद 79
चंचिला कुमारी, मनीष कुमार एवं विनय कुमार सिंह
चूहों का कृषि में महत्व एवं निदान 81
दुष्यन्त कुमार राघव
पपीता के प्रमुख रोग एवं उनका निदान 86
अतुल कुमार एवं सोनी कुमारी
चीजें जो घटाती हैं कोलेस्ट्रॉल 88
मिथिलेश तिवारी

आमोद–प्रामोद प्रभाग 90–104
सफल कहानी : समेकित कृषि कर एक कृषक ने बदली अपने जीवन की तस्वीर 90
अजीत कुमार सिंह, बृजेश पाण्डेय, नेहा राजन एवं विनय कुमार सिंह
जलवायु परिवर्तन–एक पौराणिक परिप्रेक्ष्य 92
अशोक कुमार श्रीवास्तव एवं सोमेन्द्र प्रसाद शुक्ल

गन्ना कृषकों की आर्थिक प्रगति में अग्रिम पंक्ति तकनीकी सुपुर्दिगी एक अहम परिप्रेक्ष्य 94
आर. एस. दोहरे, आर. एफ. ठाकुर' एवं चन्द्र पाल सिंह
सफलता प्राप्ति के सूत्र 96
आर.एस. चौरसिया
अंडमान के दिल की धड़कन ''हैवलॉक'' 97
आशीष सिंह यादव
''तुम हो'' 98
सैय्यद इरफ़ान अनवर
गज़ल 98
आनन्द मोहन श्रीवास्तव
अक्षय ऊर्जा भंडार समृद्धि का आधार 99
नीरज सिंह
व्यक्तित्व पर परिवेश का असर 101
सी.पी. सिंह
बिन मौसम की वर्षा 103
साहब दीन 'दीन'
भू–कम्प 103
साहब दीन 'दीन'
नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति (कार्यालय–3), लखनऊ छमाही प्रगति 104
शब्दकोष 105
आपके पत्र 110
समाचार प्रभाग 111

राजभाषा प्रभाग

सही हिंदी सीखना बहुत सरल है

श्रीराम मेहरोत्रा

पूर्व सतर्कता निरीक्षक एवं हिन्दी अधिकारी, पंजाब एवं सिंध बैंक, लखनऊ

स्वर

स्वर उन वर्णो को कहते हैं जिनका उच्चारण स्वतंत्र रूप से बिना किसी अन्य ध्वनियों की सहायता के किया जाता है और उच्चारण के समय वायु मार्ग में किसी प्रकार की रूकावट नहीं होती। इस विषय के, हमारे देश के व्याकरण के एक बहुत पुराने, विद्वान आचार्य पातंजलि (दूसरी सदी ई.पू.) ने स्वर और व्यंजन की एक बहुत सरल व्याख्या दी है, ''स्वय राजन्ते स्वरा अन्वग् भवति व्यंजनमिति'' अर्थात् स्वर स्वतंत्र हैं, व्यंजन उन पर आधारित हैं। स्वर का उच्चारण स्वतंत्र होता है और व्यंजन की स्थिति आधी रह जाती है। जैसे; *सत्यम्,* में म् व्यंजन बिना स्वर की सहायता से आधा बोला गया।

हिंदी आज जिस रूप में प्रचलित है तथा लिखी और बोली जाती है उसके आधार पर हिंदी में 10 स्वर हैं, यथा अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ। संस्कृत के स्वरों के ***ऋ*** का उच्चारण हिंदी में तत्सम् शब्दों में ही किया जाता है। इस स्वर में ***रि*** अर्थात् व्यंजन (र्) और स्वर (इ) का योग है। ***लृ*** स्वर भी संस्कृत की स्वर श्रेणी का है जिसका प्रयोग हिंदी में प्रायः समाप्त हो गया है किंतु देव नागरी की मराठी लिपि में इसका पर्याप्त प्रयोग होता है।

इसी प्रकार ***अं*** में स्वर अ तथा अनुस्वार (जो विभिन्न व्यंजन वर्गों के अंतिम व्यंजन जैसे ङ् (गङ्.गा), ञ्(च......),ण् (पण्डित), न् (आनन्द), ***म्*** (पम्प) नासिक्य ध्वनि के साथ प्रयोग में लाए जाते है और मूलतः संस्कृत के स्वरों में ही इनकी गिनती होती है। स्वर–ध्वनियां एक प्रकार की गूंज होती हैं। मौखिक स्वरों में यह गूंज मुख विवर में होती है तथा अनुनासिक स्वरों में यह गूंज मुख विवर तथा नासिका–विवर दोनों में होती है। हिंदी में विदेशी भाषाओं के प्रभाव से भी कुछ ध्वनियां आई और इन्हें प्रचलन में स्वीकर किया गया है यथा, अंग्रेजी की ऑ ध्वनि। यह स्वर अंग्रेजी के शब्दों के उच्चारण में प्रयुक्त होता है जैसे कॉलेज, हॉल आदि। लेकिन साधारण बोल चाल में यह ध्वनि हिंदी की *आ* ध्वनि जैसे ही प्रयोग की जा रही है, अतः इसका भिन्न अस्तित्व नहीं है।

इसी प्रकार अरबी–फारसी के कुछ शब्दों के सही उच्चारण के लिए हिंदी में पाँच नई ध्वनियां अपनायी गई हैं–क़, ख़, ग़, ज़, फ़। इससे निश्चित रूप से हिंदी की शब्द सम्पदा बढ़ी है तथा उसमें भावों को अधिक सूक्ष्मता के साथ प्रस्तुत करने की शक्ति आई है। यह भाषा की श्रेष्ठता और जीवंतता का प्रमाण है कि वह दूसरी भाषा की ध्वनियों अथवा शब्दों को स्वीकार करने में संकीर्ण नहीं है। सम्प्रति इन व्यंजनों का अलग और स्पष्ट प्रयोग ऐसे वर्ग तक ही सीमित रह गया है जो यह जानते हैं कि इन ध्वनियों का प्रयोग उर्दू शैली से सम्बद्ध है और तदनुरूप भाषा की शुद्धता की दृष्टि से इनका स्पष्ट प्रयोग आवश्यक मानते हैं। सामान्य रूप से अब इनका प्रयोग बिना (.) के ही प्रचलन में स्वीकार कर लिया गया है और इसे सही भी मान लिया गया है।

स्वरों के भेद

स्वर गले के अंदर से निकलने वाली ध्वनि तरंगे हैं। ध्वनियों के कुछ स्थान गले के अंदर गहराई में या मूल (जड़) में हैं और कुछ स्थान ऊपर संधि स्थान में हैं ये स्वरों के उत्पत्ति स्थान हैं और इस आधार पर इनके दो भेद हैं – 1, मूल स्वर 2, संधि स्वर।

मूल स्वर

मूल स्वर को ह्रस्व (छोटा) स्वर भी कहते हैं जिनके उच्चारण में थोड़ा समय लगता है और इनकी उत्पत्ति में अन्य स्वर सहायक नहीं होता। ये स्वतंत्र स्वर होते हैं। हिंदी में ऐसे स्वर चार हैं–अ, इ, उ और ऋ। इनके उच्चारण में कम समय और कम बल लगता है। साधारण भाषा में इन्हें छोटी मात्राएं या स्वर कहा जाता है। यदि मात्रा संबंधी कोई जिज्ञासा का अवसर उठता है तो यह ध्यान देने की बात है कि उच्चारण समय में ये मात्राएं बिना जोर के बोली जाती हैं, ध्वनि यंत्रों को कोई अतिरिक्त श्रम नहीं करना पड़ता। इस कारण ये ह्रस्व मात्राएं या छोटी मात्राएं बोली जाती हैं, जैसे भिक्षु। इसमें प्रयुक्त दोनों मात्राएं छोटी या ह्रस्व हैं, जिनके उच्चारण में अधिक बल नहीं देना पड़ा। इनके विपरीत दीर्घ या संयुक्त स्वर की मात्राओं पर उच्चारण यंत्रों पर अतिरिक्त बल दिया जाता है।

संधि स्वर

इन्हें संयुक्त स्वर भी कहते हैं संयुक्त या संधि स्वर वे स्वर हैं जिनके उच्चारण में मूल या ह्रस्व स्वर से दूना समय लगता है और इनके उच्चारण में ध्वनि यंत्रों पर अतिरिक्त बल देना पड़ता है। साधारण बोल चाल की भाषा में इन्हें *बड़ी* मात्राएं कहा जाता है, जैसे *पीयूष, खाऊंगा*। इसमें सभी मात्राओं के उच्चारण में जोर लगाया गया है।

संधि स्वरों के भी दो भेद है। एक, दीर्घ,

दूसरा, संयुक्त। किसी एक मूल स्वर में उसी मूल स्वर के मिलाने से जो स्वर बनता है उसे दीर्घ स्वर कहते हैं, जैसे अ+अ=आ, इ+ई=ई, उ+उ=ऊ। जब दो भिन्न भिन्न स्वरों के मेल से स्वर बनता है, तो उसे संयुक्त स्वर कहते हैं, जैसे अ+इ=ए, अ+उ=ओ, आ+ए=ऐ, तथा अ+ओ=औ। ध्यान देने पर स्पष्ट होगा कि दीर्घ मात्राओं का उच्चारण बड़ा, लम्बा, अधिक समय वाला या बल पूर्वक जोर डाल कर होता है। इसी कारण इन्हें बड़ी मात्राएं कहते हैं।

उपरोक्त वर्णन से जो बात सबसे अधिक स्पष्ट हुई वह यह कि वर्ण या अक्षरों पर मात्राओं का संबंध स्वरों से है और लिखते, पढ़ते हुए समय के आधार पर स्वरों का जो रूप या चिन्ह व्यंजनों के साथ जोड़ा जाता है उसे मात्रा कहते हैं। मात्रा का अर्थ स्वरों के उच्चारण में लगने वाले समय की मात्रा से है। कौन सी मात्रा व्यंजन पर कैसे लगनी है इसका निर्धारण बिना अनुमान या संभावना लगाए, उच्चारण के नियम अर्थात् समय और बल से होता है। जो शब्द हमें लिखना है और हमें उसमें प्रयुक्त होने वाली मात्राओं के संबंध में कोई भ्रम हो रहा है तो मुख से एक बार आराम से उच्चारण कर के देखें, जहाँ मात्राओं के उच्चारण में कोई विशेष बल नहीं लगाना पड़ा, आराम से उच्चरित हो गई, कम समय लगा वहाँ छोटी मात्रा लगानी है जो इ उ या ऋ के मात्रा चिन्ह हैं। इसके विपरीत जहाँ उच्चारण में बल की प्रतीति हो, स्वर या ध्वनि को कुछ खींचना पड़े उच्चारण में अधिक समय लगे, वहाँ बड़ी मात्रा के प्रयोग की जरूरत होती है जो आ, ई, ए, ऐ, ऊ, ओ तथा और के मात्रा चिन्ह है। इन छोटी, बड़ी मात्राओं को ह्रस्व और दीर्घ मात्राएं भी कहते हैं। दीर्घ मात्राएं संयुक्त होती हैं (जिनके बारे में ऊपर बताया जा चुका है) किंतु इनका उच्चारण एक स्वर के रूप में किया जाता है, जैसे, पैसा, मौसा।

अ स्वर का अपना स्वतंत्र लिपि चिह्न तो है लेकिन अलग मात्रा चिह्न नहीं होता, अमर लिखने में *'अ'* का लिपि चिह्न प्रयुक्त हुआ, कोई मात्रा चिह्न नहीं लगाया गया किंतु यही स्वर व्यंजनों के उच्चारण में संयुक्त बना रहता है जैसे *म्+अ*=म आदि।

एक विशेषता और है, किसी शब्द के अंत में आने वाला ऐसा व्यंजन ऐसा व्यंजन जिस पर किसी मात्रा का प्रयोग न हुआ हो वह वास्तविक रूप में कोरा मूल व्यंजन ही होता है जिसके लिए हलंत चिह्न (्) का प्रयोग होता है लेकिन साधारण बोलचाल और लेखन में स्वर के संयुक्त होकर ही प्रयोग में बन चुका है और भाषा वैज्ञानिक स्तर पर उसे भी सही स्वीकार कर लिया गया है। जैसे *अकस्मात* शब्द में अंतिम *त्* का प्रयोग *अ* स्वर की सहायता लिए बिना ही पूरा हो गया, इस कारण लेखन और उच्चारण में इसका सही रूप *अकस्मात्* हुआ। संस्कृत की परमपरा के अनुसार यही सही है। हिंदी में भी साहित्य और अन्य लेखन में तत्सम् रूपों में इसका पर्याप्त प्रयोग होता है और शब्द का अंतिम व्यंजन हलंत् करके लिखा जाता है लेकिन स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हिंदी को राजकाज के कार्यों में मान्यता मिलने से जहाँ इसके प्रयोग को व्यापकता मिली वहीं इसमें लिपि संबंधी व्यापक परिवर्तन भी आए जिसमें एक यह भी था कि हलंत् के प्रयोग के बिना भी शब्दों को सही मान लिया जाए। अब अंतिम व्यंजन के लिए हलंत् का प्रयोग बहुत कम हो गया है।

हिंदी में मात्राओं का तत्व ज्ञान मोटे तौर पर इतना ही है। एक बार यह अवधारणा शुरू में ही स्पष्ट हो जाए तो गलती करने का प्रश्न ही नहीं उठता क्योंकि यहाँ अंदाज, अनुमान या रट्टा मार की कोई गुंजाइश ही नहीं है। यही तो वैज्ञानिकता है जिसमें अनुमान नहीं, घटित से काम चलता है।

स्वरों का वर्गीकरण जिह्वा, होठों, अलिजिह्वा, उच्चारण स्थान तथा उच्चारण में लगने वाले समय आदि के आधार पर भी किया है किंतु वह यहाँ विस्तृत चर्चा का विषय नहीं है।

हिंदी भाषा के उच्चारण को अधिक सटीक और ध्वनिपरक बनाने के लिए हिंदी में अनुस्वार, अनुनासिक तथा विसर्ग चिह्नों का भी उपयोग किया जाता है। इनके बारे में भी संक्षिप्त रूप से जान लेना सही लेखन में बहुत सहायक होगा।

माघ अंधेरी सप्तमी, मेह बिज्ज दमकंत।
मास चारि बरसै सही, मत सौचें तू कन्त।।

यदि माघ बदी सप्तमी को बदली छाई हो और बिजली चमके तो आगामी बरसात में चार महीने अच्छी वर्षा होगी।

राजभाषा प्रभाग

राष्ट्र– निर्माण और शब्द–निर्माण

(मूल लेखक–डा. रघुवीर एम. ए., पी.एच.डी.लिट्, एट्, फिल. (होलैंड) सदस्य, भारतीय संविधान–सभा)

भारतवर्ष में अंग्रेजों का राज्य तो समाप्त हुआ, किंतु अंग्रेजी का राज्य विद्यमान है। अंग्रेजी पढ़े–लिखे भारतीय लोग इसको हटाना नहीं चाहते। उनका मत है कि शासन, व्यापार और उच्च शिक्षा में अंग्रेजी को ही रहने दिया जाए। उनमें से जो लोग अंग्रेजी को हटाकर भारतीय भाषाओं को उसके स्थान में लाना चाहते हैं, उनमें भी मतैक्य नहीं। उनमें अधिकांश का मत यह है कि वाक्य रचना तो हिंदी की हो, किन्तु पारिभाषिक शब्द अंग्रेजी के ही रक्खे जाएँ। इन महानुभावों को पता नहीं कि इसका क्या परिणाम होगा। अंग्रेजी में पारिभाषिक शब्दों की संख्या 20 लाख से ऊपर है। अतः उक्त मत को स्वीकार करने का अर्थ होगा सामान्य हिंदी के दो तीन सहस्त्र शब्दों को 20 लाख अंग्रेजी के पारिभाषिक शब्दों में डुबा देना। यह तो वही बात होगी कि 'चले थे दरिया में पानी पीने, किन्तु गये उनमें डूब।' पारिभाषिक शब्द और उनका स्वरूप बहुत थोड़े लोगों को ज्ञात हैं सामान्य भाषा का विरला ही कोई ऐसा शब्द होगा, जो किसी न किसी विज्ञान की शाखाओं में जाकर पारिभाषिक बन जाता हो। उदाहरण लीजिये–एक, दो, तीन, दस, सौ–मोनो, एसिड, डाइ–बेसिक, ट्राइमेंशनल, डेकामीटर, हेक्टोग्रैफ। इन शब्दों में मोनो का अर्थ एक, डाइ का द्वि, ट्राइका त्रि, डेका का दशक और हेक्टो का शत है।

इसी प्रकार शरीर के आकड़ों को ले लीजिये। राइनो प्लास्टिंग में राइनोका अर्थ नासिका है। डर्मिटाइटीस में डर्मका अर्थ चर्म है। स्टेथोस्कोप में स्टेथोका अर्थ छाती है। किंतु चूँकि ये शब्द पारिभाषिक हैं, इसलिए इनमें हमारे शब्द न रहकर अंग्रेजी और उसके द्वारा ग्रीक और लैटिन के शब्द भी प्रयुक्त होंगे। सामान्य धातुओं को लीजिए। उनका प्रयोग भी पारिभाषिक शब्दावली में न हो सकेगा। उपर दिये हुए शब्द स्टेथोस्कोप में स्कोप का अर्थ देखना है। सिनेमेटोग्राफ में सिनेमेटो का अर्थ चलना है।

जब यह समस्या लोगों के सामने रक्खी जाती है तो वे निरूत्तर हो जाते हैं। कुछ कहने लगते हैं कि जो हिंदी के शब्द प्रचलित हैं, उनको रख लीजिए और जो अप्रचलित हैं, उनको अंग्रेजी से ले लीजिए। इन लोगों ने भी प्रश्न को वास्तव में नहीं समझा। स्थूल रूप से यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि थोड़े से शब्दों को छोडकर, जिनकी संख्या सागर में एक बिंदु के समान है, शेष शब्द हिंदी में अथवा अन्य किसी भारतीय भाषा में विद्यमान नहीं है। अभी तक हिंदी को अथवा हमारी अन्य भाषाओं को यह अवसर ही नहीं मिला। हिंदी के लिए तो कविता, कथा, जीवन–चरित्र आदि लिखने का ही क्षेत्र था। शासन और न्यायालय के लिए तो नीचे स्तर में उर्दू और ऊँचे स्तर में अंग्रेजी चालू थी। उँचे व्यापार और शिक्षा में पदार्पण करने का अवसर हिंदी को कभी नहीं दिया गया।

इसलिए यह कहना कि जो शब्द हिंदी में प्रचलित हैं, उनका प्रयोग कर लो यह कहने के बराबर होगा कि अंग्रेजी के समस्त शब्दों को ही जैसे के तैसे हिंदी में रख लो। इसका एक उदाहरण लीजिए–टेलीफोन डाइरेक्टरी; इसके लिए अभी तक हिंदी में कोई शब्द प्रयोग में नहीं आया। कल एक मित्र से बात हुई और उसने कहा कि हम तो भाषा इस प्रकार की बनायेंगे।

'सब्सक्राइबर को बुलाने के लिए रिसीवर को मूव करो, किंतु रेस्ट को जर्क मत करो। जब तक डायल टोन सुनायी न पड़े, तब तक डायल मत करो। जब यह टोन सुनायी पड़े तो को क्लॉकवाइज रोटेट करो, जबतक ॲंगुली फिंगर स्टाफ तक नहीं पहुँचती।'

यह तो सामान्य बात सबको विदित है कि टेलिफोनर हिंदी के एक, दो, तीन का प्रयोग न करके अंग्रेजी वन, टू, थ्री का ही प्रयोग किया जाता है।

कुछ व्यक्तियों का मत है कि शब्द तो अंग्रेजी के ले लो, किन्तु व्याकरण अपना लगा लो। इन लोगों ने भी दूर तक विचार नहीं किया। अंग्रेजी शब्दों के साथ अंग्रेजी व्याकरण भी कुछ अंश तक आयेगा। यदि हमने 'इन्सपेक्टर' शब्द को लिया तो 'इन्सपेक्शन' और 'इन्सपेक्टिंग' अवश्य लेने होंगे। इसी प्रकार 'इंस्पेक्ट्रेस' भी। मैमेलिया और मैमल दोनों ही शब्द इकट्ठे आयेंगे। इनमें से मैमेलिया लैटिन का बहुवचन है। लेजिस्लेशन में केवल क्रियापद 'लेजिस्लेट' लेने से काम न चलेगा। लेजिस्लेटर और लेजिस्लेटिव भी साथ लेने पड़ेगे। अंग्रेजी के शब्द अथवा विज्ञान के परस्पर शब्द इतनी घनिष्ठता से सम्बन्धित हैं कि एक शब्द को ले लेने से सैकड़ो शब्द साथ आते हैं। फास्फरस शब्द को लेने से फास्फोजन, फास्फैन, फास्फीन, फास्फेट, फास्फोन, फास्फाइट, फास्फोटाइज, फास्फोरिल, फास्फील, फासी इत्यादि सैकड़ों शब्दों को ग्रहण करना होगा।

हमनें इस दिशा में पिछले 17 वर्षों से काम किया है और हमारा अनुभव है कि

हमारे सामने केवल दो मार्ग खुले हैं। एक अंग्रेजी शब्दावली का और दूसरा भारतीय शब्दावली का। बीच का मार्ग असम्भव है। अंग्रेजी शब्दावली को रखने का अर्थ रोमन लिपि को रखना होगा। इस बात को सभी वैज्ञानिक लोग जानते हैं; क्योंकि रसायन और भौतिक शास्त्र में जहाँ सूत्रों (फार्मूला) की आवश्यकता पड़ती है, वहाँ अंग्रेजी शब्दों के साथ अंग्रेजी संक्षेपों और प्रतीकों का रखना भी अनिवार्य है।

जहाँ अंग्रेजी शब्दों के साथ अंग्रेजी लिपि आयी, वहाँ यह भी अनिवार्य हो जायगा कि इन शब्दों को समझने के लिये अंग्रेजी भी पढ़ी जाय। कंप्रेशन, प्रेशर, स्ट्रेस, स्ट्रेन आदि शब्द अंग्रेजी भाषा पढ़े बिना कैसे समझ में आयंगे।

तो जब अंग्रेजी शब्द, अंग्रेजी लिपि और अंग्रेजी भाषा तीनों का पढ़ना अनिवार्य होगा, तब फिर तपस्विनी हिंदी के लिये स्थान कहाँ। यह तो अपने–आपको और देश को धोखा देना है। आगे चलकर हमारे अंग्रेजी पढ़े–लिखे वैज्ञानिक और अंग्रेजी के उपासक राजनीतिक नेता कहेंगे कि अंग्रेजी के अंदर जब प्रत्येक विषय पर ग्रन्थ विद्यमान हैं, तब उनसे ही लाभ उठाना चाहिए और उनके स्थान में हिंदी के ग्रन्थों का निर्माण करने की चेष्टा करना निरर्थक और अनावश्यक है। इस प्रकार से अंग्रेजी का जो स्थान भारत वर्ष में है, वह सदा के लिय रहेगा और हिंदी का स्वप्न देखने वाले अपनी आशाओं को खो बैठेंगे।

अंग्रेजी शब्दावली का स्वीकार करना घातक है इस बात को हम जितना शीघ्र समझ जाए, उतना ही देश का कल्याण होगा।

जब स्थिति ऐसी है, तब यह किस लिये कहा जा रहा है कि भारत वर्ष की भाषाओं को उपर उठाओं। अपनी भाषाओं को उठाने का प्रयोजन केवल एक ही है। दूसरा प्रयोजन न है और न हो सकता है। वह यह कि जो लोग अंग्रेजी नहीं जानते अथवा अंग्रेजी जानने के लिए अपने जीवन का सर्वोत्तम भाग अर्पण करना नहीं चाहते, वे लोगों ने, जिन्होंने वैज्ञानिक अन्वेषण, वैदेशिक व्यापार और वैदेशिक सम्बन्ध रखना चाहा है, विदेशों की एक नहीं, अनेक भाषाए पढ़ी हैं।

अपनी भाषा और अपनी शब्दावली के साथ विज्ञान की शिक्षा और शासन प्रणाली सरल होगी। इससे हमारी भाषा की वास्तविक वृद्धि और समृद्धि होगी। इसलिए हमारा कहना है कि राष्ट्र निर्माण जितना आवश्यक है, शब्द निर्माण उससे कम नही है। इस प्रश्न का सम्बन्ध हमारे मस्तिष्क की उन्नति और ह्रास से है। अतएव राष्ट्र के सम्मुख केवल एक मार्ग है वह यह कि अपने जीवन की अनिवार्य आवश्यकता की पूर्ति के लिये वह संस्कृत भाषा की विलक्षण समृद्धि की सहायता लेकर उचित शब्दावली का शीघ्र निर्माण करे।

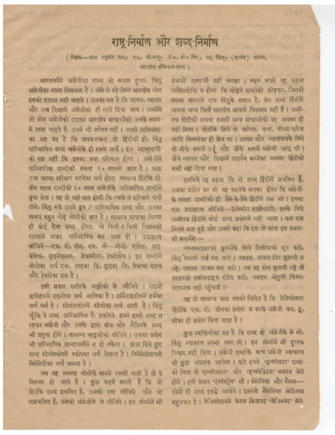

राष्ट्र-निर्माण और शब्द-निर्माण

(लेखक—डा० रघुवीर एम्० ए०, पी-एच्० डी०, डी० लिट्, फिल्० (हालैंड) सदस्य, भारतीय संविधान-सभा)

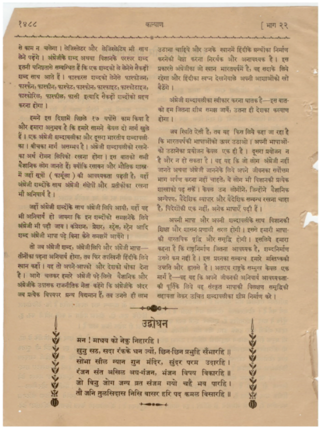

१४८८ कल्याण [भाग २२

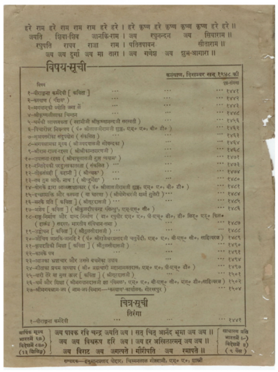

नोट : मूल लेख पत्रिका "कल्याण, दिसम्बर सन् 1948 पृष्ठ 1487–1488" में छपा था। मूल लेख का चित्र यहाँ प्रस्तुत है।

ज्ञान–विज्ञान प्रभाग

मृदा गुणों का गन्ना, रस गुणवत्ता व प्रसंस्करण पर प्रभाव

अशोक कुमार श्रीवास्तव, अमरेश चन्द्रा, वरूचा मिश्रा, मीना निगम एवं सोमेन्द्र प्रसाद शुक्ल
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

मृदा, भूमि की ऊपरी मृत कार्बनिक अवशेषों युक्त सतह है जो पौधों की वृद्धि एवं विकास में सहायक है। भू–सतह की सीमा (गहराई में) जो पौधों की वृद्धि को प्रभावित करती है मृदा कहलाती है। मृदा पौधों की जड़ों को अवलम्बन, जल, हवा, पोषक तत्व व कुछ अन्य वृद्धि के लिये आवश्यक तत्व प्रदान करती है। पौधे व मृदा की पारस्परिक अभिक्रिया में जड़ों की सतह तथा राइजोस्फीयर में होने वाली भौतिक, रासायनिक तथा जैविक प्रक्रियाएँ समाहित हैं। ये पौधे द्वारा पोषक तत्वों के दोहन, मृदा की संघटनात्मक स्थायित्व, प्रदूषण कारकों के प्रभाव का निर्धारण तथा पौधे व मृदा के दूषित तथा अवकर्षित (डिग्रेडेड) पारिस्थितिक सम्बन्धों तथा अजैविक प्रतिबल के प्रति पौधे की अनुक्रिया को भी प्रभावित करते है। मृदा में पोषक तत्वों का भण्डारण तथा उर्वरता निरन्तर घटती जा रही है।

यूँ तो गन्ने की खेती किसी भी प्रकार की मिट्टी में की जा सकती है, फिर भी इसके लिए दोमट मिट्टी एवं जल भराव रहित मृदा अपेक्षाकृत अधिक उपयुक्त है।

अत्यधिक विक्षालन ग्रस्त अम्लीय, बलुअर मृदाऐं, बाधित जल निकास या ऊँचा जल स्तर, मृदा में कार्बनिक पदार्थ की अधिक मात्रा (केरल में पायी जाने वाली *पीट* या *मक* मृदाएं), सघन खेती वाले क्षेत्र (जहाँ उर्वरकों की अधिक मात्रा प्रयोग की जाती है); चूने की अधिक मात्रा का एक ही समय में प्रयोग, आदि अवस्थाऐं मृदा में सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी को बढ़ावा देतीं हैं।

विभिन्न प्रकार की मृदाओं में भौतिक, रासायनिक, मेकेनिकल व जलीय तथा सूक्ष्म जीवाणु गुणों में विभिन्नता पाई जाती है जो गन्ने की उपज को प्रभावित करती हैं। भारतवर्ष के विभिन्न भागों में पाई जाने वाली मृदाएँ गन्ने की उपज को प्रभावित करती हैं (सारिणी–1)। इस मृदा जलवायु अध्ययन हेतु गन्ने की कृषि परिस्थितिकी से सम्बद्ध आँकड़े 43 गन्ना क्षेत्रों से लिए गए।

गन्ने का अधिकतम क्षेत्रफल (44.5 प्रतिशत) तथा उत्पादन (33.3 प्रतिशत) आधुनिक एल्युवियल मृदाओं से प्राप्त हुआ। गन्ने की औसत उपज तटवर्ती लोमी मृदाओं में अधिकतम (109.86 प्रतिशत) थी। गन्ने की अधिक उपज उन स्थानों से मिली जहाँ पैन इवापोरेशन (जल वाष्पन) व जैव पदार्थ (बायोमास) का उत्पादन अधिक था। गन्ने के लिए अधिकतम (1894.5 मिमी.) व न्यूनतम (867 मिमी.) जल की आवश्यकता

सारिणी–1 मृदा परिपेक्ष्य में गन्ना उत्पादकता

मृदा प्रकार	प्रतिशत गन्ना क्षेत्र	गन्ना उपज (टन/हे.)	गन्ना उत्पादन का प्रतिशत
गन्ना उपज > औसत उपज 62.25 टन/हे.			
कल्केरियस सिरोजोमिक	3.19	50.13	2.57
लाल और पीली मृदा	2.55	50.65	2.07
कल्केरियस एल्युवियम	0.59	51.20	0.46
जलोढ़ (आधुनिक)	44.50	53.52	38.30
तराई मृदा	4.70	54.41	4.11
ब्राउन हिल	4.28	56.18	3.85
गन्ना उपज > औसत उपज + 20 %			
उथली काली मिट्टी	1.77	66.12	1.88
लाल दोमट	5.89	69.11	6.52
गहरी व काली मृदा	5.06	69.39	5.56
मध्यम काली मृदा	9.04	70.96	10.30
मिश्रित लाल व काली मृदा	1.42	75.57	1.73
गन्ना उपज > औसत उपज + 20 %			
लटेराइट	1.63	80.91	2.12
मुहाना जलोढ़	0.86	82.31	1.13
तटीय जलोढ़	1.03	84.91	1.47
लाल बलुअर	12.72	81.29	16.60
तटीय दोमट	0.73	109.80	1.33

(**स्रोत**: गुप्ता तथा अन्य, 1997)

क्रमशः जोन III (अधिक उपज, कम फैलाव) तथा जोन V (मध्यम से अधिक उपज फैलाव) में पाई गई।

कोयम्बटूर में किए गए एक अध्ययन (1988–1989) के अनुसार एक शीघ्र परिपक्व होने वाली किस्म कोसी 671 की पैदावार (टन/हे.) विभिन्न मृदाओं में निम्न प्रकार रही। फ्लूवेन्टिक उस्ट्रोपेप्ट (98.84) > यूडिक होडोस्टाल्फ (93.90) > टिपिक उस्ट्रोपेप्टस (86.50) > यूल्टिक हेप्लोस्टल्फस (74.13) > टिपिक क्रोमोस्टर्ट्स (69.20) > वर्टिक हेप्लुस्टल्फस (61.77) > वर्टिक उस्ट्रोपेप्टस (54.36) > लिथिक उस्ट्रोथेन्टस (49.42)।

किल्ले निकलना

किल्ले केवल गन्ने के मेकेनिकल सपोर्ट फ्रेम ही नहीं अपितु शर्करा एकत्र करने वाले आकारिक अवयव भी हैं। साथ ही गन्ने में शाखा विन्यास की विधा भी। मृदा के गुण जैसे इसका गठन, काम्पेक्शन, बुआई की गहरान तथा जुताई आदि गन्ने के किल्लों के निकलने को प्रभावित करते हैं। गन्ने की सभी किस्मों में प्रस्फुटन लोम मृदा में क्ले मृदा की अपेक्षा शीघ्र होता है तथा किल्लों की संख्या क्ले मृदा में लोम मृदा की तुलना में अधिक होती है। अफ्रीका में किए गए शोध के अनुसार प्रति इकाई क्षेत्रफल गन्ने की संख्या भारी गठन की मृदा में (16.3 प्रति मीटर^2), हल्की गठन वाली मृदा (14.3 प्रति मीटर^2) की अपेक्षा अधिक थें। यही नहीं भारी गठन वाली मृदा में गन्ने की पैदावार (149.3 टन/हे.) भी हल्की गठन कार्य मृदा (115.7 टन/हे.) की अपेक्षा अधिक थी।

हल्की गठन वाली मृदाओं में पेड़ी की पैदावार सतत् कम होती गई जबकि भारी गठन वाली मृदाओं में यह बावक फसल की अपेक्षा अधिक पाई गई।

मृदा काम्पेक्शन भी गन्ने की फसल की वृद्धि एवं विकास को प्रभावित करता है। उच्च श्रेणी के मृदा काम्पेक्शन (1.7 ग्रा. सेंमी.^{3}) ने किल्ले उत्पादन की गति (रेट), अधिकतम किल्लों की संख्या तथा मिल योग्य गन्नों (मिलेबल केन) की संख्या, सामान्य मृदा काम्पेक्शन (1.42) की तुलना में प्रतिकूल रूप से प्रभावित की।

रस की गुणवत्ता

अन्य सभी कारक एक से होने पर भी कल्केरियस मृदा में उत्पन्न गन्ने का रस, ह्यूमस युक्त अधिक क्लेई मृदा में उत्पन्न गन्ने की अपेक्षा अधिक मीठा होता है। जल भराव प्रभावित निचले क्षेत्रों व बाढ़ ग्रस्त क्षेत्रों में उगे गन्नों में परिपक्वन अपेक्षाकृत देर से होने के कारण उनकी कटाई बाद में की जाती है।

बाढ़ प्रभावित परिपक्व गन्ने की फसल में बाढ़ का पानी उतरने के पश्चात् गन्ने की गुणवत्ता में ह्रास अपेक्षाकृत शीघ्र होता है अतः इसे तुरन्त काटकर मिल में प्रसंस्करण हेतु भेज देना चाहिए।

लेटराइटिक तथा अम्लीय मृदा में उत्पन्न गन्ने के रस में सिलिसिक अम्ल की मात्रा अपेक्षाकृत अधिक होने से सेडिमेन्टेशन तथा छनन प्रतिकूल रूप से प्रभावित होने से शर्करा की शोधन भी प्रभावित होता है। चूना पत्थर युक्त मृदा में उत्पन्न गन्ने की रस की शुद्धता गुणांक अधिक सिलिका युक्त एवं लवणीय मृदा के गन्ने से अधिक था तथा अधिक शीरा देने वाले (मिलसिजिनिक) पदार्थ युक्त था। अल्युविएल मृदा (जिसमें नमी व क्षार की मात्रा अपेक्षाकृत अधिक थी)। गन्ने की उपज तो अच्छी मिली पर रस की गुणवत्ता कम होने से इसके प्रसंस्करण में बाधाएँ आई तथा अपेक्षाकृत अधिक शीरा बना।

सामान्य व क्षारीय मृदा में उत्पन्न गन्नों के रस से शर्करा का उत्पादन अम्लीय मृदा में उत्पन्न गन्ने की अपेक्षा अधिक हुआ तथा चूना पत्थर युक्त मृदा के गन्ने से, टुफेसियस तथा ग्रेनाइटिक पितृ पदार्थ युक्त मृदा के गन्ने की अपेक्षा अधिक शर्करा की मात्रा मिली।

पोर्टीरिको में किए गए अनुसंधानों में पाया गया कि जल निकासी बाधित (पूअर ली ड्रेन्ड) मृदा में उत्पन्न गन्ने में भली प्रकार जल निकासी वाली मृदा में उत्पन्न गन्ने की तुलना में कम शर्करा प्राप्त हुई। इसी देश में किस्म उबा (Uba) पर किए गए एक अनुसंधान में पाया गया कि क्षारीय मृदा में उत्पन्न गन्ने के रस की शुद्धता, अम्लीय मृदा में उत्पन्न गन्ने की अपेक्षा अधिक थी।

भारतवर्ष में किए गए अनुसंधानों से ज्ञात हुआ कि हल्की मृदा में उत्पन्न गन्ने में भारी मृदाओं में उत्पन्न गन्ने की तुलना में अधिक गुणवत्त रस प्राप्त किया गया।

मृदा रस गुणवत्ता को प्रभावित कर गुड़ उत्पादन को भी प्रभावित करती है। उत्तर प्रदेश में पंजाब की अपेक्षा गुड़ का अधिक परता प्राप्त होने पर मुख्य कारण अपेक्षाकृत अधिक कैल्शियम विनिमय क्षमता है जो एक अच्छा मृदा गठन तथा जल निकास प्रदान करता है।

मृदा में अधिक लवणों का होना भी रस की गुणवत्ता को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करता है।

जगाधरी (पंजाब) में देखा गया कि किसी

भी परिपक्वन व्यवहार की किस्म में खादर क्षेत्रों में उत्पन्न गन्नों में, बाँगर क्षेत्र के गन्नों की अपेक्षा परिपक्वन शीघ्र हुआ।

शीघ्र पकने वाली किस्म कोशा 321 ने खादर क्षेत्रों में अच्छी शर्करा दी जबकि कोल 29 ने बाँगर क्षेत्र में देर से पकने वाली किस्मों में को 617 तथा कोशा 225 खादर क्षेत्र में अच्छी शर्करा उपज दी जबकि को 646 तथा कोशा 245 ने बाँगर मृदा में अच्छा प्रदर्शन किया।

भारी क्ले तथा नमी युक्त मृदा में उत्पन्न गन्ने हल्की मृदा उत्पन्न गन्नों की अपेक्षा शीघ्र परिपक्व होते है।

उत्तर प्रदेश में किए गए तुलनात्मक अध्ययन के अनुसार हल्की मृदा में गन्ने की उपज अच्छी होती है जबकि भारी मृदा में उत्पन्न गन्ने की रस गुणवत्ता अच्छी होती है।

रूद्रूर (आन्ध्र प्रदेश) में आठ किस्मों की अढसाली फसल की अक्टूबर, नवम्बर व दिसम्बर में, *चल्का* मृदा (बलुअर दोमट) तथा रेगुर मृदा (क्ले दोमट) से प्राप्त गन्ने के रस की गुणवत्ता का अध्ययन किया गया। *चल्का* मृदा में को 774, को 740 तथा को 755 की गुणवत्ता अधिकतम पाई गई जबकि रेगुर मृदा में को 740, को 775 तथा को 617 878 में शर्करा प्रतिशत अधिक पाया गया।

अखिल भारतीय गन्ना अनुसंधान प्रायोजना (गन्ना) की रिर्पोटों के अनुसार भी मृदा का प्रकार गन्ना व शर्करा उत्पादन को प्रभावित करता है।

फिलीपीन्स में किए अनुसंधानों के अनुसार मृदा का प्रकार तथा उर्वरक गन्ना व शर्करा उपज को प्रभावित करते है तथा इसमें किस्मों में विभिन्नता भी पाई जाती है। उर्वरकों का गन्ने की व शर्करा की पैदावार पर उपज मृदा के प्रकार की अपेक्षा अधिक होता है।

एक प्रसिद्ध शीघ्र पकने वाली किस्म कोसी 617 की रस गुणवत्ता, लवणीय क्षारीय हल्की व बलुअर मृदा में क्ले लोम मृदा की तुलना में अपेक्षाकृत कम थी।

हरियाणा में 16 किस्मों का रस गुणवत्ता विश्लेषण हिसार, करनाल व यमुना नगर में किया गया जिससे ज्ञात हुआ कि कृषि जलवायु व मृदा प्रकार के कारण सभी किस्मों में रस गुणवत्ता हिसार में अपेक्षाकृत अधिक थी।

मृदा की अवस्था की स्थानीय विभिन्नताएँ गन्ने की वृद्धि व रस गुणवत्ता को प्रभावित करती है। उड़ीसा की लेटराइट तथा कुछ अन्य मृदाओं में उत्पन्न गन्ने के रस में स्कंदनीय सिलिका अधिक पाया जाता है। किस्म को 419 के बॉम्बे डेक्कन में उत्पन्न गन्नों में फॉस्फोरस की मात्रा, तमिलनाडु में उत्पन्न गन्नों की अपेक्षा अधिक थी।

मृदा गन्ने में गैर–शर्करा पदार्थों की मात्रा को भी प्रभावित करती है, जिन्हें उर्वरकों की समुचित मात्रा से एक सीमा तक नियंत्रित किया जा सकता है।

अफ्रीका में किए गए शोध के अनुसार खराब गुणवत्ता वाली मृदा में चारों ओर 20–30 सेंमी. मेड़ बाँधने से गन्ना व शर्करा की पैदावार बढ़ जाती है। तृतीय से सातवीं पेड़ी में 35–23 प्रतिशत गन्ना उपज व 45–27 प्रतिशत शर्करा उपज में वृद्धि पाई गई जो जड़ों के अच्छे विकास द्वारा सम्भव हुआ।

मृदा से सम्बन्धित प्रसंस्करण समस्याएँ

उत्तर प्रदेश के गोला गोकर्णनाथ स्थित पलिया क्षेत्र में गन्ने का रस अधिक रंगीन होने के साथ इसमें फॉस्फोरस की मात्रा कम, अवकारक शर्करा तथा अमीनों अम्लों की मात्रा अधिक होने से गाढ़े रंग का सीरप, बनता है जो सल्फिटेशन में सल्फर डाईआक्साइड गैस प्रवाहित करने पर भली प्रकार शोधित नहीं हो पाता है। अवकारक शर्करा तथा अमीनो अम्ल प्रतिक्रिया करके मिलेनोइडिन नामक विरंजक पदार्थ बनाते है जिससे सल्फर डाईआक्साइड की आवश्यकता बढ़ जाती है। ऐसे में रस के पहले से चूना मिलाना रंग को कम करने व शर्करा की गुणवत्ता बढ़ाने में सहायक है।

लेटराइटिक व अम्लीय मृदा में प्राप्त गन्ने में सिलिसिक अम्ल का स्तर अधिक होने से सेडिमेन्टेशन तथा छनने में बाधा होती है।

सल्फिटेशन प्रेस मड को गन्ने के खेत में कार्बनिक खाद के तौर पर डालने पर यह पाया गया कि गन्ने के रस में सल्फेट की मात्रा बढ़ी जिससे रस में स्केल बनने में वृद्धि हुई। अम्बर कोआपरेटिव शुगर मिल, दक्षिणी अरकोट, तमिलनाडु में टैनरी उत्प्रवाह (ईफ्लूएण्ट) से प्रभावित मृदा में उत्पन्न गन्ने क प्रसंस्करण से शर्करा का परता प्रभावित हुआ। परन्तु ऐसी अवस्थाओं में भी दो किस्मों, कोसी 771 तथा कोजी 95076 से अच्छी गन्ना उपज व शर्करा प्राप्त हुई।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मृदा की गुणवत्ता गन्ने की उपज, गन्ने से प्राप्त रस की गुणवता तथा इसके प्रसंस्करण को प्रभावित करती है जिससे शर्करा उत्पादन प्रभावित हो सकता है। समस्याग्रस्त मृदाओं में कुछ किस्म विशेष का उपयोग लाभकर हो सकता है।

ज्ञान–विज्ञान प्रभाग

मृदा परीक्षणः गन्ने में पोषक तत्व प्रबंधन का प्रमुख आधार

अनिल कुमार सिंह
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

स्वस्थ मृदा मानव पोषण के लिए महत्वपूर्ण है। हम न केवल खाद्य उत्पादन के लिए, बल्कि पीने के पानी के लिए भी इस पर निर्भर करते हैं। मृदा पृथ्वी की जलवायु को नियंत्रित करने में मदद करती है, जो कि जैव विविधता को बनाये रखने के लिए आवश्यक है। इस धरती पर जितने मानव है उनकी तुलना में थोड़ी सी उपजाऊ मृदा में कही अधिक मात्रा में सूक्ष्म जीवाणु होते हैं। भू–क्षरण और प्रदूषण के कारण दुनिया भर में प्रति वर्ष 24 बिलियन टन उपजाऊ मृदा नष्ट हो जाती है जिसका आंशिक कारण शहरों और बुनियादी ढाचे का विकास भी है। स्थायी मृदा संरक्षण प्रथाओं से कृषि पैदावार में वृद्धि की पर्याप्त सम्भावनायें है, विशेष रूप से छोटे भूमिधारक, फसल विविधीकरण एवं फसल पुर्नचक्रण अपना कर इष्ठतम जल प्रबन्धन करने में सक्षम हो सकते है। सीमित क्षेत्रफल से अधिक उत्पादन लेने के लिये उर्वरकों एवं रसायनों का अत्यधिक मात्रा में प्रयोग मृदा स्वास्थ्य के लिये जटिल समस्या है। ऐसी स्थिति में खेती के ऐसे उपायों को अपनाने की आवष्यकता है जो बढ़ती जनसंख्या के भरण पोषण हेतु उत्पादन बढ़ाने के साथ–साथ मृदा स्वास्थ्य को अक्षुण रख सकें।

"प्राकृतिक क्रियाओं द्वारा निर्मित चट्टानों के चूर्ण की जो पतली तह पृथ्वी के ऊपरी भाग को ढकती है और जो उचित जल एवं वायु के मात्रा के साथ पौधों को सँभाले व कुछ सीमा तक उनके भोजन का अवलम्ब है, मृदा कहलाती है।"

"मृदा प्राकृतिक शक्तियों द्वारा प्राकृतिक पदार्थों पर क्रिया के फलस्वरूप विकसित एक प्राकृतिक पिण्ड है। यह साधारणतया परिवर्ती गहराई के खनिज एवं कार्बनिक अवयवों के संस्तरों में अवकलित होती है जो अपने नीचे के मूल द्रव्य से आकारिकी, भौतिक गुण एवं बनावट, रासायनिक गूण का तथा संघटन और जैविक अभिलक्षणों में भिन्न होते है।"

खनिज मृदाओं में मुख्यतः चार पदार्थ पायें जाते है : (1) खनिज पदार्थ, (2) कार्बनिक पदार्थ (3) जल तथा (4) वायु। ये चारों घटक आपस में एक दूसरे से इस प्रकार मिश्रित रहते है कि इनका अलग करना कठिन हो जाता है। एक सिल्ट दोमट की पृष्ठ मृदा, जिसमें पौध वृद्धि की अनुकूलतम परिस्थितियाँ हों, में आयतन के दृष्टिकोण से रंध्रावकाश लगभग 50% पाया जाता है। इस 50% आयतन में जल तथा वायु दोनो शामिल होते हैं। शेष 50% ठोस भाग होता है जिसमें लगभग 45% खनिज पदार्थ तथा 5% कार्बनिक पदार्थ पाया जाता है। मृदा में इष्टतम नमी की दशा में 25% भाग वायु से तथा 25% जल से भरा होता है। जल एवं वायु का अनुपात प्राकृतिक परिस्थितियों में तथा मौसम सम्बन्धी अन्य कारको पर निर्भर करता है। अव–मृदाओं (Sub-soil) में पृष्ठ मृदाओं (Surface soils) की अपेक्षा खनिज पदार्थ तथा जल की मात्रा अधिक होती है परन्तु कार्बनिक पदार्थ और वायु की मात्रा अपेक्षाकृत कम होती है। खनिज पदार्थों में तत्वों का प्रतिशत निम्न है $SiO_2 = 76\%$; $Al_2O_3 = 12\%$; $Fe_2O_3 = 5\%$; $CaO \pm 1\%$; $MgO = 1\%$; $K_2O = 2\%$ अन्य = 3%।

देश की बढ़ती जनसंख्या के फलस्वरूप सन् 2030 तक शर्करा पदार्थों की प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष आवश्यकता 35 किग्रा तक पहुँच जाने का अनुमान है जिसमें चीनी व गुड़ एवं खण्डसारी सम्मिलित है अतः इनकी पूर्ति के लिए 10.75 प्रतिशत से अधिक चीनी परता युक्त 52.0 करोड़ टन गन्ना (37.8 करोड़ टन चीनी एंव 7.8 करोड टन इथेनाल उत्पादन हेतु) प्रतिवर्ष पैदा करना होगा। 'मृदा–गन्ना–चीनी' कड़ी के दो प्रमुख जैविक अंग 'मृदा–गन्ना' व 'गन्ना –चीनी' हैं। विशेष तौर पर पहला अंग 'गन्ना उत्पादन' व दूसरा अंग 'चीनी परता' से सम्बंधित है। इन अंगों को क्रमशः समेकित पोषक तत्व प्रबंधन व कटाई उपरान्त प्रबन्धन प्रभावित करते हैं।

मृदा परीक्षण – महत्व एवं उपयोगिता

आधुनिक युग में उर्वरकों का महत्वपूर्ण स्थान है। किसान फसल में जो भी लागत लगाता है उसका काफी भाग उर्वरकों पर खर्च होता है इसलिये यह आवश्यक है कि उर्वरकों पर किये गये खर्च का समुचित लाभ मिले। अपने देश में उर्वरकों की केवल सीमित मात्रा ही उपलब्ध है अतः यह भी आवश्यक है कि हम उर्वरकों की इस मात्रा का उपयोग सावधानीपूर्वक तथा मृदा एवं फसल की आवश्यकतानुसार ही करें।

गन्ने की अधिकतम उपज प्राप्त करने के लिए अधिक उपज वाली किस्मों की खेती में सिंचाई, कीट व रोग की रोकथाम के उपाय के अतिरिक्त उचित मात्रा में पोषक तत्वों की पूर्ति करना भी आवश्यक है। सामान्य परिस्थितियों में गन्ने की उपज में पोषक तत्वों द्वारा केवल 30 प्रतिशत की वृद्धि होती है तथा शेष वृद्धि 30 प्रतिशत सिंचाई से, 9 प्रतिशत कीट उपचार से,

5–10 प्रतिशत फसल चक्र से तथा 7–8 प्रतिशत कर्षक क्रियाओं से होती है। ऐसी दशा में गन्ने की फसल में उर्वरकों की समुचित मात्रा का प्रयोग करने के लिए मृदा में उपलब्ध पोषक तत्व के स्तर का ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है। इसके लिए वर्तमान समय में उर्वरकों की माँग एवं मूल्य को ध्यान में रखते हुए यह नितान्त आवश्यक है कि गन्ना बोने से पूर्व ही उर्वरकों की दी जाने वाली कुल मात्रा का निर्धारण मृदा परीक्षण के आधार पर करा लिया जाय।

मृदा परीक्षण वह रासायनिक प्रक्रिया है जिससे मृदा के लिए आवश्यक पोषक तत्वों की पूर्ति की क्षमता का निर्धारण किया जाता है। इस विधि से मृदा के द्वारा पोषक तत्वों की आपूर्ति क्षमता फसल बोने से पूर्व ही ज्ञात हो जाती है। जिससे आवश्यक उर्वरकों की समयानुसार पूर्ति की जाती है।

मृदा परीक्षण के उद्देश्य

- मृदा में उपलब्ध पोषक तत्वों का सही–सही निर्धारण करना।
- विभिन्न फसलों की दृष्टि से पोषक तत्वों की कमी का पता करके विभिन्न फसलों के लिए उर्वरकों का निर्धारण करना।
- मृदा की विशिष्ट दशाओं का निर्धारण करना, जिससे मृदा को कृषि विधियों और मृदा सुधारक पदार्थों की सहायता से सुधारा जा सके।

मृदा का नमूना प्राप्त करना

मृदा परीक्षण में मृदा नमूने का एकत्रीकरण एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है क्योंकि मृदा नमूना एकत्रीकरण प्रक्रिया पर ही आगे की सभी प्रक्रियायें निर्भर होती हैं। यह भूमि के एक बड़े भाग का प्रतिनिधि नमूना होता है। सामान्यतः मृदा परीक्षण के लिए आधा किलोग्राम नमूना लिया जाता है। अतः जिस क्षेत्र से नमूना लिया जाय, वह उस क्षेत्र का वास्तविक नमूना हो यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए अन्यथा मृदा के नमूने के विश्लेषण के आधार पर दी गई सलाह गलत हो सकती है।

मृदा नमूना एकत्र करने की विधि

1. जिस भूमि क्षेत्र से नमूना एकत्र करना हो उसे भूमि की ढ़ाल, मृदा की संरचना, रंग, पिछली फसलों की किस्म, उपज तथा उसमें दी गई उर्वरकों की मात्रा आदि बातों को ध्यान में रखकर सर्वप्रथम अलग–अलग खण्डों में बॉट देना चाहिए। बाद में प्रत्येक खण्ड से अलग–अलग नमूने एकत्र करने चाहिए।
2. प्रत्येक खण्ड में 8–10 स्थानों से 9 इन्च की गहराई तक के नमूने एकत्र करने चाहिए। बाद में किसी फावड़े, खुर्पी या अन्य उपकरण की सहायकता से नमूना एकत्र किया जाय। नमूना लेने हेतु 'V' आकार का अथवा चौकोर गड्डा बनाया जाता है और गड्डे के एक इन्च मोटी समान परत से पूरी गहराई तक काट कर किसी साफ वर्तन अथवा पालीथीन के थैले में एकत्र कर लेने चाहिए।
3. तत्पश्चात सभी स्थानों से एकत्रित मृदा को पूरी तरह भुरभुरा बनाकर मिश्रित कर लेना चाहिए।
4. मृदा को एक गोले के रूप में फैलाकर रखते हैं, एवं उसमें से चार भाग कर आधा भाग रख लेते हैं। यही प्रक्रिया बार–बार दोहराते हैं जब तक नमूना आधा किलो बचकर न हो जाय। आधा किलो मृदा उक्त भूमि क्षेत्र का प्रतिनिधि नमूना है जिसे छाया में सूखाकर पहचान के लिए मोटे कागज के लेविल पर निम्न सूचना लिखकर उसी थैली के अन्दर रख देना चाहिए तथा दूसरा लेविल थैले के ऊपर बाँध देना चाहिए।

मृदा नमूना का लेबिल (नामपत्र)

1. किसान का नाम एवं पता
2. खेत का नम्बर/नाम
3. ग्राम
4. खण्ड
5. जिला
6. पिछली फसल का ब्यौरा
7. नमूने की गहराई
8. नमूना एकत्र करने वाले का नाम
9. बोई जाने वाली फसल तथा उसकी किस्म

मृदा नमूना लेते समय सावधानियां

1. गीली मिट्टी से मृदा नमूना नहीं लेना चाहिए।
2. खेत में अधिक ऊँची एवं अधिक नीची जगह से नमूना नहीं लेना चाहिए।
3. पुरानी मेड़, कम्पोस्ट के गड्डे तथा खाद डाले हुए स्थानों से नमूने न लिए जाय।
4. पेड़ तथा सड़क के किनारे व नाली के पास से मृदा नमूने नही लेना चाहिए।
5. मृदा की किस्म भिन्न हो, फसल में कोई रोग हो तो मृदा नमूने अलग–अलग एकत्र करना चाहिए।
6. खड़ी फसल में नमूना लेते समय दो पंक्तियों के मध्य से मृदा लेना चाहिए।
7. जहॉं मिट्टी की विशेष प्रकार की समस्याऐं जैसे क्षारीयता अथवा पानी का प्रभाव इत्यादि होता है तो ऐसी मिट्टी के नमूने क्षेत्र के एक स्थान से लेना चाहिए।
8. फसल की बुवाई के लगभग डेढ़–दो माह पूर्व ही मृदा नमूने परीक्षण हेतु प्रयोगशाला भेजना चाहिए, इससे समय पर मृदा परीक्षण परिणाम ज्ञात हो जायेगा और फसल के लिए आवश्यक

उर्वरकों का प्रबन्ध भी सुविधाजनक तरीके से किया जा सकेगा।

उर्वरकों की मात्रा का निर्धारण

विभिन्न प्रक्षेत्रों से लिये गये मृदा नमूनों को प्रयोगशाला में विभिन्न माप के छिद्रों वाली छलनियों से छानकर परीक्षण हेतु तैयार करके अम्लानुपात, जीवांशिक मात्रा, उपलब्ध फास्फेट एवं पोटाश की मात्रा हेतु परीक्षण करते हैं। इस प्रकार के प्राप्त आकड़ों को निम्न, मध्यम एवं उच्च वर्गो से सुनियोजित करके निर्धारित सीमाओं के आधार पर उर्वरक सुझाव दिये जाते हैं। मृदा में पोषक तत्वों की उपलब्धता के आधार पर निम्न, मध्यम एवं उच्च मात्रा का निर्धारण सारणी–1 में दिया गया है।

सारणी 1 : मृदा परीक्षण के द्वारा निर्धारित तत्वों की सीमायें

परीक्षण	तत्वों का स्तर		
	निम्न	मध्यम	उच्च
जीवांशिक मात्रा (%)	0.5 से कम	0.5–0.8	0.8 से अधिक
उपलब्ध नत्रजन(कि.ग्रा. / हे.)	280 कि.ग्रा. से कम	280–560 कि.ग्रा.	560 कि.ग्रा. से अधिक
उपलब्ध फासफोरस(कि.ग्रा. / हे.)	20 कि.ग्रा. से कम	20–40 कि.ग्रा.	40 कि.ग्रा. से अधिक
उपलब्ध पोटेशियम(कि.ग्रा. / हे.)	112 कि.ग्रा. से कम	112–280 कि.ग्रा.	280 कि.ग्रा. से अधिक
अम्लीयानुपात (पी.एच.)	अम्लीय 0–7	उदासीन 7–8	क्षारीय 8 से अधिक

भूमि में क्षारीयता अथवा ऊसर की पहचान

भूमि की सतह पर जब सफेद, स्लेटी अथवा काले रंग की पपड़ी दिखाई पड़े तो समझना चाहिए कि भूमि ऊसर हो रही है। वैज्ञानिक भाषा में भूमि में जब लवण तथा क्षारीय तत्वों की अधिकता हो जाती है तथा भूमि का जल निकास भी ठीक नही होता तो यह लवण अथवा क्षारीय तत्व भूमि के अन्दर से सतह पर आकर एकत्रित हो जाते हैं। ऐसी व्यवस्था में भूमि ऊसर कहलाती है। यह अवस्था फसल बढ़वार के लिए पूर्णतया हानिकारक होती है। साधारण भाषा में ऐसी भूमि को कल्चलर, ऊसर अथवा रेह कहा जाता है।

ऊसर भूमि की पूर्ण जानकारी तथा मृदा सुधार का प्रयोग मृदा नमूने को प्रयोगशाला में जाँच करवाकर किया जा सकता है।

ऊसर भूमि सुधार

ऊसर भूमि के सुधार हेतु क्रमानुसार निम्नलिखित प्रक्रियाये अपनानी चाहिए:

भूमि को समतल करना

भूमि को छोटे–छोटे हिस्सों में बाँटकर बैल द्वारा चालित अथवा ट्रैक्टर चालित यन्त्रों द्वारा मार्च–अप्रैल माह में समतल बनाना चाहिए। भूमि समतल हो गई है कि नहीं, इसकी परीक्षा खेत में एक हल्का पानी देकर की जा सकती है।

भूमि का समतलीकरण चार कारणों किया जाता है। खेत में समान स्तर से पानी दिया जा सके, फसल को भी समान रूप से पानी उपलब्ध हो, पोषक तत्वों की हानि कम से कम हो तथा लवणों एवं क्षारों को जल निकास द्वारा समान रूप से निकाला जा सके।

मेड़ बाँधना

खेत के चारों ओर लगभग 40 सेमी0 ऊँची मेड़ मार्च–अप्रैल माह में बाँध देना चाहि। इस मेड़ का मजबूत होना अत्यन्त आवश्यक है। तत्पश्चात खेत के अन्दर छोटी–छोटी 25–30 क्यारियां प्रति हैक्टर की दर से बना लेना चाहिये। क्यारियों की मेड़ लगभग 30 सेमी0 ऊँची निम्न उद्देश्य के आधार पर की जाती है :

(क) खेत के बाहर का पानी अन्दर आने न पाये।

(ख) सिंचाई के पानी का पूरा–पूरा उपयोग हो जाये।

(ग) संचित पानी के द्वारा हानिकारक लवणों को भूमि में रिसाने (लीचिंग) हेतु।

भूमि में उत्तम जल निकास का प्रबन्ध

खेत में उत्तम जल निकास हेतु खेत की सतह से 10–15 से0मी0 नीची फावड़े द्वारा नालियां बना लेनी चाहिये। निकास नालियों को खेत के ढाल तथा निकास की सुविधा के आधार पर बनाना चाहिए ताकि पानी एवं उसमें घुले लवणों को खेत के बाहर किसी स्थाई नाले द्वारा निकाला जा सके।

सिंचाई का प्रबन्ध

ऊसर भूमि के सुधार का आधार उत्तम सिंचाई प्रबन्ध ही है। इसके अभाव में ऊसर सुधार संभव नही है। पानी के प्रबन्ध हेतु खेत के निकट अपना नलकूप लगवाना अति उत्तम होता है। नहर के पानी का प्रयोग लाभदायक नहीं होता है क्योंकि इसमें अनेक लवणों एवं क्षारीय तत्वों के होने की सम्भावना अधिक रहती है। साथ ही नहरी पानी पर कृषक का कोई नियंत्रण न होने के कारण यह हमेशा समान रूप से उपलब्ध नहीं हो पाता है। जबकि नलकूप का पानी अधिकतर लवण रहित रहता है और इस पर कृषक का पूरा नियंत्रण भी रहता है। ऐसी अवस्था में पानी प्रयोग करने से पहले उसकी जांच किसी निकटतम भूमि परीक्षण प्रयोगशाला से करा लेनी चाहिये।

मृदा सुधार में रसायन का प्रयोग

मृदा परीक्षण के बाद जो संस्तुति प्राप्त हो उसके अनुसार ही जिप्सम अथवा पाइराइट की मात्रा को मृदा में 7–10 सेमी0 गहराई में फसल बोने से लगभग 20 दिन पूर्व जुताई करके अच्छी तरह मिला देनी चाहिये। तत्पश्चात खेत में गहरी सिंचाई करनी चाहिए जिससे भूमि तल पर लगभग 7 से0मी0 पानी भरा रहे। यह उचित होगा कि इसमें धान, जौ तथा बरसीम जैसी फसलें भी पैदा की जा सकती है। प्रथम वर्ष में खरीफ के मौसम में धान की फसल तथा रबी के मौसम में जौ और बरसीम की खेती करनी चाहिए तथा जायद के मौसम में ढैंचा भी बोना चाहिए इस प्रकार भूमि सुधार हेतु निम्न फसल चक्र का प्रयोग करना चाहिए।

1. प्रथम वर्ष – धान–जौ/बरसीम
2. आगामी वर्ष –ढैंचा/धान–गेहूं

धान की फसल की कटाई के बाद इसका पुवाल खेत में ही सड़ने के लिए छोड़ देना चाहिए ताकि भूमि में नमी भी बनी रहे और मृदा के कणों की रचना हो जाय। इस प्रक्रिया को अपनाते रहने पर भूमि में लगभग 2–3 वर्ष में सुधार दिखाई पड़ने लगता है।

गन्ने में पोषक तत्व प्रबन्धन

गन्ना लम्बी अवधि व अधिक उत्पादन वाली फसल होने के कारण भूमि से काफी मात्राा में पोषक तत्वों का दोहन करती है (सारणी 2)। अधिकतर भारतीय मृदाओ में नत्रजन एवं फासफोरस का स्तर निम्न तथा पोटेशियम का स्तर मध्यम से उच्च पाया जाता है। अतः गन्ने की उपज व गुणवत्ता दोनो बनाये रखने के लिए विभिन्न पोषक तत्वों का उचित मात्रा व अनुपात में फसल को देना अति आवश्यक है। उत्तर भारत में सामान्यतः नत्रजन, फास्फोरस एवं पोटेशियम 150:60:60 किग्रा/है. के अनुपात में देते हैं। संस्तुत पोषक तत्वों में से फास्फोरस एवं पोटेशियम की पूरी मात्रा एवं नत्रजन की एक तिहाई मात्रा बुआई के समय ही कूड़ में डाल देते हैं। शेष नत्रजन की मात्रा किल्ले निकलते समय एवं फिर उसके एक माह के अंतराल पर खेत में पौधे की जड़ के पास देना चाहिए।

आवश्यक पोषक तत्वों में नत्रजन का महत्व, चीनी परता एवं उत्पादन पर सबसे अधिक होता है। नत्रजन का प्रभाव सर्वविदित होने के कारण अधिक उत्पादन के लिए किसान इसका ही प्रयोग करते हैं लेकिन चीनी परता बढ़ाने की दृष्टि से अन्य पोषक तत्वों को संतुलित मात्रा में देना आवश्यक है। नत्रजन के साथ–साथ मृदा की जाँच के आधार पर फास्फोरस एवं पोटेशियम का प्रयोग अवश्य किया जाना चाहिए। फास्फोरस पौधों में अधिक नत्रजन के प्रभाव को संतुलित करता है। गन्ने के रस में मौजूद फास्फोरस मटमैलेपन को दूर करने में मदद करता है। इसलिए रस में 300 पी. पी. एम. फास्फोरस का होना आवश्यक होता है जिससे चीनी दानेदार व सफेद बनती है।

पोटेशियम, कोशिकाओं में पानी धारण क्षमता बढ़ाकर पौधों को सूखे से बचाता भी है। दक्षिण भारत में पोटेषियम के छिड़काव से चीनी की पैदावार में बढ़ोत्तरी पायी गयी। पोटेशियम गन्ने में शर्करा संग्रहित करने के साथ–साथ गन्ने की पेराई से रस की मात्रा भी बढ़ाता है।

मुख्य तत्वो के प्रबन्धन के अलावा द्वितीयक एवं सूक्ष्म तत्वों का प्रयोग मृदा परीक्षण के आधार पर किया जा सकता है। जिन मृदाओं में गंधक की कमी होती है उसमें गंधक के प्रयोग से गन्ने में चीनी का परता बढ़ता है। विशेष रूप से तिलहन समायोजित गन्ना आधारित फसल चक्रों में नत्रजन, फास्फोरस एवं पोटेशियम के बाद गंधक चौथा आवश्यक तत्व माना जाता है। सल्फर नाइट्रेटरिडक्टेज इन्जाइम की कार्यशक्ति बढ़ाकर नत्रजन उपयोग क्षमता को बढ़ाता है।

मृदा – गन्ना – चीनी श्रृंखला

कैल्सियम पौधों में कोशिकाओं की झिल्लियों की बनावट व दैहिकी दशाओं को बनाये रखने के लिए आवश्यक है। इसकी कमी से पौधों में खोखलापन आ जाता है तथा चीनी का संग्रह कम होने से परता कम पड़ता है, पौधों में सामान्य दैहिकी क्रियाओं के लिए कुछ पोषक तत्वों का सम्बन्ध इस प्रकार है–नत्रजन : गंधक, कैल्शियम : फास्फोरस व पोटेशियम : मैग्नीषियम हर एक जोड़ों के तत्व एक दूसरे के कार्य पूरक माने जाते हैं।

समेकित पोषक तत्व प्रबन्ध :

जैसा कि चित्र से स्पष्ट है 'मृदा–गन्ना–चीनी' कड़ी के दो प्रमुख जैविक अंग मृदा–गन्ना' व 'गन्ना–चीनी'

सरिणी–2 : गन्ने द्वारा मृदा से पोषक तत्वों का दोहन

पोषक तत्व	100 टन / हे. गन्ने द्वारा तत्वों का दोहन (किग्रा/ हे.)
नत्रजन	205
फास्फोरस	55
पोटेशियम	275
गंधक	30
लोहा	3.5
मैंगनीज	1.2
जिंक	0.6
तांबा	0.2

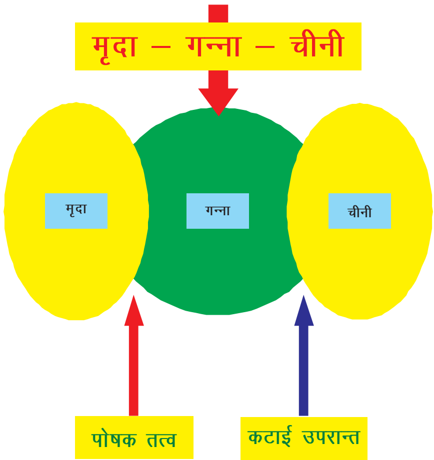

चित्र : 1

हैं। विशेष तौर पर पहला अंग 'गन्ना उत्पादन' व दूसरा अंग 'चीनी परता' से सम्बंधित है। इन अंगो को क्रमशः समेकित पोषक तत्व प्रबंधन व कटाई उपरान्त प्रबन्धन प्रभावित करते है। यह पाया गया है कि पहला अंग मृदा उत्पादकता, गन्ना उपज व चीनी परता तीनो को नियंत्रित करता है। इसी लिए यह कहा गया है कि 'चीनी खेत में बनती है न कि मिल में' या 'चीनी का संस्करण खेत में और रिकवरी मिल में'। इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए गन्ने में समेकित पोषक तत्व प्रबन्धन बहुत आवश्यक है क्योंकि मृदा में ह्यूमस स्तर बढ़ाने व उसे संरक्षित रखने तथा सूक्ष्म जीवाणु गति विधियों के लिये आदर्श वातावरण बनाये रखने के लिये कार्बनिक खादों का प्रयोग अति आवश्यक है। जैविक खादों के प्रयोग से गन्ने के लिये आवश्यक सूक्ष्म पोषक तत्वों की अधिकांश मात्राा की पूर्ति की जा सकती है, जिनका चीनी परता बढ़ाने में महत्व पूर्ण योगदान है।

कुछ महत्त्वपूर्ण एवं रोचक जानकारी

- किसी देश की कृषि का मुख्य आधार क्या होता है–उस देश की मिट्टी
- भारत में कितने प्रकार की मिट्टी पायी जाती हैं– 8
- भारत की सबसे महत्वपूर्ण मिट्टी कौन–सी है–जलोढ़ मिट्टी
- नवीन जलोढ़ मिट्टी को अन्य किस नाम से जाना जाता है–खादर मिट्टी
- किस मिट्टी में पोटाश की मात्रा सबसे अधिक होती है–जलोढ़ मिट्टी में
- काली मिट्टी का दूसरा नाम क्या है–रेगुर मिट्टी
- काली मिट्टी किस फसल के लिए सबसे अधिक उपयोगी है–कपास
- लाल मिट्टी का 'लाल रंग' किसके कारण होता है–लौह ऑक्साइड के कारण
- किस मिट्टी में आयरन व सिलिका सबसे अधिक पाया जाता है–लैटराइट मिट्टी
- चाय की खेती के लिए सबसे उपयुक्त मिट्टी कौन–सी है–लैटराइट मिट्टी
- भारत के समस्त स्थल भाग के कितने भाग में जलोढ़ मिट्टी है– 24%
- लावा के प्रवाह से किस मिट्टी का निर्माण होता है–काली मिट्टी
- कौन–सी मिट्टी जैव पदार्थों से भरपूर होती है–काली मिट्टी
- किस मिट्टी का निर्माण बैसाल्ट चट्टानों के विखंडन से होता हैं–काली मिट्टी
- किस मिट्टी में कृषि के लिए सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती हैं–काली मिट्टी
- भारत में लाल मिट्टी का विस्तार सबसे अधिक कहाँ है– आंध्र प्रदेश व तमिलनाडु
- किस मिट्टी में लोहे और एल्युमीनियम के कण पाये जाते है–लैटराइट मिट्टी में
- धान की खेती के लिए कौन–सी मिट्टी उपयुक्त होती है–दोमट मिट्टी
- मृदा अपरदन को कैसे रोका जा सकता है–वन रोपण द्वारा
- रेगुड़ मिट्टी सबसे अधिक किस राज्य में पायी जाती है–महाराष्ट्र में
- किस प्रकार की मिट्टी में जिप्सम का प्रयोग करके उसे उपजाऊ बनाया जाता है–उसर मिट्टी को
- किस प्रकार की मिटटी में कार्बनिक पदार्थों की अधिकता होती है–काली मिट्टी में
- भारत के किस राज्य में अंतर्देशीय लवणीय आर्द्र भूमि है–राजस्थान में
- लैटराइट मिट्टी को अन्य किस नाम से जानते हैं– मुखरैला मिट्टी
- लैटराइट मिट्टी सबसे अधिक कहाँ पायी जाती है–मालाबार तटीय प्रदेशों में
- ग्रेनाइट और नाइस चट्टानों के द्वारा किस मिट्टी का निर्माण होता है–लाल मिट्टी का
- किस प्रकार की मिट्टी में सबसे कम उर्वरक की आवश्यकता होती है–जलोढ़ मिट्टी में
- भारत के उत्तरी मैदानों में किस प्रकार की मिट्टी पाई जाती है–जलोढ़ मिट्टी
- किस मिट्टी का प्रायद्वीपीय भारत में सर्वाधिक क्षेत्र है–काली मिट्टी
- पुरानी जलोढ़ मिट्टी को अन्य किस नाम से जाना जाता है–बांगर
- गंगा में जलोढ़ मिट्टी भूमि की सतह से कितने नीचे तक पाई जाती है– 600 मीटर
- लैटराइट मिट्टी के निर्माण में उत्तरदायी कौन है– अप क्षालन एवं केशिका क्रिया
- मिट्टी के अध्ययन को क्या कहा जाता है–मृदा विज्ञान

ज्ञान–विज्ञान प्रभाग

भारत की विभिन्न प्रकार की मृदाओं में गन्ने की खेती हेतु उन्नत सस्य क्रियायें एवं सुझाव

ओम प्रकाश, मीना निगम, अशोक कुमार श्रीवास्तव, सोमेन्द्र प्रसाद शुक्ल, ब्रह्म प्रकाश एवं वरूचा मिश्रा
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

प्रकृति द्वारा प्रदत्त सभी आधारभूत संसाधनों में मृदा एक मूलभूत आवश्यकता है। भूमि हमें जल, वायु, पोषण तथा अनुकूल वातावरण प्रदान करती है। प्राचीन काल से मनीषियों ने पृथ्वी की उपमा माँ से की है। इसकी कोख में सभी जीवधारियों का विकास जन्म से लेकर मरण तक निहित है। सभी जीवधारी एवं मानव निर्मित वस्तुएं मिट्टी की बनी हैं। वेदों में सबसे प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेद के अनुसार, चाक्षुष मनु के प्रपौत्र राजा वेन के पुत्र पृथु, कृषक थे। महाभारत के भीष्म पर्व के तेरहवें अध्याय का एक श्लोक उदिधृत है जिसमें धृतराष्ट्र संजय से पूछते हैं कि मनुष्य जमीन का अर्जन करने के लिए लड़ते क्यों हैं?

भूमौ संजायते सर्बम्, भूमौ सर्वे प्रतीयते।
भूमिः प्रतिष्ठा भूतानाम्, भूमिरेव परभणम्।।

यह श्लोक सतत् फसल उत्पादन हेतु मृदा की प्राथमिकता एवं मृदा स्वास्थ्य के महत्व को दर्शाता है।

मृदा के लिए पारिभाषिक शब्द

मृदा (Soil) शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के शब्द सोलम (Solum) से हुई है, जिसका शब्दार्थ फर्श (Floor) है। इस प्रकार मृदा, भूमि की ऊपरी परत मानी जाती है। मृदा विज्ञान की भाषा में मृदा की परिभाषा ''मृदा एक त्रिविमीय (लम्बाई, चौड़ाई और गहराई) प्राकृतिक पिण्ड है, जो भूमि की ऊपरी सतह पर होती है। इसकी सभी विशेषतायें इसके पैतृक पदार्थ, जलवायु एवं जीवों की दीर्घकालीन क्रियाओं का परिणाम होती हैं। यह पादप वृद्धि का एक माध्यम है जिससे पौधों की वृद्धि के लिए आवश्यक पोषक तत्व और सहारा मिलता है।'' सोईल (Soil), अंग्रेजी शब्द का हिन्दी में अर्थ मृदा है, जिसमें एस (सोल)–अकेला, ओ (आर्गेनिक)–कार्बनिक, आई (इनआर्गेनिक)– अकार्बनिक एवं एल (लाइफ)–जीवन माना गया है। अर्थात् सोईल (सोल आफ इनफिनाइट लाइफ) को अनंत जीवन की आत्मा बताया है। इसके बिना धरती पर रहने वाले जीव–जंतुओं का जीवन असम्भव है। भूमि ब्रह्माण्ड का एक अत्यन्त सूक्ष्म भाग है। इसकी ऊपरी सतह मृदा से ढकी है। भू–गर्भ के अनुसार भूमि तीन मण्डलों–वायु जल एवं थल–मण्डल से मिलकर बनी होती है।

मृदाः पादप वृद्धि का एक आधार

मृदा प्रकार एवं उसकी उर्वरता से कृषि का एक घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। सामान्यतः अच्छी उपजाऊ शक्ति वाली मृदा की उर्वरता भी अच्छी होती है। मृदा उर्वरता का अभिप्राय उसकी उस क्षमता से है जो पौधों के लिए आवष्यक सभी पोषक तत्वों को उचित एवं पर्याप्त मात्रा में प्रदान करके उसकी अच्छी वृद्धि में सहयोग कर सके।

मृदा से गन्ने की फसल द्वारा पोषक तत्वों का दोहन

औसतन 100 टन/हेक्टेयर गन्ने की पैदावार हेतु मृदा से 205 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 55 कि.ग्रा. फास्फोरस, 275 कि.ग्रा.

गन्ने की बुवाई हेतु खेत

खेत में गन्ने की फसल

गन्ने से निर्मित चीनी

पोटैशियम, 3.4 कि.ग्रा. लोहा, 1.2 कि.ग्रा. मैगनीज, 0.6 कि.ग्रा. जस्तॉ एवं 0.2 कि. ग्रा. तॉबा का दोहन होता है। इन पोषक तत्वों का जब मृदा से ह्रास उनकी आपूर्ति मात्रा से अधिक हो जाता है तो पौधों में इनकी कमी के लक्षण प्रकट होने लगते हैं।

मृदा आधारित टिकाऊ गन्ना उत्पादन हेतु उन्नत कृषि तकनीकियाँ एवं सुझाव

मृदा स्वास्थ्य को टिकाऊ बनाये रखने एवं गन्ना उत्पादन हेतु प्रमुख प्रौद्योगिकिया इस प्रकार से है :

गन्ना उत्पादन एवं मृदा–स्वास्थ्य आकंलन हेतु मृदा परीक्षण

पेड़–पौधों को अपनी वृद्धि एवं विकास हेतु विभिन्न पोषक तत्वों की उचित मात्रा की आवश्यकता होती है। इन पोषक तत्वों की कमी या अधिकता का फसल उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अतः मिट्टी परीक्षण के आधार पर संतुलित मात्रा में इन पोषक तत्वों को उपलब्ध कराना चाहिए। इस कार्य हेतु मिट्टी की जाँच कराना आवश्यक होता है क्योंकि–

- मिट्टी की जाँच से पोषक तत्वों (नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटाश, गंधक, कैल्सियम, मैग्नीशियम, लोहा, मैगनीज, जस्ता, कॉपर, मौलिब्डिनम, बोरान एवं सिलकान) के स्तर जैसे अति–निम्न, निम्न, मध्य एवं उच्च श्रेणी का पता चलता है।
- भूमि उस फसल के लिए उपयुक्त है या नही जिसमें फसल बोने जा रहे है।
- जो फसल बोने जा रहे है उसमे कौन सी खाद, कितनी मात्रा में और कब प्रयोग करनी चाहिए।
- भूमि के लिए किसी भू–सुधारक की आवश्यकता है या नहीं, यदि है तो किस भू–सुधारक की और कितनी मात्रा में
- विभिन्न मृदा–विकारों को दूर करने लिए प्रयुक्त विधा
- मूल्यवान उर्वरकों एवं जैविक खादों का समुचित उपयोग
- मृदा में आ रहे भौतिक, रासायनिक एवं जैविक परिवर्तनों का आंकलन

मृदा स्वास्थ्य परीक्षण कब करायें

मिट्टी की जाँच के लिये मिट्टी का नमूना बुवाई से लगभग 25–30 दिन पहले लेकर मृदा परीक्षण प्रयोगशाला में भेंज दें जिससे मिट्टी की जांच की रिपोर्ट फसल की बुवाई से पहले मिल जाये। मिट्टी का नमूना जहां तक हो सके खाली खेत से ही लेना चाहिये। यदि किसी खास कारण से खाली खेत से नमूना लेने की स्थिति में न हों तो पिछली फसल की कटाई से पूर्व फसल की कतारों के बीच से नमूना लें। मृदा कारकों जैसे पीएच, विद्युत चालकता एवं कार्बनिक पदार्थ प्रत्येक मौसम में, तथा मुख्य, द्वितीयक एवं सूक्ष्म पोषक तत्वों की एक से दो वर्षो के मध्य जांच कराना आवश्यक होता है।

मृदा परीक्षण हेतु मिट्टी नमूना के साथ दी जाने वाली सामान्य सूचनायें

मिट्टी के नमूना के साथ दी जाने वाली सामान्य सूचनायें जिसके आधार पर मृदा परीक्षण करके मृदा स्वास्थ्य कार्ड को क्षेत्र के अनुसार तैयार करके मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन किया जाता है। सामान्य सूचनाएं जो आवश्यक है इस प्रकार से है–

किसान का नाम, पिता/पति का नाम, शिक्षा ,व्यवसाय, ग्राम, पोस्ट आफिस (पिन कोड सहित), जिला, राज्य, नमूना लेने की तिथि, परीक्षण हेतु प्रयोगशाला में भेजने की तिथि, खेत का नम्बर तथा पहचान, सिंचाई के उपलब्ध साधन, पिछली बोई गयी फसल का नाम ,कौन सी फसल बोना चाहते है?, पिछली फसल में दी गयी खाद एवं उर्वरकों की मात्रा, खेत का क्षेत्रफल (बीघा/एकड़/हेक्टेयर) सम्पक्र हेतु टेलीफोन/मोबाइल नं., मृदा परीक्षण की सुविधा राज्यस्तरीय/कृषि विश्वविद्यालय/आई.सी.ए.आर./अन्य, पिछली वर्ष मृदा परीक्षण कब कराया गया था तथा मृदा परीक्षण के वारे मे क्या विवरण है?

मृदा परीक्षण की व्याख्या

मृदा परीक्षण प्रयोगशाला में मृदा परीक्षण के परिणामों को तीन स्तरों कम, मध्यम और उच्च में वर्गीकृत करते हैं। भारत के विभिन्न राज्यों की मृदा प्रयोगशालायें तालिका में दिये मानकों का अनुसरण करती है। भारत में मृदा परीक्षण आंकड़ों के लिए क्रम निर्धारण निम्नवत है–

मृदा (खेत) स्वास्थ्य कार्ड योजना का महत्व

राष्ट्रीय स्तर पर चलाई जा रही मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना का शुभारम्भ इस आशय से किया गया है कि किसान के खेत की उर्वरा शक्ति का आंकलन वैज्ञानिक आधार पर किया जा सके, और फसल का उत्पादन उपलब्ध संसाधनों का सम्यक प्रयोग कर अधिकाधिक उत्पादन बढ़ाया जा सके और अधिक आर्थिक लाभ भी मिलें। मिट्टी की सेहत परखने और फसलों की सिंचाई के लिए पानी की उपलब्धता को भी प्राथमिकता दी है।

गन्ने की खेती में मृदा सम्बन्धी गुणों का महत्व

गन्ने की अच्छी उपज प्राप्त करने में खेत की तैयारी, बुवाई का समय, विधियाँ तथा बीज दर अहम् भूमिका निभाते हैं।

मृदा परीक्षण	निम्न	मध्यम	उच्च
उपलब्ध नाइट्रोजन (किग्रा/हे.)	280 से कम	280–560	560 से अधिक
उपलब्ध फास्फोरस (किग्रा/हे.)	10 से कम	10–24.6	24.6 से अधिक
विनिमयशील पोटाश (किग्रा/हे.)	108 से कम	108–280	280 से अधिक
कार्बनिक कार्बन (उपलब्ध नाइट्रोजन के माप की तरह प्रयुक्त) %	0.5 प्रतिशत से कम	0.5–0.75 प्रतिशत	0.75 प्रतिशत से अधिक
मृदा अभिक्रिया (पी.एच.) :			
विवरण	**निम्न**	**मध्यम**	**उच्च**
अम्लीय	6.0 से कम पी एच	क्षारीय मृदा बनाने की ओर प्रवृत्त	पी.एच. 8.5–9.0
अधिकतर फसलों के लिए सामान्य पी.एच.	6.0–8.5	क्षारीय मृदा, बहुत सी फसलों के लिए हानिकारक	पी.एच. 9.0 से अधिक
विद्युत चालकता (कुल विलेय लवण dSm^{-1}) :			
1 से कम	सामान्य		
1 से 2	अंकुरण के लिए क्रान्तिक विलेय लवण अंश		
2 से 4	लवण संवेदी फसलों की वृद्धि के लिए क्रान्तिक विलेय लवण अंश		
4 से अधिक	अधिकांश फसलों के लिए हानिकर		

गन्ने के उपयुक्त जमाव हेतु मृदा में लगभग 25 प्रतिशत नमी अनुकूल होती है। मिट्टी में ठोस, द्रव और गैस मिली रहती है। मृदा की दानेदार संरचना में कर्षण क्रियाएं सुचारू रूप से संपादित होती है तथा इनमें पौधों की अच्छी वृद्धि होती है। जल भराव एवं क्षारीय मृदा वाली भूमि में गन्ने की पैदावार अपेक्षाकृत कम होती है।

गन्ने की खेती भारत वर्ष में विभिन्न जलवायु वाले क्षेत्रों की किसी भी प्रकार की मिट्टी पर की जा सकती है। फिर भी– (अ) जलोढ. (ब) काली मृदा (स) लाल तथा लैटराइटिक मृदा (द) तटीय जलोढ़ व लवणीय तथा क्षारीय मृदाओं में खेती की जाती है। उष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में काली मृदा में लोहा, एल्युमिनियम, चूना एवं मैग्नीशियम प्रचुर मात्रा में पाये जाते है।

मिट्टी में पाये जाने वाले सूक्ष्म जीवों के साथ ही विभिन्न प्रकार के जीवाश्म व केंचुऐ मिट्टी की उर्वरा शक्ति बनाये रखने में सहायक होते है। मृदा में प्रतिग्राम करोड़ों की संख्या में लाभदायक जीवाणु पाये जाते हैं, जो अपनी जैविक क्रियाओं द्वारा वायुमंडलीय नत्रजन का स्थिरीकरण/मृदा में अनुपलब्ध दशा में उपस्थित पोषक तत्वों को उपलब्ध दशा में परिवर्तित कर पौधों की वृद्धि एवं विकास में सहायक होते है।

मृदा अभिक्रिया (पी.एच.) एवं कार्बन–नाइट्रोजन अनुपात का गन्ना उत्पादन में महत्व

गन्ने की अच्छी उपज एवं गुणवत्ता हेतु समान्यतः पी.एच. मान 6.5–7.5, उष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में काली मृदा का पी.एच. मान 6.7 से 7.5 उपयुक्त मानी जाती है। गन्ने की अच्छी उपज एवं गुणवत्ता हेतु दोमट मिट्टी जिसमे कार्बनिक पदार्थ 0.5–0.6 प्रतिशत वाली मृदा अपेक्षाकृत अधिक उपयुक्त होती है। निम्नलिखित कार्बन–नाइट्रोजन अनुपात वाली मृदायें गन्ना उत्पादन हेतु उपयुक्त मानी जाती हैं।

मृदा का प्रकार	कार्बन–नाइट्रोजन अनुपात सीमा
जलोढ़	9.0–14.0
काली	9.0–14.8
लैटराइटी	8.5–13.9
रेगिस्तानी	6.4–11.4
पहाड़ी	9.2–13.7
सागर तटीय जलोढ़	9.8–14.7

मृदा स्वास्थ्य को टिकाऊ बनाये रखने हेतु किसानोपयोगी विभिन्न लाभदायक तकनीकियाँ

किसी भी देश की सुख–समृद्धि वहाँ की मृदा का प्रकार, उपजाऊ शक्ति, मृदा–स्वास्थ्य एवं जलवायु, पर निर्भर करती है। मृदा स्वास्थ्य को टिकाऊ बनाये रखने एवं गन्ना उत्पादन

बढ़ाने हेतु लाभदायक किसानोपयोगी प्रमुख प्रौद्योगिकियाँ निम्नवत है।

- सघन कार्बनिक खाद का प्रयोग
- गन्ने की पेड़ी पर गन्ने की पताई को मल्च के रूप में प्रयोग करने से भूमि की भौतिक दशा में सुधार तथा अन्य लाभ जैसे नमी का संरक्षण संम्भव है।
- गन्ने के साथ अन्तःफसली खेती, लगातार मृदा की उत्पादक क्षमता बढ़ाने एवं उत्पादन को टिकाऊ बनाये रखने में लाभकर है। फरवरी मार्च में–मूंग, उड़द, सभी मौसमी सब्जियाँ। जुलाई में लोबिया, ज्वार, मूंग, मक्का, बाजरा और सभी मौसमी सब्जियाँ। अक्टूबर–(गन्ने की पेड़ी में) गेंहूँ तथा रबी की अन्य फसलें ले सकते है।
- प्रेसमड तथा ग्लूकोनएसीटोबैक्टर डायजाट्रौफिक्स जैसी जैविक खादों का प्रयोग।
- मिट्टी परीक्षण आधारित संतुलित उर्वरक प्रयोग।
- फसल विविधीकरण।
- हरी खादों/फसल अवशेषों की कम्पोस्टिंग।
- ग्रीष्म कालीन जुताई तथा भू–समतलीकरण।
- दलहनी फसलो को फसल चक्र में वरीयता। लवणीय मृदा पर फसल चक्रः जैसे ढ़ैंचा (हरी खाद)–गन्ना–मक्का–जौ ले सकते है।
- अधिक मात्रा में लवण युक्त जल से सिंचाई पर प्रतिबंध।
- मृदा सोलराइजेशन

दीमक प्रभावित मृदाओं का प्रबंधन

दीमक प्रभावित खेत में गन्ना उत्पादन हेतु दीमक के प्रकोप को नियंत्रण करना अति आवश्यक है। दीमक का प्रकोप गन्ने की बुआई के समय से ही शुरू हो जाता है। दीमक से प्रभावित मृदा गन्ने के बीज को प्रभावित करती है जिसके फलस्वरूप गन्ने का अंकुरण घट जाता है। दीमक के समन्वित नियंत्रण हेतु क्लोरोपाइरीफांस 20 ई.सी. की 5 लीटर दवा को 1500–1600 लीटर पानी प्रति है0 की दर से बुआई के समय गन्ना के बीज के टुकड़ों पर छिड़कते है। यदि मृदा का अम्लीय मान अधिक हो या बाद की अवस्थाओं में दीमक का प्रकोप फसल में दिखाई दे तो मृदा में ड्रिप सिंचन प्रणाली के साथ उपरोक्त पीड़क नाशी का प्रयोग करें।

मृदा में गन्ने के लिए उर्वरकों के प्रयोग की प्रमुख विधियाँ

मुख्यतः निम्नलिखित तीन विधियॉ प्रयोग में लायी जाती है जैसे–

- गन्ना बुआई के समय या उससे पहले खेत में समान रूप से उपरिवेशन।
- गन्ने की खड़ी फसल में बढ़वार की विभिन्न अवस्थाओं में।
- खेत में गन्ने की खड़ी फसल पर पर्णीय छिड़काव करके।

मृदा संबंधी प्रमुख कारक जो गन्ने की वृद्धि एवं पैदावार को प्रभावित करते हैं

पादप वृद्धि को प्रभावित करने वाले कारकों की संख्या 52 पहचानी गयी है उनमें से 45 कारकों को नियंत्रित किया जा सकता है। शेष 7 कारकों (ताप, सूर्य–प्रकाश, आधी/तूफान, बाढ़, वर्षा, कार्बन डाईआक्साईड और स्थलाकृति) प्रकृति आधारित हैं जो मृदा की गुणवत्ता एवं स्वास्थ्य को परोक्ष या अपरोक्ष रूप से प्रभावित करते हैं; वे निम्न है :

- भूमि में उर्जा का प्रमुख स्रोत ह्यूमस के रूप में विद्यमान रहता है। इसके विद्यटन के फलवस्वरूप ह्यूमिक अम्ल के रूप में परिवर्तित होकर पौधों की वृद्धि एवं पैदावार को प्रभावित करता है।
- रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों एंव खरपतवार नाशकों के अंधाधुध प्रयोग से भूमि की उर्वरा शक्ति प्रभाविकत होती है।
- मृदा उर्वरता में विभिन्नता जो नमी, तापक्रम, वायु का संगठन, मृदा–जीव संख्या, संरचना, अभिक्रिया, जल, आदि से उत्पन्न होती है।
- बहुउपयोगी मृदा जीवाणुओं की संख्या में निरन्तर बदलाव।
- जलमग्नता से गन्ने की पैदावार घटती है।
- मृदा से जल निकास न होने के कारण गन्ने की पैदावार और चीनी परता में भी कमी देखी गयी है।
- अप्रभावी फसल चक्र गन्ने के लिए प्रतिकूल होता है। इसके लिए कहा गया है कि–

साठी में साठी करै, ऊरू बाडी में बाडी।
ईख में जो ईख बोये, फूँकों वाकी दाढी।।

अर्थात जो किसान साठी (धान) के खेत में फिर से धान बोता है और गन्ना (ईख) के खेत में फिर से गन्ना बोता है उसे पैदावार कम होने से हानि होती है।

अतः संक्षेप में कह सकते हैं कि मृदा की उर्वरता हमारी महत्वपूर्ण पूँजी है। अगर स्वस्थ मृदा होगी तो हम अधिक मात्रा में गन्ना उपजा सकेगें और बढ़ती हुई जनसंख्या के निमित पर्याप्त मात्रा में शर्करा तथा अन्य सम्बन्धित उत्पाद भरपूर मात्रा में उपलब्ध करा देश के हित में योगदान देंगे।

ज्ञान–विज्ञान प्रभाग

मृदा का गन्ने के रस एवं गुड़ की गुणवत्ता पर प्रभाव

मीना निगम, ओम प्रकाश, सोमेन्द्र प्रसाद शुक्ल एवं अशोक कुमार श्रीवास्तव

भाकृअनुप– भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

कृषि उत्पादन हेतु मृदा एक मुख्य एवं आवष्यक घटक है। एक अच्छी मृदा का वातावरण जड़ों की वृद्धि के लिए, जल, वायु संचार के लिए, विभिन्न सूक्ष्म जीवियों की क्रियाशीलता एवं पौधों को पोषक तत्व उपलब्ध कराने के लिए उपयुक्त होना चाहिए।

विभिन्न फसलों के लिए भिन्न प्रकार की मृदा एवं वातावरण दशा अधिकतम फसल उत्पादन प्राप्त करने में मुख्य रूप से सहायक होती है। गन्ने का उत्पादन मुख्यतः शर्करा एवं गुड़ उत्पादन के लिए किया जाता है। इससे मिलने वाले उद्योग आधारित सह–उत्पाद जैसे शीरा, प्रेस मड तथा खोई आदि का कृषि, गुड़ उत्पादन, पशु चारा तथा अन्य मूल्यवर्धित उपयोगी उत्पाद बनाने में प्रयोग होता है।

शर्करा तथा गुड़ उत्पादन के लिए गन्ने के पौधे (तने) के रस का प्रयोग होता है जिसमें बहुतायत में सुक्रोज तथा कुछ मात्रा में ग्लूकोज व फ्रक्टोज होता है। इसमें कुछ गैर शर्करा तत्व जैसे नत्रजन पदार्थ, कार्बनिक पदार्थ तथा लवण भी होते हैं। यह पदार्थ ज्यादातर उपापचयी क्रियाओं से बनते है। यह उपापचयी क्रियाएँ वातावरण, मृदा के प्रकार तथा गन्ना उत्पादन हेतु सस्य घटकों पर निर्भर करते हैं। गन्ने का उत्पादन भिन्न–भिन्न प्रकार की मृदा, पर जैसे बलुई से लेकर चिकनी मिट्टी तक में होता है। गन्ने के रस की गुणवत्ता पर मिट्टी का अत्यधिक प्रभाव पड़ता है जो परिणामतः गुड़ की गुणवत्ता और भण्डारण को प्रभावित करता है।

मृदा एवं गन्ने के रस के रासायनिक संगठन में सम्बन्ध

भारत में गन्ना का उत्पादन पाँच विभिन्न कृषि जलवायु क्षेत्रों में होता है, जो गन्ने के रस में उपस्थित शर्करा एवं गैर शर्करा तत्वों को प्रभावित करते है। भिन्न–भिन्न मृदा में उगाए जाने पर गन्ने के रस के रासायनिक संघटन में परिवर्तन देखे गये हैं।

एल्यूवियल मृदा जिसमें क्षार अधिक हो, पर उगाए गए गन्ने के रस में सामान्य मृदा पर उगाए गए गन्ने की तुलना में कम शर्करा पाई गई और इस गन्ने के प्रसंस्करण में शीरे का उत्पादन भी अपेक्षाकृत अधिक हुआ।

उत्तर प्रदेश एवं पंजाब

पंजाब व उत्तर प्रदेश में कुछ किस्मों को शुष्क क्षेत्रों में उगाया गया तो उनमें खनिज तो अधिक पाए गए परन्तु घुलनशील लवणों की मात्रा में कोई बदलाव नहीं हुआ। यद्यपि दोनों राज्यों की मृदा जलोढ़/एल्यूवियल है। पंजाब की तुलना में उत्तर प्रदेश में गुड़ का परता अपेक्षाकृत अधिक रहा।

तटीय आन्ध्र प्रदेश एवं उड़ीसा

तटीय आन्ध्र प्रदेश व उड़ीसा जहाँ मृदा दोमट (या क्षारीय) है, गन्ने का रस अम्लीय (पी.एच. 5.2–5.4) प्रकृति का होता है। उड़ीसा के कुछ भागों में जहाँ मिट्टी लेटराइटिक है अम्लीय रस में द्विसंयोजी धनायन कम तथा सिलिका ज्यादा होते है जिससे गुड़ का जमाव भली प्रकार नहीं हो पाता है चाहे क्यों न उसमें चूने की अधिक मात्रा का प्रयोग किया जाए। आन्ध्र प्रदेश के चित्तूर क्षेत्र के कुछ भागों में मृदा का पी.एच. अधिक है। गन्ने के रस को सामान्य ढंग से उबालने पर गुड़ का अच्छा जमाव मिलता है।

केरल

केरल की लेटराइटिक मृदा का पी.एच. मान कम (5.2) होता है उसमें द्विसंयोजी धनायन भी कम होते है तथा घुलनशील सिलिका बहुतायत में होती है। इस प्रकार की मृदा पर उगाए गए गन्ने के रस से गुड़ बनाने पर यह जमता नहीं है।

कर्नाटक व मुम्बई (डेक्कन भू–भाग, महाराष्ट्र)

कर्नाटक के हॉसपेट एवं मुम्बई की डेक्कन क्षेत्र में मिट्टी की पी.एच. काफी अधिक (पी.एच. 9.5) है। परिपक्व गन्ने के रस को साधारण ढंग से उबालकर ही अच्छा गुड़ जम जाता है। इन्हीं भू–भागों पर ज्यादा चूना वाली मिट्टी में उत्पन्न गन्ने के रस का शोधन करने के लिए फॉस्फेट की आवश्यकता होती है।

बिहार

मिट्टी में उपलब्ध P_2O_5 का अधिक स्तर उच्च कोटि का गुड़ बनाने के लिए लाभकर है जबकि उत्तरी बिहार में मिट्टी में कैल्शियम कार्बोनेट की अधिक मात्रा रस की गुणवत्ता में गिरावट लाती है। मध्यम से हल्की संरचना वाली मिट्टी, अच्छी जल निकासी के साथ, अच्छा गुड़ बनाने के लिए सबसे उपयुक्त होती है।

महाराष्ट्र

महाराष्ट्र में गहरी काली मिट्टी (डीप ब्लैक स्वाइल) जिसमें अपेक्षाकृत अधिक पोषक तत्व होते है, में उगाए गए गन्ने से प्रायः गहरी रंगत का गुड़ बनता है।

- **कोल्हापुर**

सिल्ट लोम मृदा जिसमें अपेक्षाकृत कम क्ले काम्प्लेक्स होते है तथा कम धनायन विनिमय क्षमता की वजह से गन्ने में पोषक तत्वों का कम संचयन होता है। इसके परिणामस्वरूप अपेक्षाकृत अधिक शुद्धता का, हल्की रंगत का गुड़ प्राप्त होता है एवं गुड़ का परता भी अधिक मिलता है।

- **पाड़ेगाँव**

यहाँ की जलवायु प्रायः शुष्क है। इस क्षेत्र की मृदा में एक्सपेन्डिग मोन्टमोरिलोनाइट क्ले मिनरल होने से अधिक लवण संचयन तथा उच्च क्षार विनिमय क्षमता होती है। इस मृदा में उत्पन्न गन्ने में अधिक पोषक तत्व मुख्यतः नत्रजन यौगिक होते है जो सामान्य स्थितियों में गुड़ बनाने पर गुड़ की रंगत को गहरा कर देते हैं। सुनहरी रंगत का गुड़ प्राप्त करने के लिए अधिक मात्रा में शोधकों का प्रयोग करना पड़ता है। पर्याप्त वर्षा न होने की स्थिति में फसल की सिंचाई करनी पड़ती है। अधिक सिंचाई करने से शर्करा कम रह जाती है जोकि गुड़ के परते पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है।

मृदा कारकों का प्रभाव

लवण प्रभावित मृदा–

लवणीय मृदा में गन्ना उगाने से उसमें पोटाश एवं क्लोरीन तत्व बढ़ने के कारण रस की शुद्धता में ह्रास होता है। इस गन्ने के रस से बना गुड़ नमकीन होता है तथा उसके भण्डारण पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। लवणों का यह प्रभाव रस शोधक डालने के उपरान्त भी कोलॉयड (स्कन्दकों) के कम अवक्षेपण के कारण होता है।

जलमग्न मृदा–

फसल में जुलाई से सितम्बर तक 120 सेमी. गहरे जल भराव से गन्ने के रस में गैर प्रोटीन नत्रजन यौगिकों की मात्रा (कुल नत्रजन का 90 प्रतिशत) में वृद्धि तथा सुक्रोज एवं गोंद की मात्रा में गिरावट दर्ज की गई। इन परिस्थितियों में ग्लूकोज तथा राख तत्व बढ़ता है एवं P_2O_5 घटता है। इस तरह के असंतुलन से रस की गुणवत्ता में गिरावट आती है एवं गुड़ का परता भी कम प्राप्त होता है।

दलदली अवस्थाओं में उगने वाले गन्ने से बने गुड़ में सामान्य परिस्थितियों में उगाए गए गन्ने की तुलना में कुल नत्रजन एवं गैर–प्रोटीन नत्रजन अधिक होती है। इस कारण गन्ना 75 प्रतिशत सापेक्ष आर्द्रता की अवस्था में अधिक नमी अवशोषित करता है जिससे गुणवत्ता ह्रास के कारण गुड़ जल्दी खराब हो जाता है।

नदी एवं नहरों के निचले क्षेत्रों में या दलदली किनारों पर जहाँ जल की निकासी नहीं होती है, *काठा* के अतिरिक्त अन्य कोई प्रजाति नहीं उगती है। इन परिस्थितियों में फसल पूर्णतया नहीं पकने के कारण गुड़ के स्थान पर राब बनाया जाता है।

सारांश

मृदा के गुण गन्ने के रस की गुणवत्ता को प्रभावित कर इससे बनाए गए गुड़ की गुणवत्ता को भी प्रभावित करते है। अधिक पी.एच. वाली मृदा पर उगाए गए गन्ने के रस से बनाए गुड़ का जमाव शीघ्र/अच्छा होता है। मिट्टी में उपलब्ध P_2O_5 ज्यादा होने से उच्च कोटि का गुड़ बनता है। अधिक पोषक तत्व, मुख्यतः नत्रजन यौगिक वाले रस से गुड़ बनाने पर गहरी रंगत का गुड़ प्राप्त होता है। लवण प्रभावित मृदा में गन्ना उगाने से उसमें पोटाश तथा क्लोरीन तत्व बढ़ जाने से नमकीन गुड़ प्राप्त होता है तथा जिसकी भण्डारण गुणवत्ता अपेक्षाकृत कम होती है।

लगे अगस्त फुले बन कासा।
अब छोड़ो बरखा की आसा।।

अगस्त तारा के उदय हो जाने पर और बन में कास के फूलने पर वर्षा होने की आशा छोड़ देनी चाहिए।

ज्ञान–विज्ञान प्रभाग

मृदा परीक्षण के आधार पर गन्ने में संतुलित पोषक तत्व प्रबन्धन

विनय कुमार सिंह[1], अशोक कुमार श्रीवास्तव[1], विनोद कुमार[1], राकेश कुमार सिंह[1] एवं अजीत कुमार सिंह[2]

[1]भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान,लखनऊ, [2]कृषि विज्ञान केन्द्र, रॉची

फसल उत्पादन में उर्वरकों के प्रयोग का महत्व किसान भलीभांति समझने लगा है परन्तु उसे संतुलित उर्वरक प्रयोग की आधारभूत बातों का ज्ञान होना अवश्यक नहीं है। नयी फसल बोने से पहले किसान को अपने खेत की मिट्टी की जाँच अवष्य करवानी चाहिये। अच्छे फसलोत्पादन के लिए मिट्टी का परीक्षण अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है। मिट्टी में जिन पोषकतत्वों की कमी होती है, परीक्षण से यह भलीभाँति पता चल जाता है। उनकी कमी दूर कर भरपूर फसलोत्पादन ली जा सकती है। उर्वरक का प्रयोग करने के पहले यदि कुछ प्रश्नों जैसे कौन सा एंव कितनी मात्रा में उर्वरक का प्रयोग करें, समय और प्रयोग विधि क्या हो; के उत्तर मालूम हों तभी उर्वरकों का पूरा लाभ प्राप्त किया जा सकता है। आमतौर पर उर्वरकों के प्रयोग से सम्बन्धित अंतिम दो प्रश्नों के उत्तर तो अपेक्षाकृत सरल हैं और साधारण किसान भी इन प्रश्नों के उत्तर की जानकारी रखते हैं इसलिये संतुलित उर्वरक प्रयोग के लिए इस बात की सही जानकारी होनी चाहिए कि अमुक खेत में फसल विशेष के लिए कौन सा उर्वरक व कितनी मात्रा में प्रयोग किया जाय। मृदा जॉच के बिना उर्वरकों का प्रयोग ठीक उसी तरह रहता है जैसे बिना डाक्टर की सलाह के दवा का इस्तेमाल। ऐसी परिस्थितियों में ज्यादातर संभव है कि उर्वरकों का प्रयोग लाभ न दे सके। उदाहरण के तौर पर यदि किसी खेत में नत्रजन की कमी है तो उस खेत में पोटेशियम का प्रयोग लाभदायक नहीं होगा। इसके विपरीत यदि मिट्टी में नाइट्रोजन के साथ ही पोटेशियम की भी कमी है किन्तु फास्फोरस पर्याप्त मात्रा में है तो उस परिस्थितियों में केवल यूरिया या अन्य नाइट्रोजनधारी उर्वरक के इस्तेमाल से लाभ नहीं होगा क्योंकि खेत में पोटेशियम की कमी तो बनी ही रह गयी। इसी प्रकार अन्य परिस्थितियों में भी उपयुक्त जानकारी मृदा जॉच के द्वारा ही संभव होती है। मृदा जॉच के अभाव में उर्वरकों का प्रयोग न केवल नुकसानदायक सिद्ध होगा वरन् ऐसे ही उर्वरकों का प्रयोग करते रहने से भूमि के पोषक तत्वों में असंतुलन की समस्या उत्पन्न हो जायेगी जो फसल की सम्यक वृद्धि के लिए हानिकारक हो सकती है। मिट्टी की उर्वरता की सही जानकारी के बाद ही संतुलित उर्वरकों का सही ढंग से प्रयोग किया जाय जिससे उर्वरकों पर खर्च की गयी प्रति ईकाई लागत से अधिकतम लाभ प्राप्त किया जा सके।

मिट्टी परीक्षण के लिए पहला एवं अति महत्वपूर्ण कदम है भूमि का सही नमूना प्राप्त करना क्योंकि बहुत बड़े जमीन के टुकड़े से अर्थात् लगभग 1 हेक्टेयर समतल जमीन से एक नमूना लेना होता है । जिस पर इस भूमि के कुल टुकड़े का प्रतिनिधित्व अनिवार्य है। प्रश्न उठता है भूमि का सही नमूना कैसे लिया जाए ।

नमूना लेने की विधि

1. जिस खेत/भूमि का नमूना लेना हो उस भूमि पर भिन्न–भिन्न स्थानों पर 8 से 10 निषान लगा लें ।
2. नमूना लेने के लिए चुनी गई जगह की ऊपरी सतह से खरपतवार व घास–फूस इत्यादि हटा कर साफ कर दें ।
3. लगभग 15 सेमी. (6 इंच) गहरा, V आकार का गड्ढा खोदें ।
4. गड्ढे को साफ करके खुरपे से एक तरफ से ऊपर से नीचे तक एक अंगुल मोटी तह का 15 सेमी. तक मृदा का टुकड़ा काट लें।
5. इस मिट्टी को कागज या ट्रे में रख लें।
6. इसी प्रकार बाकी चुने हुए स्थानों से भी नमूना इकट्ठा कर लें।
7. लिये गए नमूनों को अच्छी तरह से मिलाकर फैला लें।
8. उसे चार भागों में बराबर बाँट लें।
9. इन चारों भागों में से आमने–सामने वाले दो भागों की मिट्टी को रख लें बाकी मिट्टी को फेंक दें।
10. बचे हुए भाग की मिट्टी को पूर्ववत फैला लें और चार भागों में बराबर बाँट लें।
11. इस तरह दो भाग की मिट्टी रखकर बाकी को फेंक दें।
12. यह प्रक्रिया तब तक अपनाएँ जब तक कि मिट्टी का नमूना लगभग 500 ग्राम न बच जाए।
13. इस नमूने को साफ सुथरी थैली में डाल लें और एक पर्ची पर अपना नाम, पता, खेत का नम्बर व फसल चक्र तथा जो फसल बोनी हो आदि का ब्यौरा लिख दें।
14. इस तरह तैयार नमूनों को नजदीकी मृदा परीक्षण प्रयोगशाला में पहुँचा दें।

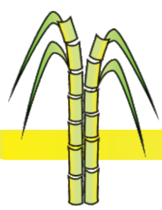

मिट्टी की जाँच कब

1. जाँच के लिए मिट्टी का नमूना बुवाई से लगभग दो महीना पहले भेज दें जिससे जाँच की रिपोर्ट बुवाई से पहले आप तक पहुँच जायें।
2. मिट्टी का नमूना जहाँ तक हो सके खाली खेत से ही लें।
3. यदि किसी खास कारण से आप खाली खेत से नमूना लेने की स्थिति में न हों तो पिछली फसल की कटाई से पूर्व फसल की कतारों के बीच से नमूना लें।

मिट्टी का नमूना कैसे और कहाँ भेजें

1. इस मिट्टी को साफ कपड़े की थैली या पॉलीथीन की थैली में रखकर अच्छी तरह बाँध दें।
2. अब थैली में नमूना पत्र बाँध दें, जिसमें पूर्ण सूचना दी हो (नमूना लेने की विधि के बिन्दु संख्या 13 के अनुसार)।
3. यदि आप किसी वजह से थैली एवं नमूना पत्र न प्राप्त कर सकें, तो साफ पतले कपड़े की थैली और नमूना पत्र खुद बना सकते हैं।
4. अब इस तैयार नमूने को अपने निकटतम मृदा परीक्षण प्रयोगशाला या कृषि विष्वविद्यालय की प्रयोगशाला में जाँच कराने हेतु भेज दें।

नमूना लेते समय सावधानियाँ

1. उस स्थान से नमूना न लें जहाँ खाद का ढेर, मेड़ या सिंचाई की नाली आदि रही हो।
2. यदि खेत के किनारे पेड़ हो तो उससे हटकर नमूना लें।
3. नमूनों को आपस में अच्छी प्रकार मिलाना और सावधानी से बाँधना चाहिए।
4. गीली मिट्टी से तथा असामान्य क्षेत्रों से नमूना न लें।
5. जहॉ कतार में फसल उगायी गयी हो वहॉ कतारों के बीच मिटटी के नमूने लेने चाहिए।
6. थैली में किसान का नाम, गांव का नाम, विकास खण्ड तथा जिले का नाम, नमूने की क्रम संख्या, गहराई एवं नमूना लेने का तारीख ठीक तरह से लिख दी जाय।
7. इसके साथ ही सूचना पत्र में वांछित सूचनाएं भर दी जाय और हर नमूने के साथ यह सूचना पत्र प्रयोगशाला में भेजा जाय।
8. यदि गीली मिट्टी का नमूना लेना ही पड़े तो नमूने को हवा मे सुखा लिया जाय। यह ध्यान अवश्य रहे कि कभी भी गर्म करके न सुखाये जाय।
9. मृदा के नमूनों को सुखाने के लिए उर्वरकों या अन्य रासायनिक पदार्थ वाले खाली बोरे का प्रयोग न किया जाय।
10. नमूनो को खाद के बोरों, ट्रैक्टर की बैटरी, राख एवं गोबर आदि से यथासंभव दूर ही रखा जाय।

कपड़े की थैली कम से से इतनी बड़ी अवश्य हो कि उसमें 1 किलोग्राम मिट्टी रखी जा सके।

नमूना पत्र

1.	किसान का नाम	....	2.	ग्राम	....
3.	पोस्ट ऑफिस	....	4.	जिला	....
5.	प्रदेष	....	6.	नमूना लेने की तिथि	....
7.	खेत का नम्बर या पहचान	....	8.	सिंचाई के उपलब्ध साधन	....
9.	पिछली फसल	....	10.	कौन सी फसल बोना चाहते हैं।	....

मृदा परीक्षण के आधार पर उ० प्र० कृषि विभाग द्वारा निर्धारित गन्ने के लिये पोषकतत्व, खाद एंव उर्वरकों मात्रा (कि०ग्रा/हे०)

	जीवांश कार्बन % (O.C.%)					फास्फेट (P_2O_5) किग्रा/हे					पोटाश (K_2O किग्रा/हे			
	0-.20	.21-.50	.51-.80	>.80		0-10	11-20	21-40	>40		0-50	51-100	101-250	>250
	VL	L	M	H		VL	L	M	H		VL	L	M	H
	नत्रजन (किग्रा/हे)[1]/ गोबर की खाद (कु/हे) [2]/यूरिया (किग्रा/हे)[3]					फास्फोरस[4]/एसएसपी[5]/ डीए पी[6] (किग्रा/हे)					पोटाश[7]/एम ओ पी[8] (किग्रा/हे)			
1	200	180	135	100	4.	65	60	55	35	7.	40	35	30	20
2	160	150	100	50	5.	406	375	344	219	8.	67	58	50	33
	यूरिया की मात्रा जब फास्फोरस, एसएसपी से दिया जायेगा				6.	141	130	120	76					
3	435	391	293	217										
मृदा फास्फोरस की उपलब्धता	यूरिया (किग्रा/हे) की मात्रा जब फास्फोरस, डीएपी से दिया जायेगा													
VL	380	336	238	162										
L	384	340	243	167										
M	388	344	247	170										
H	405	362	264	188										

VL- Very low (अत्यन्त कम), L- Low (कम), M- Medium (मध्यम), H- High (अधिक)

इस प्रकार किसान भाई मृदा परीक्षण के आधार पर संतुलित पोषक तत्व प्रबन्धन अपनाकर उचित मात्रा में उर्वरकों का प्रयोग कर गन्ने की भरपूर उपज प्राप्त कर सकते हैं। इस विधा को अपनाने पर लागत कम होने के साथ–साथ प्रदूषण को एक सीमा तक कम किया जा सकता है।

कार्तिक सुद एकादशी बादर बिजुरी होय।
तो असाढ़ में भड्डरी, बरखा चोखी होय।।

यदि कार्तिक माह यानी अक्टूबर–नवम्बर में शुक्लपक्ष की एकादशी को आकाश में बादल हों और बिजली चमक रही हो तो समझ लो आसाढ़ में बरसात अच्छी होगी।

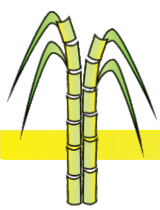

ज्ञान–विज्ञान प्रभाग

अपरदन रोकने हेतु मृदा संरक्षण परमावश्यक

ब्रह्म प्रकाश एवं अश्विनी कुमार शर्मा
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

जलवायु या किसी अन्य प्राकृतिक प्रक्रिया द्वारा मिट्टी के कणों व उनमें उपस्थित कार्बनिक पदार्थ तथा पौधों के पोशक तत्वों के अलग होकर स्थान्तरित हो जाने को ही मृदा अपरदन कहते हैं। इससे कृषि योग्य उपजाऊ मिट्टी की उपज वाली परत धीरे–धीरे कटकर, बहकर या उड़कर नष्ट हो जाती है तथा उपजाऊ भूमि बेकार तथा बंजर हो जाती है। सामान्यतः मृदा अपरदन प्राकृतिक रूप से ही होता है। लेकिन इसके लिए मानव भी कम उत्तरदायी नहीं है। प्राकृतिक मृदा अपरदन अधिकांशतः जल और वायु द्वारा होता है।

जल द्वारा अपरदन

सर्वाधिक परिमाण में मृदा अपरदन जल द्वारा ही होता है। जो इस प्रकार है : जब वर्षा की बूँदें वनस्पतिविहीन नग्न भूमि पर तीव्र गति से पड़कर मृदा के ऊपरी पृष्ठ के कण समूहों को छिन्न–भिन्न कर देती है, तो ये कण अपने स्थान से छिटककर व उछलकर इधर–उधर चले जाते हैं। उ.प्र., बिहार, पं. बंगाल, केरल, तमिलनाडु, असम, मेघालय, नागालैंड, त्रिपुरा, अरूणाचल प्रदेश आदि राज्यों में हजारों हेक्टेयर भूमि की ऊपरी उपजाऊ परत प्रत्येक वर्ष इस प्रकार से नष्ट हो जाती है।

भूमि की ऊपरी सतह से उपजाऊ मिट्टी की परत बह जाने की प्रक्रिया को परतदार मृदा अपरदन कहा जाता है। इससे भूमि की निचली परत ऊपर आ जाती है जो कम उपजाऊ होती हैं। पंजाब, हरियाणा, उ.प्र., बिहार, मध्य प्रदेश, तमिलनाडु, महाराष्ट्र आदि राज्यों में मृदा अपरदन के इस स्वरूप की जटिल समस्या है।

परतदार अपरदन के पश्चात भूमि पर पतली–पतली नालियां बन जाती है। ढालदार व परती भूमि पर अधिक होने वाले इस प्रकार के अपरदन की समस्या महाराष्ट्र, दक्षिणी बिहार, मध्य प्रदेश व उड़ीसा में काफी प्रबल है।

नालियां बनने के बाद भी वर्षा के जल के प्रवाहित होते रहने से नालियां अधिक गहरी व चौड़ी नालों के रूप ले लेती है। इस प्रकार के अपरदन से भूमि कृषि योग्य नहीं रह जाती। उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश व राजस्थान में यमुना व चम्बल नदियों के किनारे बने बीहड़ खड्ड इस प्रकार के अपरदन का ही परिणाम हैं।

हिमाचल प्रदेश, जम्मू व कश्मीर, उत्तर प्रदेश तथा उत्तर पूर्वी राज्यों के पर्वतीय क्षेत्रों मे भूस्खलन के कारण मिटटी के ढेले या बर्फ की चट्टानों के खिसक कर गिर जाने से भूक्षरण होता है।

अति वर्षा से नदियों में जल की वृद्धि हो जाने के कारण बाढ़ आ जाती है। इससे बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों में उपजाऊ भूमि पर बालू या कंकड़ आदि की परत जमा हो जाती हैं जिससे भूमि बंजर हो जाती है। उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, असम व पंजाब में प्रतिवर्ष हजारों एकड़ भूमि बाढ़ द्वारा बेकार हो जाती हैं।

समुद्र तट के किनारे की भूमि तेज वायु और समुद्री जल की संयुक्त प्रक्रिया द्वारा तटवर्ती क्षेत्रों में काफी मृदा का क्षरण होता है। आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु व केरल राज्यों में इस प्रकार के मृदा अपरदन से काफी क्षति होती है।

- **वायु द्वारा मृदा अपरदन**

शुष्क जलवायु वाले स्थानों तथा वनस्पतिविहीन भूमि पर मृदा अपरदन तीव्र गति से चलने वाली वायु से होता है। भारत में राजस्थान के उत्तर–पश्चिमी क्षेत्रों में वर्षा कम होने से भूमि सूख जाती है। तेज हवा से मिटटी उड़कर एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँच जाती है। इस प्रकार बालू के अवसादन से बड़े–बड़े टीले बन जाते हैं। ये टीले कुछ ही घंटों में कभी–कभी सैंकड़ों मील की दूरी तय कर लेते हैं। पूर्व की ओर हवा चलने से आगरा तथा भरतपुर की तरफ बालू के टीले बन जाते हैं। इससे वहां की उपजाऊ भूमि भी प्रतिवर्ष रेगिस्तान में परिवर्तित होती जा रही है।

- **वनों का विनाश**

मनुष्य सदा से ही अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वनों का विनाश करता आ रहा है। प्रतिवर्ष विश्व की लगभग 6 करोड़ हैक्टर भूमि क्षविहीन कर दी जाती है। केवल भारत में ही प्रतिवर्ष लगभग 16 लाख हैक्टर भूमि वनस्पतिविहीन हो रही है। अनुमान है कि इस प्रकार शताब्दी के अन्त तक विश्व की कुल भूमि का 5 प्रतिशत ही जंगल रह जाएगा, जो आज कुल भूमि का 26 प्रतिशत है। भूमि पर वानस्पतिक आवरण कम हो जाने से पानी के बहाव में किसी प्रकार की रूकावट न रहने के कारण धरातल वायु तथा जल के सीधे सम्पक्र में आ जाता है, जसके परिणामस्वरूप मृदा अपरदन होता है।

- **दोषपूर्ण कृषि क्रियाएं**

अधिकांशतः कृषक कुछ ऐसी अवैज्ञानिक कृषि क्रियाएं करते हैं जिससे मृदा का क्षरण होता है। ढालू भूमि पर गहरी जुताई करने से मृदा अपरदन को बढ़ावा

मिलता है। सिंचाई के गलत ढंग तथा गेहूँ, ज्वार, बाजरा तथा मक्के की लगातार खेती से मृदा अपरदन होता है।

- **झूम खेती**

भारत के पूर्वोत्तर राज्यों के पहाड़ी क्षेत्रों के आदिवासी कबीलों के आदमी प्रचलित झूम पद्धति में पहले जंगल को साफ करते हैं। कभी–कभी केवल वृक्षों की टहनियाँ काटते हैं। उन सबको धूप में सूखने देते हैं। फिर शेष वनस्पति कचरे को जलाते हैं। बाद में केवल एक प्रकार की फसल बोते हैं। दूसरे वर्ष धान पैदा करते हैं। इस भूमि में अधिक से अधिक तीन वर्षो तक फसल लेते हैं। सामान्य तौर पर दो वर्ष बाद ही इसे छोड़कर दूसरे स्थान पर चले जाते हैं। स्थान छोड़ने से पहले वहां वृक्षारोपण करते हैं। ताकि वनस्पतिविहीन स्थान पर पुनः जंगल बन सके। पहले झूम खेती का चक्र 20–30 वर्षों का होता था जो वनों के लगातार कटते रहने से आज 5–6 वर्षों का ही रह गया है। निःसंदेह इतने कम समय में छोड़े हुए जंगल पुनः खेती करने योग्य नहीं हो पाते। झूम पद्धति के कारण पहाड़ों के ऊपरी ढलानों को आलू पैदा करने योग्य बनाने के लिए छोटी–छोटी मेंड़बन्दी करने से प्रतिवर्ष प्रति हैक्टर 40–50 टन मिटटी नष्ट हो जाती है। इस पैदा हुए एक टन आलू के पीछे दो टन मिटटी बेकार हो जाती है तथा ये ढलान बिल्कुल नंगे हो जाते है व सम्पूर्ण मिटटी बह जाती है।

- **चरागाहों की अत्यधिक चराई**

वनस्पति से ढकी भूमि मृदा अपरदन को रोकती है। चारागाहों में पशुओं के चरने से भूमि के ऊपर से वनस्पति का आवरण तो हटता ही है साथ ही, पशुओं के खुरों के भार व घर्षण से मृदा गठन भी ढीला हो जाता है तथा भूमि की जल अवशोषण क्षमता घटने से वर्षा के तीव्र जल के साथ मिटटी बहने लगती है।

मृदा अपरदन से निम्नलिखित हानियां होती हैं :

- **उपजाऊ मिटटी की क्षति**

मृदा अपरदन द्वारा सबसे अधिक क्षति भूमि की ऊपरी उपजाऊ परत को होती है। जहां एक से.मी. मृदा तल के निर्माण में सैकड़ों वर्ष लगते हैं इसके विपरीत अल्प समय में ऊपरी मिटटी का 15 सें.मी. का स्तर क्षय हो जाता है।

- **नमी की कमी**

मृदा अपरदन द्वारा मिटटी के बह जाने से तथा जल प्रवाह की तीव्र गति के कारण जल का भूमि में अवशोषण न होने से भूमिगत जल स्तर नीचा हो जाता है। एक अनुमान के अनुसार मृदा अपरदन से प्रभावित भूमि पर वर्षा का 80 प्रतिशत जल नष्ट हो जाता है।

- **उपज पर प्रभाव**

मृदा अपरदन द्वारा ऊपरी उपजाऊ भूमि के बह जाने से भूमि की उर्वरा शक्ति प्रभावित होती है। इससे फसल की उपज भी कम मिलती है। शोलापुर में किए गए एक परीक्षण में मृदा अपरदन से एक हेक्टेयर भूमि में 127 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 130 कि.ग्रा. फास्फोरस तथा 1272 कि.ग्रा. पोटाश की क्षति पाई गई।

- **प्राकृतिक जल निकासों में जमाव**

जल के द्वारा बहाई गई मिटटी नाले, जलाशयों, नदियों, झीलों, आदि में जमा होकर उनको उथला कर देती है। इससे नदी नालों में बाढ़ आती है जिससे जन–धन की अपार क्षति होती है। नहरें उथली होने से सिंचाई में भी असुविधा होती है।

- **कृषि योग्य भूमि में कमी**

कभी–कभी बालू व अन्य प्रकार की अनुपजाऊ मिटटी जल के साथ बहकर कृषि योग्य भूमि पर एकत्रित होकर उसे कृषि योग्य नहीं रहने देती।

- **कृषि कार्य सम्पादन में बाधक**

मृदा अपरदन से खेत के बीच–बीच में चौड़ी व गहरी नालियां बन जाती हैं, जिससे खेत समतल नहीं रह पाता तथा ऊबड़– खाबड़ हो जाता है। इससे किसानों को कृषि कार्य करने में असुविधा होती है।

- **अर्थव्यवस्था पर प्रभाव**

मृदा अपरदन के कारण भूमि की उर्वरता कम हो जाती है तथा उत्पादन भी कम मिलता है। इससे कृषकों की आय भी कम हो जाती है और अंततः सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था पर कुप्रभाव पड़ता है।

- **मृदा अपरदन कैसे रोका जाए**

मृदा अपरदन से मृदा को बचाना मृदा संरक्षण कहलाता है। मिटटी को अपने स्थान पर ही बनाए रखने तथा स्थायी उत्पादन के लिए उचित उपयोग को मृदा संरक्षण कहा जाता है। मृदा संरक्षण के उपाय निम्नवत हैं :

खेतों को लगातार खाली न छोड़कर लगातार फसल लेते रहने से भूमि में पोषक खनिज लवणों की कमी होती जाती है। इस प्रभाव को समाप्त करने के लिए रसायनिक खाद व उर्वरकों को मृदा में मिलाना आवश्यक है। जीवांश की कमी को पूरा करने के लिए *फार्म यार्ड मेन्योर,* गोबर, मल–मूत्र, मूंगफली का छिलका, पत्तियों तथा राख से बनी खाद मिलानी चाहिए।

खेतों में एक या दो फसल लेने के बाद नाइट्रोजन की कमी हो जाती है। इसीलिए सास्यावर्तन की विधि अपनाई जाती हैं। इस विधि में धान्य फसलों के बीच में फलीदार फसलें जैसे चना, मटर, मसूर, अरहर, मूंग, उड़द, सेम, क्लोव, ढैंचा, बरसीम, आदि उगाई जाती हैं। इन पौधों की जड़ों की गाँठों में सहजीविका जीवाणु उपस्थित रहते हैं जो वातावरण से नाइट्रोजन का यौगिकीकरण करते हैं। ये वायु की नाइट्रोजन को अमोनिया में परिवर्तित कर देते हैं। इस प्रकार इन पौधों को मिटटी में दबा देने से संचित

नाइट्रोजन मृदा में मिल जाती है।

गाय, भैंस, भेड़, बकरियों आदि पशुओं के चरने से भी मृदा को क्षति पहुंचती है। इससे भूमि की सतह घास–फूस व पौधों से विहीन हो जाती है। वनस्पतिविहीन मृदा भुरभुरी होकर वायु या जल से अपरदित हो सकती है।

खेतों पर अधिक समय तक कोई फसल न लेने से मृदा सूखकर व भुरभुरी होकर क्षय हो सकती हैं अतः खेतों को खाली छोड़ने की अपेक्षा कोई न कोई फसल बोते रहने से मृदा अपरदन नहीं होता। खेत में हल के चलते रहने से निक्षालित खनिज लवण ऊपर आ जाते हैं व मृदा में वायु वातन भी हो जाता है।

पर्वतों की ढालू भूमि तथा मैदानों में वर्षा के बहते जल से मृदा अपरदन होता है। इस तरह मिट्टी का कटाव रोकने के लिए गहरी जड़ों वाली घास, झाड़ियों, वृक्षों आदि का रोपण आवश्यक है। वृक्ष इमारती लकड़ी, ईंधन, गोंद, फल व औषधि के स्त्रोत तो हैं ही, साथ ही वे मृदा अपरदन को रोकने में भी सहायक होते हैं। ये मिट्टी को बांधकर जल प्रवाह की गति को रोकते हैं। यही कारण है कि वनविहीन क्षेत्र में बाढ़ भी अधिक आती है। वनों की लकड़ी काटने तथा हरे वृक्षों के काटने पर प्रतिबन्ध, वनों की आग से रक्षा तथा वृक्षारोपण से मृदा अपरदन को रोकने में सहायता मिलती है।

मृदा अपरदन की अधिक संभावना वाले स्थानों पर कृषि की विशेष विधियां अपनाई जाती हैं। पहाड़ों व ढाल वाले क्षेत्रों में जहां वर्षा का जल मृदा एवं उसके पोषक तत्वों को बहा ले जाता है, वहाँ पर ये विधियां बहुत उपयोगी सिद्ध हुई हैं।

कंटूर विधि

इस विधि में पहाड़ की ढलानों पर जल बहाव की अपेक्षा समकोण पर जालियां, खाइयां व खेतों की पट्टियां बनाते हैं। इस तरह जल प्रवाह के कम होने से मृदा अपरदन कम होता है।

छज्जेदार खेती

इस विधि में पहाड़ की ढाल पर छोटे–छोटे छज्जेनुमा खेत एक के बाद एक बनाते हैं। प्रत्येक खेत में एक चहारदीवार बनाई जाती है। इस प्रकार जल प्रवाह का वेग कम हो जाता है।

पट्टीदार खेती

इस विधि में खेतों की पट्टियां समानान्तर ढंग से ढलान के समकोण पर बनती हैं। इनमें दो या तीन तरह की फसलें अलग–अलग पंक्तियों में एकान्तर ढंग से लगाते हैं। एक पट्टी में एक वर्षीय तथा शाकीय प्रकृति वाली फसल जैसे आलू, कपास, मक्का आदि बोते हैं तथा दूसरी पट्टी में बहुवर्षीय या झाड़ी जैसी संरक्षक फसल भी बोते हैं।

बालू बन्धक

रेगिस्तान में वर्षा कम होने के कारण मिट्टी सूखकर भुरभूरी हो जाती है। ये मिट्टी तीव्र गति से चलने वाली हवा से उड़ जाती है। ऐसी जगहों पर ऐसे मरूस्थलीय पौधे, जिनकी जड़ें अच्छी तरह विकसित हों, ही फलते–फूलते हैं। इस प्रकार के पौधों को 'बालू–बन्धक' भी कहा जाता है। रेगिस्तानी क्षेत्र के लिए उपयुक्त कुछ ऐसे पौधे हैं : *सैकरम मूँजा, साइनाडोन डेक्टाइलौन, सेलोट्रापिस प्रूएरा, केपेरिस एफाइला, जिजिफस मुमुलारटा, लौनिया नूडिकौलिस* इत्यादि। समुद्र के किनारों की मृदा को बांधे रखने के लिए *पोरतुलाका ओलारेस, इंडिगोफेरा कौर्डीफोलिया, सेसबेनिया जन्सिया, ऑक्जलिक कौर्नीकुलेटा, एगेरेटम कौनीजोइडस,* इत्यादि उपयुक्त हैं।

बांध बनाकर

बांध बनाकर बाढ़ तथा बहते जल के प्रभाव से मृदा अपरदन रोका जा सकता है। साथ ही बांधों में संचित जल को बिजली बनाने के साथ–साथ सिंचाई में भी प्रयोग किया जा सकता है।

वात रोध

तेज गति से चलती हवा मृदा का क्षरण करती है। रेगिस्तान में तो मृदा का अपरदन तेज हवा द्वारा ही होता है। तेज हवाओं के प्रभाव को कम करने के लिए हवा चलने की दिशा के समकोण पर ऊँचे वृक्षों की कई पंक्तियों को लगाने से मृदा अपरदन रोकने में सहायता मिलती है।

भूमि सुधार

बहुत से स्थानों की मृदा अधिक अम्लीय, क्षारीय तथा लवणीय होने के कारण कृषि के अयोग्य होती है। अतः इसको सुधारकर कृषि योग्य बनाना अत्यन्त आवश्यक है। समस्यात्मक भूमि को निम्न प्रकार से सुधारा जा सकता हैं :

(क) अधिक सिंचाई द्वारा

प्रायः कम सिंचाई से ही मिट्टी में लवण एकत्रित हो जाते हैं। जल के वाष्प बनने की क्रिया में भी लवण ऊपर आ जाते हैं। लवणों की परत हटाने से भी भूमि पूर्ण रूप से सही नहीं होती। अतः खेत में अधिक समय तक पानी भरा रहता है, जिससे लवण भूमि की निचली सतहों में निक्षालित हो जाते हैं।

(ख) रासायनिक पदार्थों द्वारा

अम्लीय भूमि को चूना मिलाकर तथा क्षारीय भूमि को जिप्सम मिलाकर सुधारा जा सकता है।

(ग) लवण सहनशील पौधे उगाकर

कुछ फसलें लवणों के प्रति सहनशील होती हैं। चुकन्दर, गन्ना व कपास की फसलों को लवणीय भूमि पर भी उगाया जा सकता है। धान को भी लवणीय भूमि पर उगाया जा सकता है, क्योंकि जब जुताई के बाद पानी भरे खेत में धान की पौध लगाते हैं तो लवण निक्षालित हो जाते हैं। इनके अतिरिक्त, सालसोला, टेमेरिक्स, सलवाडोरा, आदि पौधे भी ऐसी भूमि में सफलतापूर्वक लगाए जा सकते हैं।

ज्ञान–विज्ञान प्रभाग

गन्ने की अधिक उपज पाने के लिए मृदा एवं सिंचाई जल प्रबंधन

राजेन्द्र गुप्ता[1] एवं रश्मि गुप्ता[2]
[1]भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ, [2]बी.एस.एन.वी. पी.जी. कॉलेज, लखनऊ

गन्ने का भारत की कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था में एक महत्वपूर्ण स्थान है। देश के लगभग 50 लाख किसान और खेतिहर मजदूर गन्ने की खेती में संलग्न हैं। चीनी प्रसंस्करण देश का दूसरा सबसे बड़ा कृषि उद्योग है। वर्तमान में भारत में प्रति व्यक्ति चीनी की खपत 23 किग्रा. प्रति वर्ष के आस–पास है। आगामी कुछ वर्षों मे प्रति व्यक्ति चीनी की खपत 35 किग्रा. प्रति वर्ष तक पहुँचने का अनुमान है। आगामी वर्ष 2030 में भारत की जनसंख्या 150 करोड़ होने की संभावना है जिसके लिए 33 लाख टन चीनी की आवश्यकता होगी। वि वव्यापारीकरण एवं उभरते विश्व परिदृ य में गन्ने का उपयोग ऊर्जा क्षेत्र में ईंधन (इथेनॉल) के उत्पादन में किया जा सकता है, जिसके लिए 330 लाख टन अतिरिक्त गन्ने की आवश्यकता होगी। इस प्रकार सन् 2030 में हमारे देश को 5200 लाख टन गन्ना उत्पादन की आवश्यकता होगी। चीनी उत्पादन में आत्मनिर्भरता बनाए रखने के लिए प्रति इकाई भूमि में गन्ना की उत्पादकता में गुणात्मक वृद्धि लानी होगी और यह तभी संभव है जब कृषि शोध संस्थानों में सृजित नवीन तकनीकी ज्ञान को गन्ना उत्पादक कृषक प्रभावी तरीके से अपनाएं।

गन्ने की खेती के लिए उपयुक्त जलवायु

गन्ने की फसल के लिए उष्ण कटिबन्धीय जलवायु की आवश्यकता पड़ती है। गन्ना बढ़वार के समय लंबी अवधि तक गर्म व नम मौसम तथा अधिक वर्षा का होना सर्वोत्तम पाया गया है। गन्ना बोते समय साधारण तापमान, तथा फसल तैयार होने के समय आमतौर पर शुष्क व ठण्डा मौसम, चमकीली धूप और पाला रहित रातें उपयुक्त रहती हैं। गन्ने के अंकुरण के लिए 25–32^0 से. तापमान उचित रहता है। गन्ने की बुआई और फसल बढ़वार के लिए 20–35^0 से. तापक्रम उपयुक्त रहता है। इससे कम या अधिक तापमान पर वृद्धि घटने लगती है। गन्ने की खेती उन सभी क्षेत्रों में सफलतापूर्वक की जा सकती है जहाँ वार्षिक वर्षा 750–1200 मि.मी. तक होती है। समय पर वर्षा न होने पर सिंचाई आवश्यक है। पानी की कमी होने पर गन्ने मे रेशे अधिक उत्पन्न होते हैं और अधिक वर्षा में शर्करा का प्रतिशत कम हो जाता है। गन्ने की विभिन्न अवस्थाओं के लिए आर्द्रता 56–87 प्रतिशत तक अनुकूल होती है। सबसे कम आर्द्रता कल्ले बनते समय एवं सबसे अधिक, गन्ने की वृद्धि के समय चाहिए। सूर्य के प्रकाश की अवधि एवं तापमान का गन्ने में सुक्रोज निर्माण पर अधिक प्रभाव पड़ता है। लम्बे दिन तथा तेज चमकदार धूप से गन्ने में कल्ले अधिक बनते हैं। तेज हवाएँ गन्ने के लिए हानिकारक हैं क्योंकि इससे गन्ने गिर जाते हैं जिससे गन्ने की उपज और गुणवत्ता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

भूमि का चयन एवं खेत की तैयारी

गन्ने की खेती बलुई दोमट से दोमट और भारी मिट्टी मे सफलता पूर्वक की जा सकती है परंतु गहरी तथा उत्तम जल निकास वाली दोमट मृदा जिनकी मृदा अभिक्रिया (पी. एच.) 6.0 से 8.5 होती है, सर्वोत्तम रहती है। उचित जल निकास वाली जैव पदार्थ व पोषक तत्वों से परिपूर्ण भारी मिट्टियों में भी गन्ने की खेती सफलतार्पूक की जा सकती है। अम्लीय मृदाएं इसकी खेती के लिए अनुपयुक्त होती हैं। गन्ने की पेड़ी लेने के कारण इसकी फसल लम्बे समय (2–3 वर्ष) तक खेत में रहती है। इसलिए खेत की गहरी जुताई आवश्यक है। खेत तैयार करने के लिए सबसे पहले पिछली फसल के अव ोष भूमि से हटाते हैं। इसके बाद जुताई की जाती है और जैविक खाद मिट्टी में मिलाते हैं। इसके बाद 2–3 बार कल्टीवेटर से जुताई करने के पश्चात् पाटा चलाकर खेत की मिट्टी को भुरभुरा तथा खेत समतल कर लेते हैं। हल्की मिट्टियों की अपेक्षा भारी मिट्टी में अधिक जुताईयाँ करनी पड़ती है।

गन्ने में पोषक तत्व, खाद एवं उर्वरकों की आवश्यकता

गन्ने की 100 टन प्रति हे. उपज देने वाली फसल भूमि से लगभग 208 किलो नत्रजन, 53 किलो फॉस्फोरस तथा 280 किलो पोटाष ग्रहण करती है। अतः वांछित उत्पादन के लिए गन्ने में खाद एवं उर्वरकों को सही एवं संतुलित मात्रा में देना आवश्यक रहता है। खेत की अंतिम जुताई के पूर्व 10–12 टन प्रति हेक्टेयर अच्छी सड़ी गोबर की खाद भूमि में मिलाते हैं। यदि मिट्टी परीक्षण नहीं किया गया है तो प्रति हे. 120–150 किग्रा. नत्रजन, 60 किग्रा. फॉस्फोरस व 60 किग्रा. पोटाष की अनुषंसा की जाती है। यदि भूमि मे जस्ते की कमी हो तो 20 से 25 किग्रा. जिंक सल्फेट प्रति

हे. गन्ना लगाते समय देना चाहिए। बसन्तकालीन फसल में नत्रजन की आधी मात्रा तथा फॉस्फोरस और पोटाश की पूरी मात्रा गन्ना लगाने के समय कूँड़ में डालते हैं। नत्रजन की शेष मात्रा दो बार में आधी–आधी करके बुवाई के 60 व 90 दिनों बाद दी जानी चाहिए। शरदकालीन गन्ने में भी नत्रजन की आधी मात्रा तथा फॉस्फोरस और पोटाश की पूरी मात्रा गन्ना लगाने के समय कूँड में डालते हैं। नत्रजन की शेष मात्रा बुआई के 110 व 120 दिन बाद दी जानी चाहिए। पोषक तत्वों की कुल आवश्यकता का एक तिहाई हिस्सा गोबर की खाद या कम्पोस्ट द्वारा तथा शेष दो तिहाई भाग रसायनिक उर्वरक के रूप मे देने से गन्ने के उत्पादन व गुणवत्ता में वृद्धि होती है तथा भूमि की उर्वरा शक्ति में सुधार होता है। इस तरह उर्वरकों का प्रयोग करने पर अधिकतम लाभ व उत्पादन मिलता है।

गन्ने की फसल में जल प्रबंध

देष में 93.2 प्रतिशत सिंचित क्षेत्र में गन्ने की फसल ली जाती है। गन्ने की फसल में समय पर ईष्टतम मात्रा में पानी देना उपयुक्त रहता है। औसतन 100 टन पिराई योग्य गन्ना पैदा करने के लिए वर्षा जल को मिलाकर लगभग 1500 मि.मी. जल की आवश्यकता होती है। जबकि परंपरागत विधि के अन्तर्गत बाढ़ विधि से 2000 मि.मी. जल सिचाई के माध्यम से देना पड़ता है। बाढ विधि से सिंचाई करने पर पानी बर्बाद होने के साथ–साथ फसल वृद्धि पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। प्रयोगों द्वारा यह ज्ञात हुआ है कि भूमि की जलधारिता के अनुसार औसतन 40–50 प्रतिशत मृदा की जल धारण क्षमता (फील्ड कैपेसिटी) के बराबर मृदा जल का ह्रास होने पर सिंचाई करने पर गन्ने की उपज अच्छी प्राप्त होती है। इस क्षमता से अधिक पानी देने पर उर्वरक तत्वों के बह जाने का भय रहता है। गन्ने की विभिन्न अवस्थाओं में जल माँग को निम्नानुसार विभाजित किया गया है (तालिका 1)–

गन्ने में सिंचाई की संख्या भूमि के प्रकार, जलवायु, वर्षा की मात्रा और फसल की आयु पर निर्भर करती है। हल्की मृदा में अधिक तथा भारी मृदाओं में कम सिंचाई देनी पड़ती है। सिंचाई की उचित व्यवस्था होने पर वर्षा के पहले बसन्तकालीन गन्ने में चार–पाँच, शरदकालीन गन्ने में सात–आठ पिछेती बुआई की दशा में तीन–चार तथा पेड़ी में चार–पाँच सिंचाइयाँ करने की आवश्यकता होती है। वर्षा ऋतु के बाद आवश्यकतानुसार एक या दो सिंचाइयाँ करना उपज की दृष्टि से लाभप्रद पाया गया है। गर्मियों में गन्ने की सिंचाई 15 दिन और जाड़े में 20–25 दिन के अंतराल पर करनी चाहिए।

वर्षा ऋतु में मृदा मे उचित वायु संचार बनाये रखने के लिए जल निकास का प्रबन्ध करना अति आवश्यक है। इसके लिए नाली में बोये गये गन्ने की नालियों को बाहरी जलनिकास नाली से जोड़ देना चाहिए। जल निकास के अभाव मे जड़ों का विकास ठीक से नहीं होता है। सबसे अधिक क्रियाशील द्वितीयक जड़ें मरने लगती हैं। पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं जिससे प्रकाश संश्लेषण की क्रिया मन्द पड़ जाती है। गन्ने की उपज और सुक्रोज की मात्रा घट जाती है। अतः सिंचाई के साथ साथ गन्ने मे जल निकास भी आवश्यक है।

तालिका 1 गन्ने की विभिन्न अवस्थाओं की अवधि और जल माँग

फसल की अवस्थाएँ	अवधि (दिन)	जल माँग (मि.मी.)
अंकुरण	बुआई से 45	150
कल्ले बनने की अवस्था	45 से 120	350
वृद्धि काल	120 से 270	750
पकने की अवस्था	270 से 360	350

गन्ने की फसल को अन्य फसलों की तुलना में अधिक पानी की आवश्यकता होती है। कारण, यह लम्बी अवधि वाली फसल है तथा गर्मी के उन दिनों खेत में रहती है जब वायुमण्डल अधिक गर्म व शुष्क होता है जिसके कारण वाष्पन व वाष्पोत्सर्जन से भारी मात्रा में जल का ह्रास होता है। गन्ने की अच्छी बढ़वार के लिए गर्म व नम वातावरण बना रहना आवश्यक है। उत्तरी भारत में यह वातावरण जुलाई से सितम्बर के माह में ही उपलब्ध रहता है तथा शेष अवधि में, विशेष रूप से अप्रैल से जून के बीच में फसल को बहुत शुष्क व गर्म वातावरण का सामना करना पड़ता है। इस गर्म और शुष्क वातावरण के समय ही गन्ने की संस्थापना एवं कल्ले फूटने की अवस्थाऐं आती हैं। अतः इस गर्म व शुष्क मौंसम में यदि समय रहते भूमि में प्राप्य जल की कमी को सिंचाई से पूरा नही किया जाता है तो जड़ों के विकास एवं पौधों की प्रारम्भिक बढ़वार पर कुप्रभाव पड़ता है जिसके फलस्वरूप उपज घट जाती है। जल की मात्रा पर मृदा गुण, गन्ने की जाति, उर्वरक मात्रा, बुवाई का समय, गर्मी की तीव्रता एवं अवधि, वर्षा की मात्रा एवं वितरण, सिंचाई करने की पद्धति, अपनाई गई जल संरक्षण विधियां आदि बातों का विशिष्ट प्रभाव पड़ता है। गन्ने की कुल जल आवश्यकता के लगभग आधे भाग की पूर्ति सिंचाई द्वारा करनी होती है। सिंचाई योग्य जल की उपलब्धता सीमित मात्रा में होने

तथा गन्ने की फसल को अधिक जल की आवश्यकता होने के कारण गन्ने की खेती में जल प्रबंधन का अत्यधिक महत्व है। अतः यह आवश्यक है कि सिंचाई जल का समुचित प्रयोग किया जाए। इसके लिए तीन बातें जानना आवश्यक हैः

(क) सिंचाई कब की जाए

(ख) सिंचाई कितनी की जाए

(ग) सिंचाई किस प्रकार की जाए

सिंचाई कब की जाए ?

मृदा से प्राप्य जल का जब इतना ह्रास हो जाए कि प्राप्य जल की कमी के कारण पौधे की बढ़वार और उत्पादन घटने की संभावना होने लगे तो सिंचाई करना आवश्यक हो जाता है। भूमि में जल की मात्रा, पौधे का प्रकार तथा अवस्था और वायुमंडल में वाष्पोत्सर्जन को प्रभावित करने की क्षमता इन सभी बातों के सम्मिलित प्रभाव से पौधों की जल की दशा और उससे सम्बन्धित बढ़वार में परिवर्तन होते हैं। व्यवहारिक दृष्टि से सिंचाई करने की अवस्था का ज्ञान निम्नलिखित विधियों को अपनाकर किया जा सकता है।

पौधो के वाह्य गुणों को देखकर

- पत्तियों के रंग में परिवर्तन होकर उनका गहरा हरा हो जाना।
- पत्तियों का कुंचित होना।
- पत्तियों का कुछ समय के लिए दोपहर में मुरझाना।

मृदा की दशा एवं गुणों द्वारा

- मृदा की संसजकता तथा सुघट्यता के अभिलक्षण उसमें उपस्थित नमी की मात्रा को प्रकट करते हैं और उनका भूमि में उपस्थित प्राप्य जल से सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है। (तालिका 2) में मृदा के इन्हीं अभिलक्षणों के अधार पर, मृदा में प्राप्य जल और स्पर्श करने पर भूमि की दशा में सम्बन्ध को दर्शाया गया है।

भूमि में प्राप्य जल की मात्रा एवं आर्द्रता प्रतिबल के आधार पर

भूमि में प्राप्य जल और आर्द्रता प्रतिबल के माप के लिए बहुत सी विधियों का प्रयोग किया जाता है जिसमें निम्नलिखित मुख्य हैं:

- मिट्टी को सुखाकर व उसका भार लेकर जल की मात्रा ज्ञात करना।
- भूमि में पृष्ट–आर्द्रता तनाव को पृष्ठ तनाव मापी द्वारा नापना। गन्ने के लिए पृष्ठ–आर्द्रता तनाव 0.4 वायुमण्डलीय तनाव पर पहुंचने पर सिंचाई करना उपयुक्त रहता है।

तालिका 2 मृदा में प्राप्य जल और स्पर्श करने पर भूमि की दशा

प्राप्य जल की मात्रा	मोटी रेतीली भूमि	रेतीली भूमि	दोमट भूमि	मटियार या भारी मटियार भूमि
0 प्रतिशत (म्लानि बिन्दु)	सूखी कणदार मृदा उंगलियों के बीच फिसलती है	सूखी मृदा उंगलियों के बीच फिसलती है	सूखी मृदा छोटे–छोटे टुकड़ों में जल्दी टूट कर चूर्ण हो जाती है	सख्त ढेलेदार मृदा, कभी–कभी चटखी हुई
50 प्रतिशत से कम	सूखी सी मृदा दबाने पर इसकी गोली नही बनती	सूखी, इसकी गोली नही बनती	कुछ–कुछ दानेदार, दबाने पर गोली बनी रहती है	गोली बनी रह जाती है
50 प्रतिशत से 75 प्रतिशत	जैसे 50 प्रतिशत या कम नमी पर होता है	दबाने पर गोली सी बन जाती है परन्तु दाब हटाने पर टूट जाती है	कुछ सुघट्टय होती है और दबाने पर गोली बन जाती है	गोली सी बन जाती है और दबाने पर फीता जैसा आकार भी ले लेती है।
75 प्रतिशत से नमीधारण क्षमता तक	चिपकती है और उंगुलियों से दबाने पर गोली बनती है परन्तु जल्दी टूट जाता है	कमजोर सी गोली बन सकती है, परन्तु थोड़े दाब से टूट जाती है	गोली बन जाती है, बहुत सुघट्य होती है, थोड़ी चिकनी लगती है।	उंगलियों में दबाने पर फीते जैसे बन जाते हैं। चिकनी सी लगती है।
100 प्रतिशत (नमी धारण–क्षमता)	दबाने पर गोली सी बन जाती है गीलापन हाथपर लगा रह जाता है	जैसा मोटी रेतीली भूमि में होता है	जैसा मोटी रेतीली भूमि में होता है।	जैसा मोटी रेतीली भूमि में होता है।
नमीधारण क्षमता से अधिक	दबाने पर पानी ऊपर आ जाता है	दबाने पर पानी छूटता है।	दबाने पर पानी टपकता है	दबाने पर पानी टपकता है।

- भूमि में आर्द्रता की मात्रा को विद्युत चालकता के आधार पर आर्द्रता ब्लाकों (जिप्सम अथवा नायलान) से नापना। इस आधार पर गन्ने की सिंचाई करने का उपयुक्त समय वह होता है जब जिप्सम ब्लाक का प्रतिरोध 5,000 ओम पर पहुँच जाए।
- भूमि में प्राप्य जल के ह्रास को मौसम की भौतिक दशाओं के अनुसार जानना।
- न्यूट्रान किरणन द्वारा भूमि की आर्द्रता नापना।

प्रयोगों द्वारा यह साबित हुआ है कि गन्ने की अधिकतम उपज प्राप्त करने के लिए भूमि में 40 से 50% प्राप्य जल समाप्त हो जाने पर सिंचाई देना उपयुक्त रहता है।

पौधों की क्रांन्तिक वृद्धि अवस्था के आधार पर

व्यवहारिक रूप से सिंचाई करने के लिए इस विधि का प्रयोग सबसे सरल है, क्योंकि इसमें किसी प्रकार के उपकरण आदि की आवश्यकता नहीं पड़ती है। इस विधि में पौधे की उन अवस्थाओं को पहचानने की आवश्यकता पड़ती है, जिन पर जल की कमी होने पर पौधे की बढ़वार अन्य अवस्थाओं की अपेक्षाकृत अधिक रूक जाती है और इसके फलस्वरूप फसल की उपज घट जाती है।

सिंचाई कितनी की जाए ?

सिंचाई के जल का समुचित उपयोग तभी हो सकेगा, जब सिंचाई के लिए उतने पानी का उपयोग किया जाए जितना कि आवश्यक हो। सिंचाई का आशय सदैव यह होता है कि पौधों में प्राप्य जल का जो ह्रास वाष्पीकरण द्वारा हो चुका है उसकी पूर्ति हो जाए। यदि सिंचाई में दिया गया जल उस मात्रा से अधिक होगा तो वह गुरूत्वाकर्षण के द्वारा अन्तःस्रवण की विधि द्वारा मूल मृदा पृष्ट से लुप्त हो जाएगा। इसलिए सिंचाई से पहले प्राप्य जल में हुए ह्रास की मात्रा का अनुमान लगाना आवश्यक होता है। मूल मृदा पृष्ट में प्राप्य जल की कमी ज्ञात कर लेने के पश्चात् सिंचाई नाली में पानी के बहाव को नापकर आवश्यक जल की मात्रा खेत में छोड़ी जा सकती है। सिंचाई के पानी की मात्रा को नापने के लिए प्रयोग किये जाने वाले साधन निम्न हैं:

- छिद्रों द्वारा
- नाच
- पार्शल फ्लूम
- पानी के बहाव मापक

सिंचाई किस प्रकार की जाए ?

सिंचाई के पानी की उपयोगिता को बढ़ाने के लिए यह आवश्यक है कि सिंचाई की विधि उपयुक्त हो। इसका आशय यह है कि सिंचाई की विधि से सही मात्रा में खेत में पानी लगे। ऐसी विधि जिससे खेत में पानी कम अथवा अधिक मात्रा में लगे वह उपयुक्त विधि नहीं कही जा सकती, क्योंकि पौधों के लिए अधिक पानी भी उतना ही हानिकारक है जितना कि कम पानी। सफल सिंचाई के लिए निम्न बातें आवश्यक हैं:

- भूमि को समतल कर लिया जाय और पानी को भूमि की सतह पर चलने के लिए एक हल्का सा ढलान दे दिया जाए।
- सिंचाई की नालियों को ऐसा बनाया जाए कि पानी का नाली फूटने व अन्तः स्त्रावण से ह्रास कम हो।
- सिंचाई करने की विधि मिट्टी की दशा के अनुसार हो।

सिंचाई की विधि का चुनाव निम्नलिखित बातों पर निर्भर करता है:

- भूमि की विशेषताऐं
- फसल की विशेषताऐं
- मौसमी परिस्थितियां
- किसान की आर्थिक स्थिति
- सिंचाई की मुख्य नाली का आकार, उपलब्ध पानी के बहाव की दर तथा पानी की गुणता।

उपरोक्त बातों को ध्यान में रखते हुए गन्ने की फसल को निम्नलिखित विधियों में से उपयुक्त सिंचाई विधि का चुनाव करके सींचा जा सकता है।

नकवार सिंचाई

इस सिंचाई विधि में सारे खेत को छोटी–छोटी पट्टियों में बदल दिया जाता है, जो आपस में एक दूसरे से छोटी सी मेड़ से अलग रहती हैं। खेतों में हल्का सा ढ़लान दिया जाता है और पानी को सबसे ऊंचे स्थान से पट्टियों में आने दिया जाता है जिससे पानी एक पतली परत के रूप में पट्टियों पर बहता है। यह विधि कम ढ़लान वाले क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है।

थाला सिंचाई

इस सिंचाई विधि में छोटे–छोटे समतल थाले बना लिए जाते हैं जिनमें पानी 5 से 15 से.मी. तक भरा जाता है। यह विधि उन क्षेत्रों के लिए उपयुक्त होती है जहाँ भूमि का गठन भारी हो।

कूँड सिंचाई

गन्ने की फसल के लिए यह सबसे उपयुक्त सिंचाई की विधि है क्योंकि गन्ने को कूँडों में सीधी पंक्तियों में बोया जाता है। कूँड, खेत के ढलान की ओर बनाई जाती हैं। फिर इन कूँडों में पानी दिया जाता है।

फव्वारा सिंचाई

यह सिंचाई विधि लगभग सभी क्षेत्रों और फसलों के लिए उपयोग में लाई जा सकती है। पानी को पम्प करके पाइपों द्वारा खेतों तक ले जाया जाता है। खेतों में स्वचालित फव्वारे द्वारा पानी को वर्षा की तरह छिड़का जाता है। असमतल और नमी जल्दी सोखने वाली भूमियों में इसका अधिक प्रचलन है क्योंकि सिंचाई की अन्य विधियाँ वहाँ सुचारू रूप में काम में नही आ सकतीं। इस सिंचाई पद्वति से सिंचाई के पानी के साथ ही जल घुलनशील उर्वरक और रसायन भी फसल को दिये जा सकते हैं। क्योंकि इस विधि से कम गहरी सिंचाई जल्दी–जल्दी दी जा सकती है। अतः पानी की बचत के साथ–साथ फसल की उत्पादकता व गुणवत्ता भी बढ़ जाती है।

टपकाव सिंचाई

इस सिंचाई विधि में पम्प के द्वारा पानी के दबाव को बढ़ाया जाता है और इस पानी को प्लास्टिक के पाईपों के द्वारा खेत तक पहुँचाया जाता है। गन्ने की प्रत्येक पंक्ति में एक कम व्यास वाला प्लास्टिक का पाईप डालकर गन्ने की पंक्तियों तक पानी पहुँचा दिया जाता है। इस पाईप में छोटे छिद्रों वाले उपकरण लगे रहते हैं जिन्हें इमिटर कहा जाता है। इन इमिटरों में से पानी बूँद–बूँद करके गिरता रहता है। इस सिंचाई प्रणाली से गन्ने में प्रतिदिन सिंचाई के द्वारा प्राप्य जल के ह्रास को पूरा किया जा सकता है। प्राप्य जल क्योंकि हमेशा मृदा में बना रहता है इसलिए गन्ने की उपज और गुणवत्ता में बढ़ोत्तरी तो होती ही है, पानी की बचत भी होती है।

गन्ने की सिंचाई से संबधित ध्यान देने योग्य बातें

गन्ना क्योंकि अधिक पानी चाहने वाली फसल है और पानी के संसाधन सीमित हैं अतः सिंचाई की विधि ऐसी चुनी जाए जिसमें पानी की बर्बादी न्यूनतम हो। गर्मी के मौसम में जबकि नहरें वार्षिक रख–रखाव के लिए बन्द कर दी जाती हैं, कुँए सूख जाते हैं और बिजली की आपूर्ति घट जाती है तब पानी को बहुत ही मितव्ययता के साथ उपयोग करना चाहिए।

पानी की पर्याप्त उपलब्धता की स्थिति में गन्ने की सिंचाई

यदि सिंचाई के लिए उपयुक्त जल पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है तो गर्मी के मौसम में भूमि की दशा को देखते हुए हर 15 से 20 दिन पर पानी देते रहना चाहिए। सिंचाई के बाद एक या दो गुड़ाई करने से खेत में नमी अधिक दिनों तक बनी रहती है और खरपतवार भी नष्ट हो जाते हैं। साधारणतः यह देखा गया है कि उत्तरी भारत में गन्ने की सिंचाई 5–6 बार वर्षा से पहले और 1–2 बार वर्षा के बाद करने की आवश्यकता पड़ती है। सिंचाई 8 से 10 से. मी. गहरी करनी चाहिए। प्रयोगों द्वारा सिद्ध हो चुका है कि अधिक गहरी सिंचाई देने की अपेक्षा जल्दी–जल्दी और कम गहरी सिंचाई देन से पैदावार अधिक होती है। अतः पर्याप्त पानी की उपलब्धता की स्थिति में भी इतनी गहरी सिंचाई नही करनी चाहिए जिससे खेत में जल भराव की स्थिति पैदा हो जाए।

पानी की सीमित उपलब्धता की स्थिति में गन्ने की सिंचाई

यदि सिंचाई के लिए उपलब्ध जल की मात्रा सीमित हो तो सिंचाई की मात्रा का वितरण इस प्रकार करना चाहिए कि पौधे की सबसे अधिक आवश्यकता वाली अवस्थाओं में सिंचाई अवश्य हो जाए। यदि इन क्रान्तिक अवस्थाओं पर सिंचाई नहीं की जाती है तो गन्ने की पैदावार और गुणवत्ता पर बहुत बुरा असर पड़ता है। यदि उपलब्ध पानी की मात्रा केवल एक सिंचाई के लिए ही पर्याप्त है तो इसे किल्ले फूटने की तीसरी अवस्था पर देना चाहिए। यह स्थिति मई माह के अन्तिम सप्ताह पर आती है। यदि दो सिंचाई के लिए पानी उपलब्ध है तो गन्ने में किल्ले फूटने की दूसरी और तीसरी अवस्थाओं पर सिंचाई देना चाहिए जो कि अप्रैल और मई माह के अन्तिम सप्ताह पर आती है। यदि तीन सिंचाईयों के लिए पानी उपलब्ध है तो उपरोक्त समय के अलावा किल्ला फूटने की प्रथम अवस्था पर भी गन्ने में सिंचाई लगानी चाहिए। चार सिंचाइयों के लिए पानी उपलब्ध होने की परिस्थिति में चार सिंचाइयाँ कृमशः गन्ना जमने के बाद, किल्ला फूटने की प्रत्येक (प्रथम, दूसरी और तीसरी) अवस्था पर करनी चाहिए।

पानी की कमी की स्थिति में समतल बोने की अपेक्षा नालियों में बोना ज्यादा अच्छा रहता है जिससे नालियों में सिंचाई की जा सके। गन्ने को गड्ढ़ों में अथवा गहरी नालियों में बोने से गन्ने की जड़ें अधिक गहराई तक की मिट्टी से नमी सोख लेती हैं। गर्मी का मौसम आने तक शरदकालीन गन्ने की जड़ें बसन्तकालीन गन्ने की जड़ों की अपेक्षा अधिक विकसित हो जाती हैं जिससे पौधों में सूखा सहन करने की क्षमता बढ़ जाती है। एकान्तर नाली विधि से सिंचाई करने पर 36 प्रतिशत पानी की बचत होती है। इस विधि में गन्ने की दो पंक्तियों के बीच सिंचाई करने के लिए 45 सेमी चौड़ी और 15 से0मी0 गहरी नालियाँ बनाई जाती हैं।

गर्मी के मौसम में गन्ने की फसल में सिंचाई द्वारा दिये गये पानी का बहुत थोड़ा ही भाग फसल के उपयोग में आता है। बाकी बहुत बड़ा भाग तो गर्म एवं शुष्क

मौसम के कारण गन्ने की पंक्तियों के बीच की खुली जमीन से वाष्पन की क्रिया द्वारा नष्ट हो जाता है। यदि गन्ने की पंक्तियों के बीच की खुली भूमि पर गन्ने की पत्तियों की पलवार (8 से.मी. मोटी) बिछा दी जाए तो काफी हद तक पानी के नुकसान को रोका जा सकता है और सिंचाई की मात्रा में कटौती की जा सकती है। पानी की बचत के साथ–साथ इस पलवार से 25 से 30 प्रतिशत उपज में भी वृद्धि होती है।

गन्ने को सूखे से बचाने के लिए तकनीकियाँ

गन्ने में शर्करा प्रतिपूर्ति, शर्करा मात्रा, उपज एवं वृद्धि पर सूखे के विपरीत प्रभाव को कम करने की दृष्टि से निम्नलिखित तकनीकियों को उपयोग में लाया जा सकता है।

- एकांतर नाली विधि से सिंचाई करने पर उपलब्ध पानी का उपयोग अधिक कुशलता से करके सूखे की स्थिति में भी सीमित जल संसाधनों से अच्छी उपज प्राप्त की जा सकती है।
- गहरी जुताई करने से फसल की जड़ें गहराई तक जाती हैं जिससे पौधा मिट्टी की नीचे की सतहों से नमी ग्रहण कर लेता है ।
- बुवाई करने की पोरियों को संतृप्त चूने के घोल में दो घंटे तक डुबोना चाहिए। इस तकनीक से गन्ने में सूखे के प्रति कठोरता उत्पन्न हो जाती है व गन्ने की उपज 7 से 9 प्रतिशत बढ़ जाती है। संतृप्त चूने का घोल बनाने के लिए 80 किलो चूने को 400 ली. पानी में घोलें। चूने के घोल की अनुपस्थिति में, रोपण के पूर्व, पोरियों को 24 घंटे, पानी में डुबोना चाहिए। इससे सूखे की अवस्था में भी अंकुरण अच्छा होता है।
- सूखे की अवस्था में, परिपक्व व अपरिपक्व गन्ने के ऊपरी आधे भाग से ली गयी पोरियाँ, बीज सामग्री की दृष्टि से अच्छी मानी जाती हैं।
- सूखा प्रतिरोधी किस्मों को बोने के लिए चुनें।
- उर्वरक की संतुलित मात्रा का प्रयोग करें।
- सूखे के विपरीत प्रभाव को हल्का करने में कार्बनिक खाद/उर्वरक का प्रयोग करें।
- जल प्रयोग क्षमता में प्रभावी प्रजातियाँ बोयें।
- एमिसान अथवा बावस्टिन को 100 ग्राम/हैक्टेयर की दर से 100 लीटर पानी में घोल बनाकर इस घोल में पोरियों को डुबोना चाहिए। ऐसा करने से सूखे की अवस्था में गन्ने की कलियाँ अच्छी विकसित होती हैं।
- दीमक के नियन्त्रण के लिए, गड्ढ़ों/कूँडों में 5 ली. प्रति हैक्टेयर की दर से क्लोरपारिफॉस का प्रयोग करें।
- 30 से.मी. गहरी व 60 से.मी. चौड़ी नालियों में गन्ने की बुवाई करनी चाहिए।
- मिट्टी चढ़ाने की संक्रिया करनी चाहिए।
- पंक्तियों के मध्य गुड़ाई करने से सतह की मृदा से नमी का ह्रास रूक जाता है।
- गन्ने के पूर्ण जमाव (लगभग 45 दिन) के बाद, इसकी पौध के बीच के स्थान (अन्तः पंक्ति स्थान) में, क्लोरपारिफॉस 5 ली. प्रति हे. की दर से (1 किग्रा. सक्रिय तत्व) उपचारित ट्रैश मल्च (पताई बिछावन) की 10 से.मी. मोटी तह बिछाएँ। इससे मृदा में नमी संरक्षित रहती है, तथा खर–पतवारों और उनसे होने वाले पानी के नुकसान का नियंत्रण होता है।
- गन्ने की खड़ी फसल के नीचे की सूखी पत्तियों को छील कर, दो पंक्तियों के बीच बिछा देने से मृदा में नमी संरक्षित रहती है।
- रोपण के 60, 90 और 120 दिनों बाद, गन्ने की पत्तियों पर 2.5 प्रति ात यूरिया एवं 2.5 प्रतिशत म्यूरेट आफ पोटाष के घोल का कुल 3 बार छिड़काव करें। इससे गन्ने की फसल पर सूखे का प्रभाव कम होता है।

उपरोक्त तथ्यों से यह निष्कर्ष निकलता है कि गन्ने की खेती के लिए गहरी तथा उत्तम जल निकास वाली बलुई दोमट से दोमट और भारी दोमट मृदा जिनकी मृदा अभिक्रिया (पी. एच.) 6.0 से 8.5 होती है, सर्वोत्तम रहती हैं। अम्लीय मृदाएं इसकी खेती के लिए अनुपयुक्त होती हैं। गन्ने की अच्छी पैदावार प्राप्त करने के लिए परिस्थितयों को देखते हुए ऐसी सिंचाई विधि को चुनना चाहिए जिससे पानी कम से कम मात्रा में लगे। साथ ही यह भी ध्यान रखें कि पौधे की क्रान्तिक अवस्थाओं पर सिंचाई जरूर हो। यदि इन बातों का ध्यान रखेंगे तो कम से कम मात्रा में पानी का इस्तेमाल करते हुए अधिक उपज प्राप्त कर सकेंगे।

ज्ञान–विज्ञान प्रभाग

गन्ने की लाभकारी उत्पादकता हेतु मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन

शिव राम सिंह, राम रतन वर्मा एवं तपेन्द्र कुमार श्रीवास्तव
भाकृअनुप– भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

गन्ना उत्तर भारत के मैदानी भागों की सबसे महत्वपूर्ण व्यावसायिक फसल है वर्ष 2014–15 में गन्ने का क्षेत्रफल लगभग 5.06 मिलियन हेक्टयर, उत्पादन 354.9 मि.टन एवं औसत उत्पादकता 70 टन/हे. प्राप्त हुई। निरंतर जनसंख्या वृद्धि को देखते हुये प्रति व्यक्ति मीठे पदार्थों की बढ़ती माँग को पूरा करने के लिए गन्ने की आवश्यकता सन् 2030 में लगभग 600 मिलियन टन की होगी। इस आवश्यकता को पूरा करने के लिए 5.50 मिलियन हेक्टर पर 110 टन प्रति हेक्टर की दर से आज के उत्पादन स्तर से 5.7 प्रतिशत अधिक उत्पादन करने की आवश्यकता होगी जो हमारी मॉगों को पूरा कर पायेगी। धान्य आधारित सघन खेती, दलहनी फसलों का अभाव तथा कार्बनिक एवं जैविक खादों के उत्तरोन्तर कम प्रयोग के कारण उत्तर भारत के उपोष्णकटिबंधी बेसिन मैदानी भागों में मृदा कार्बनिक पदार्थों में स्पष्ट कमी होने लगी है जिससे अन्य फसलों के साथ–साथ गन्ने की उत्पादकता में निरंतर कमी आने लगी है। गन्ना अत्यधिक पोषक तत्वों को ग्रहण करने वाली फसल है। एक अनुमान के अनुसार सन् 2020 तक 450 मिलियन टन गन्ने का उत्पादन 4.50 मिलियन हेक्टर क्षेत्र से संभव हो सकेगा तथा मृदा में इससे क्रमशः 0.90, 0.24, 1.26 एवं 0.135 मिलियन टन नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटाश एवं सल्फर की कमी हो जाएगी जिसको पूरा करना अत्यंत आवश्यक होगा। इस लक्ष्य को पूरा करने के लिए विभिन्न पोषक तत्वों की लगभग 0.88 मिलियन टन मात्रा की आवश्यकता होगी। जिसमें से 0.70 मिलियन टन नाइट्रोजन, 0.06 मिलियन टन फॉस्फोरस, 0.12 मिलियन टन पोटाश, 55 हजार टन सल्फर, 10 हजार टन जस्ता एवं 5 हजार टन आइरन सम्मिलित है। गन्ने का प्रति टन उत्पादन करने के लिए 0.56–1.20 किलोग्राम नाइट्रोजन, 0.38–0.82 किलोग्राम फास्फोरस, 1.0–2.5 किलोग्राम पोटाश, 0.25–0.60 किलोग्राम कैल्शियम, 0.20–0.35 किलोग्राम मैग्नीशियम, 0.02–0.20 किलोग्राम सोडियम एवं 2.2 किलोग्राम सल्फर का अवशोषण होता है। इसी तरह 100 टन गन्ना उत्पादन के लिए औसत रूप से क्रमशः 208, 53, 280, 30, 34, 1.2 0.6 एवं 0.2 किलोग्राम प्रति हेक्टर नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटाश, सल्फर, आइरन, मैगनीज एवं कापर का मृदा से अवशोषण होता है जबकि इन क्षेत्रों में गन्ने की संस्तुत क्रमशः 150, 60 एवं 60 किलो ग्राम नाइट्रोजन, फॉस्फोरस एवं पोटाश बावक फसलों तथा 190, 60 एवं 60 किलोग्राम प्रति हेक्टयर नाइट्रोजन, फास्फोरस एवं पोटाश पेड़ी फसलों को दिया जाता है। इसमें से केवल 6–45 प्रतिशत नाइट्रोजन उर्वरकों का गन्ने के पौधो द्वारा उपयोग हो पाता है बाकी पानी के साथ बह कर भूमिगत जल में मिल जाते है एवं उसको भी प्रदूषित कर देते हैं गन्ने में पोषक तत्वो की मॉग और मृदा से इन तत्वों के अवशोषण में असंतुलन के कारण जो अंतर उत्पन्न होता है उसके फलस्वरूप बाकी बचे तत्वों की मृदा से आपूर्ति होती है जो धीरे–धीरे मुख्य एवं गौण पोषक तत्वों के दोहन में बदल जाती है। यह प्रक्रिया निरंतर चलने से मृदा में पोषक तत्वो का असंतुलन हो जाता है जिससे मृदा के भौतिक, रसायनिक एवं जैविक क्रियाशीलता में कमी होने से प्रति इकाई उर्वरक प्रयोग से प्राप्त होने वाले गन्ने की उत्पादकता में स्पष्ट रूप से की कमी आने लगती है। ऑस्ट्रेलिया में निरंतर 22 वर्षों तक गन्ने में किए गए शोध से ज्ञात हुआ कि नाइट्रोजन 4.8 ग्राम प्रति किलो से घट कर 2.2 ग्राम प्रति किलो मृदा में रह गई। इसके साथ ही गन्ने के उत्पादन में मुख्यतः मृदा मे कठोरता, अम्लीयता, पोषक तत्वों का ह्रास तथा जैविक क्रियाओं में परिवर्तन के कारण कमी हुई। गन्ने के निरंतर उत्पादन से मृदा की रसायनिक दशा में गिरावट आई है, फिजी, फिलीपींस, भारत एवं दक्षिण अफ्रिका में किए गए शोध से ज्ञात हुआ है कि मृदा के ऊपरी सतह के पी.एच. मान में 0.3 यूनिट एवं 34 मिली मोल कैटायन एक्स्चेंज क्षमता में कमी पायी गई। साथ ही मृदा में टोटल नाइट्रोजन 2. 5 ग्राम प्रति किलों से घट कर 1.9 ग्राम/किलो, फास्फोरस 36 से 27 प्रति किलो तथा पोटाश 1.3 मिली मोल प्रति किलो रह गया। पोषक तत्वो कि अत्यधिक कमी 0–15 से.मी. तथा 15–30 से.मी. के स्तरों पर अंकित हुई। अतः स्पष्ट है कि गन्ने का उत्पादन लक्ष्य, मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन से प्राप्त किया जा सकता है तथा किसानो को इसके प्रबंधन के लिए सरकारी तथा गैरसरकारी संस्थानों के सहयोग से उत्प्रेरित किया जा सकता है।

मृदा स्वास्थ्य क्या है?

'मिट्टी की गुणवत्ता' एवं मिट्टी के स्वास्थ्य को अक्सर हम समानार्थी के रूप में प्रयोग करते हैं। वस्तुतः मृदा को निम्नीकृत एवं पर्यावरण को नुकसान पहुँचाए बिना मृदा की कार्य क्षमता एवं फसल विकास में सहायक मृदा गुणों के निर्धारित एवं विश्लेषण

पर आधारित व्याख्या को मृदा स्वास्थ्य कहते हैं। बोल–चाल की भाषा में मृदा स्वास्थ्य से तात्पर्य इसके स्वास्थ्य अथवा बीमार होने से लगाते है तथा मृदा के जीवित एंव गतिशील इकाई होने का चित्रण करते हैं जो समग्र रूप से कार्य करता है लेकिन यह विभिन्न घटकों के आपसी संयोजन तथा उसको निर्धारित एवं प्रभावित करने वाले बाहरी तत्वो पर निर्भर करता है। इस तरह ''मृदा की मापने योग्य भौतिक–रासायनिक, रासायनिक एवं जैविक क्रियाओं के परस्पर सयोगों का वर्णन 'मृदा स्वास्थ्य' कहलाता है''। किसानों द्वारा इस सभी प्रक्रियाओं को व्यवस्थित एवं नियमित किया जा सकता इस लिए मृदा स्वास्थ्य को मृदा के निहित गुणों के कारण मृदा गुणवत्ता से अलग किया जा सकता है क्योंकि मृदा के निहित गुणो को बदला नहीं जा सकता है और न ही इनको प्रबन्धित किया जा सकता है। किसी भी मृदा के निहित गुणो को वहाँ की जलवायु, स्थलाकृति, वनस्पति, पैत्रिक पदार्थ, एवं समय जैसे करको के आधार पर मापा जा सकता है उत्पादन की दृष्टि कोण से प्रत्येक मृदा कि अपनी निहित क्षमता होती है जिसके कारण कुछ मृदाये अधिक तथा कुछ कम उपजाउ होती हैं। 'मृदा स्वास्थ्य' प्रमुखतः पर्यावरण विषेष में स्थित मृदा के गुणों में विभिन्न कृषि क्रियाओं आदि के फलस्वरूप कालान्तर में होने वाले परिवर्तनों का ऑकलन एवं विश्लेषण करता है।

तालिका 1: मृदा स्वास्थ्य को निर्धारित करने वाले संकेतक एवं उनके कार्य

संकेतक	कार्य एवं मापने का तरीका
	जैविक संकेतक
माइक्रोबियल बायोमॉस कार्बन एवं नाइट्रोजन	1. यह कार्बन एवं नाइट्रोजन तत्वों की उत्प्रेरक क्षमता तथा उनके कोष का उल्लेख करते है
	2. मृदा में जैविक पदार्थों के प्रयोग तथा प्रबंधन प्रभावो के प्रारंभिक चेतावनी को भी प्रदर्षित करते है
पोटेन्सियली मिनरेलाइजेबल नाइट्रोजन	1. यह मृदा उत्पादकता तथा पौधों को नाइट्रोजन उपलब्ध करने की क्षमता का वर्णन करता है
	2. यह जैवभार (बायोमास) का भी आकलन करता है
मृदा श्वसन	1. यह जैवभार (बायोमास) एवं जैविक गतिविधियों के स्तर का उल्लेख करता है
	रासयनिक संकेतक
सोइल आर्गैनिक मैटर (एसओएम) या मृदा जैव पदार्थ	यह मृदा उर्वरता तथा स्थायित्व को परिभाशित करता है
सोइल पीएच (मृदा पी.एच)	यह जैविक और रासायनिक गतिविधिओ के थ्रेसहोल्ड को परिभाषित करता है
इलैक्ट्रिकल कनडकटीविटी (विशिष्ट चालकता)	यह पौधों एवं जैविक गतिविधियों के थ्रेसहोल्ड को परिभाषित करता है
स्ट्रक्टटेबल नाइट्रोजन, फास्फोरस एवं पोटाश	यह पौधो को उपलब्ध होने वाले मुख्य पोषक तत्वो जैसे नाइट्रोजन, फास्फोरस एवं पोटाष की उपलब्धता तथा अनउपलब्धता का वर्णन करता है
	भौतिक संकेतक
मृदा संरचना	यह मृदा में पानी एवं पोषक तत्वों का ग्रहण एवं परिवहन किस तरह से होता है आदि का उल्लेख करता है साथ ही मृदा में पाये जाने वाले सैंड़, सिल्ट एवं क्ले कणो का अनुपात, संरचना, क्षरण के द्वारा पोषक तत्वों के नुकसान एवं विविधिता को भी दर्शाता है।
मिट्टी की जुताई और जड़े	यह मृदा परिदृश्य एवं भौगोलिक विविधता के साथ–साथ मृदा की उत्पादन क्षमता का भी वर्णन करता है
इनफिलट्रेसन एवं बल्क डेनसिटी	यह लीचिंग, मृदा क्षरण, वायु संचार, कामपैक्ट्नेस एवं फसल उत्पादन की क्षमता का वर्णन करता है
वॉटर होल्डिंग कैपेसिटी (जल क्षारण क्षमता)	यह पानी को ग्रहण, परिवहन एवं मृदा क्षरण का उल्लेख करता है तथा मृदा में उपस्थित पानी का प्रयोग मृदा की बल्क डेनसिटी तथा जैविक पदार्थों को ज्ञात करने में प्रयोग किया जाता है

मृदा गुणवत्ता के सूचकांक

किसी भी पारिस्थितिकी तंत्र में होने वाले अनेक गतिविधियों के लिए निर्धारित कारको को माप कर मृदा स्वास्थ्य का मापन कर सकते है। जबकि 'मृदा गुणवत्ता' को कुछ सूचको (Indices) को माप कर किसी भी मृदा की गुणवत्ता ज्ञात कर सकते हैं, जैसे जैविक कार्बन की मात्रा, मृदा में नमी ग्रहण करने की क्षमता, माइक्रोबियल श्वसन आदि। इस तरह से भौतिक, रसायनिक एवं जैविक सूचकांको को एक साथ एकत्र करके उनको मिनियम डाटा सेट में ब्यावस्तिथ कर देते है तथा इनसे निरंतर अंतराल कर किसी भी मृदा की गुणवत्ता का आकलन कर सकते है मृदा गुणवत्ता को मापने वाले सूचकांक तीन प्रकार के होते है (तालिका 1)।

मृदा गुणवत्ता के गुणात्मक सूचकांक

मृदा की गुणवत्ता जानने के लिए कुछ गुणवत्ता सकेतको का मानक होना चाहिए जिससे मृदा की गुणवत्ता को परिभाषित किया जा सके तथा उनके गुणो के आधार पर फसलो के उगाने की संस्तुति एवं मृदा प्रबन्धन अपनाया जा सके। क्योंकि मृदा गुणवत्ता का सीधा सम्बन्ध वहाँ की जलवायु, वनस्पति, स्थलाकृति, पैत्रिक पदार्थ एवं समय आदि पर निर्भर करता है जिसका प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष प्रभाव वहाँ उगाई जाने वाली फसलों तथा किसानों की आर्थिक स्थिति पर पड़ता है इस लिए मृदा गुणवत्ता की जानकारी होना आवश्यक है। इस तरह से मृदा गुणवत्ता को बनाये रखने के लिए मृदा में पाये जाने वाले गुणात्मक सूचकांको को चिन्हित करके तथा उनको विभिन्न प्रबन्धनो जैसे हरी खाद का प्रयोग, जैविक खाद, सन्तुलित उर्वरक का प्रयोग, मृदा परीक्षण एवं लक्ष्य निधारित उपज के अनुसार उर्वरकों का प्रयोग एवं समेकित पोषक तत्व प्रबन्धन से न केवल मृदा में पाये जाने वाले सूक्ष्म जीवाणुओं तथा उनके द्वारा होने वाले अनेक प्रकार की जैव–रसायनिक क्रियाओं को बढ़ाते है बल्कि कम लागत पर अधिक फसल उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है साथ ही साथ वातावरण में होने वाले अनेक तरह के प्रदूषण को भी कम किया जा सकता है।

मृदा स्वास्थ्य मे सुधार के उपाय

- **हरी खाद का प्रयोग**

फसल उत्पादकता एवं मृदा उर्वरता को बढ़ाने मे हरी खादो की भूमिका निर्विवाद है। किन्तु सघन कृषि पद्धतियों के विकास के फलस्वारूप अत्याधिक उत्पादन प्राप्त करने की लालसा में किसानों ने हरी खाद का प्रयोग करना कम कर दिया। हरी खाद जो पहले खेती का मुख्य आधार हुआ करती थी अब उनका प्रयोग नगण्य हो गया है। अनेक प्रयोगों से यह सिद्ध हो चुका है कि जिन खेतों में केवल रासायनिक उर्वरकों का निरंतर प्रयोग किया जा रहा है उन खेतो की उर्वरा शक्ति पर अत्यधिक कुप्रभाव पड़ा है जिससे उनकी उर्वरा शक्ति लगातार घटती जा रही है। मृदा की उर्वरा शक्ति उसके भौतिक, रसायनिक एवं जैविक गुणों पर निर्भर करती है। मृदा की उर्वरा शक्ति को बनाये रखने के लिए गन्ने में हरी खाद की (दो लाईनो के बीच में) बुवाई तथा गोबर की खाद एवं जैविक खादों की सीमित आपूर्ति से हरी खाद का महत्व और बढ़ गया है। गन्ने की निरंतर एकल खेती से मृदा अवक्षरण में अप्रत्याशित रूप से वृद्धि देखी गई है जिससे न केवल गन्ने की उपज में कमी हुई है बल्कि मृदा की ऊपरी सतह में पाये जाने वाले कार्बनिक पदार्थों के साथ–साथ अकार्बनिक पोषक तत्वों की कमी पायी गई, जिससे गन्ना उत्पादन में प्रतिकूल प्रभाव देखने को प्राप्त हुआ। हरी खाद के रूप में प्रयोग होने वाली फसलें बहुउपयोगी, तेजी से बढ़ने वाली, गहरी जड़ वाली तथा ज्यादा पोषक तत्वों को प्रदान करने वाली होनी चाहिए। इसके साथ ही विपरीत परिस्थितियों जैसे बाढ़, सूखा एवं प्रतिकूल तापमान में उगने वाली, कम सिचाई, कम पोषक तत्व, रोग एवं कीटों के अतिक्रमण को सहन करने वाली हो। हरी खाद के लिए दलहनी एवं गैर दलहनी फसलों का प्रयोग किया जाता है किन्तु सामान्य तौर पर दलहनी फसलें ही हरी खाद के रूप में उगाई जाती हैं। इन फसलों में जड़ ग्रंथिया पायी जाती हैं जिसमें वायुमंडलीय नत्रजन का स्थिरीकरण करने वाले जीवाणु पाये जाते है जी पौधो को नाइट्रोजन उपलब्ध कराते हैं जबकि गैर दलहनी फसलों में यह क्षमता नहीं होती। सनई, ढ़ैंचा, उर्द, मूंग, ग्वार, लोबिया, बरसीम आदि मुख्य फसले हैं जिनका प्रयोग हरी खाद बनाने में होता है। इनको बुवाई के 50–60 दिनों बाद मिट्टी में मिला देना चाहिए क्योंकि इस अवस्था में फसल मुलायम होती है तथा इसका कार्बनः नाइट्रोजन अनुपात भी कम होता है जिससे ये आसानी से सड़ जाती है।

शोध से ज्ञात हुआ है कि गन्ने में दलहनी फसलों की हरी खाद के प्रयोग से 41–71 किलोग्राम नाइट्रोजन प्रति हेक्टेयर की दर से प्राप्त हो जाता है। इससे उपोष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में बसंत ऋतु में बोयी गई गन्ने की फसल मे 27–43 प्रतिशत तक उत्पादन में वृद्धि अर्जित हुई। यह भी ज्ञात हुआ कि प्रतिकिलों नाइट्रोजन को अकार्बनिक खाद, हरी खाद एवं गोबर की खाद के द्वारा बराबर मात्रा में प्रयोग करने पर क्रमशः 2.25, 2.43 एवं 0.97 कुंतल गन्ना अधिक प्राप्त हुआ। संयुक्त रूप से अकार्बनिक उर्वरकों के साथ हरी खाद के प्रयोग से नाइट्रोजन उर्वरकों की क्रिया क्षमता बढ़ने से नाइट्रोजन की आवश्यकता में 41–85 किलोग्राम/हेक्टेयर तक कमी पायी गई। गन्ना एक धीमी वृद्धि वाली फसल है जिसे पंक्तियों के बीच अधिक दूरी पर उगाया जाता है इन पंक्तियों के बीच कम दिनों में पकने वाली दलहनी फसलों को अन्तःफसल के रूप में उगाने से जैव पदार्थ के साथ–साथ वायुमंडीय नत्रजन का स्थिरीकरण करके मिट्टी को नाइट्रोजन प्रचुर मात्रा में प्रदान करते हैं। इसके लिए कम अवधि की सीधी बढ़ने

तालिका 2 : मृदा गुणवत्ता के सूचकांक

सूचकांक	कमजोर	मध्यम	अच्छा
केंचुए	मृदा की ऊपरी सतह पर 0–1 केचुओं की संख्या तथा केचुओं कि कास्ट या छेद अनुपस्थित।	मृदा की ऊपरी सतह पर 2–10 केचुओं की संख्या तथा केचुओं की कुछ कास्ट या छेद भी प्राप्त हुआ।	मृदा की ऊपरी सतह पर 10 से अधिक केचुओं की संख्या तथा केचुओं कि अधिक कास्ट या छेद प्राप्त हुआ।
कार्बनिक पदार्थ	मृदा की उपरी तथा अंदर की सतह का रंग एक समान होता है।	मृदा की ऊपरी सतह का रंग लगभग अंदर की सतह के समान ही होता है।	मृदा की ऊपरी सतह का रंग अंदर की सतह से अलग तथा गहरा होता है।
जड़े तथा उनके अवशेष	पौधों की जड़ों तथा उनके अवशेषों का अभाव रहता है।	पौधो की जड़ों तथा उनके अवशेषों की उपस्थिती अनिवार्य है	पौधों की जड़ो तथा उनके अवशेषों की उपस्थिति ध्यान देने योग्य है
मिट्टी जुताई मधुरता और मुलायमता	देखने से मृत जैसे ईंट या कंक्रीट की तरह कठोर, इसे ड्रिल के द्वारा ही तोड़ा जा सकता है।	ऊपर कुछ हद तक कठोर, बड़े–बड़े ढेले दिखाई देते है जो की बीज रोपण के बहुत अनुकूल नहीं होते।	मिट्टी अच्छी तरह से दानेदार होती है मक्खन की तरह इसके टुकडे कर सकते हैं तथा बीज रोपाई के बहुत अनुकूल होती है।
मृदा क्षरण	दो इंच से भी अधिक गहरी नालियों का निर्माण हो जाता है जो एक दूसरे को जोड़ती तथा मिट्टी कि ऊपरी सतह जो बहुत पतली होती है वह तेजी से अपवाह में बह जाती है	मृदा क्षरण से जो कुछ नालियाँ बनती हैं वह दो इंच तक गहरी हो सकती हैं जिसमें मटमैले रंग के पानी का तेज अपवाह होता है।	मृदा क्षरण से नालियों का निर्माण नहीं होता और न ही जल अपवाह होता है।
जल धारण क्षमता	बरसात के दो दिनों बाद ही पौधों में जल की कमी होने लगती है।	पौधों में जल की कमी एक सप्ताह बाद शुरू होने लगती है।	जल धारण करने की क्षमता बिना ह्रास के काफी अधिक दिनों तक बनी रहती है।
जलनिकास एवं इनफिलट्रेसन	लंबे समय तक पानी का भराव मृदा में बना रहता है तथा अधिकतर पानी का ह्रास वाष्पीकरण से होता है, न की इनफिलट्रेसन से।	जल का भराव कुछ समय तक मृदा में बना रहता है तथा अधिकतर पानी का ह्रास इनफिलट्रेसन से होता है।	मृदा में न तो जल का भराव होता है न ही जल–प्लावन होता है धीरे–धीरे मृदा से जल का निस्कासन हो जाता है इससे मृदा न अधिक गीली और न ही अधिक सूखी रहती है।
फसल की स्थिति	पूरे फसल के मौसम में समस्याये बनी रहती हैं तथा फसल पीले रंग की एवं वृद्धि कम होती है।	फसल की वृद्धि ठीक तरह से होती है तथा कहीं–कहीं पर पीले रंग के धब्बे फसलों में दिखाई देते हैं, अधिकतर फसल का रंग हरा रहता है।	फसल की वृद्धि अच्छी होती है तथा फसलों का रंग हरा रहता है।
मृदा पी.एच.	फसल के उपयुक्त पी.एच. करना इस मृदा में काफी मुश्किल काम है	–	इस तरह की मृदा में फसल के उपयुक्त पी.एच. मान होता है
तत्वों को ग्रहण करने की क्षमता	फसल उपयोग की अपेक्षा अधिक उर्वरको के प्रयोग के बावजूद मृदा परीक्षण मूल्यों में कमी आने लगती है।	इसमे थोड़ा बहुत ही परिवर्तन आता है	उर्वरक के प्रयोग तथा फसल उपयोग के अनुसार मृदा परीक्षण मूल्यों का परिणाम आता है

वाली दलहनी फसलें गन्ने के साथ उगाने के लिए उपयुक्त होती है। उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में रबी मौसम में गन्ने की फसल के साथ मटर, मसूर एवं मेथी तथा बंसत ऋतु में मूंग, लोबिया एवं उर्द को अन्तःफसल के रूप में उगाने पर मृदा की उर्वरा शक्ति मे स्पष्ट रूप से वृद्धि देखी गई है। सनई को गन्ने के साथ अन्तःफसल के रूप में उगाने से क्रमषः 12.6 एवं 15.5 टन प्रति हेक्टर जैव पदार्थ बुवाई के 45 तथा 60 दिनों बाद मृदा को प्राप्त हो जाता है जब कि ढैंचा केवल 6.8 टन प्रति हेक्टर जैव भार मृदा में समाहित करता है। हरी खाद से मृदा में नाइट्रोजन की आपूर्ति लगभग 100–267 किलोग्राम तक हो जाती है जिसमें 50–70 प्रतिषत तक वायुमंडलीय नत्रजन स्थिरीकरण से तथा बाकी जैवभार से प्राप्त होता है इससे मृदा में नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटाश, सल्फर, कैल्शियम, मैगनीशियम, लवण, बेस सचुरेसन एवं गौण पोषक तत्वों की वृद्धि होती है। गन्ने में अन्तःफसल के रूप में हरी खाद को उगाने से 9–10 प्रतिशत तक पेड़ी की फसल में वृद्धि अर्जित हुई है।

● जैव उर्वरक

हरित क्रांति के अस्तित्व में आने के बाद, आधुनिक कृषि मुख्य रूप से अकार्बनिक उर्वरकों पर निर्भर होने लगी। खाद्यान की बढ़ती हुई मांग को पूरा करने के लिए सघन कृषि के साथ–साथ अकार्बनिक उर्वरकों के अत्यधिक प्रयोग का प्रचलन बढ़ने लगा। निरंतर अकार्बनिक उर्वरकों के अत्यधिक प्रयोग से प्राकृतिक संसाधनों पर दिन प्रतिदिन प्रतिकूल प्रभाव देखने को मिलने लगा है जिससे फसल उत्पादन में निरंतर कमी आ रही है। इसके साथ साथ दूसरे जीवों पर कुप्रभाव–पड़ता है जिनमें जीर्ण रोगों की वृद्धि एवं प्रसार में बढ़ोतरी होन लगी। इसको संतुलित करने के लिए जैविक खादों को अकार्बनिक उर्वरकों के साथ मिला कर प्रयोग करने से अकार्बनिक उर्वरकों की कुछ मात्रा को कम करके तथा मृदा में सूक्ष्य जीवों की संख्या एवं इनकी कार्य क्षमता को बढ़ाकर मृदा उर्वरता को संतुलित बनाये रखने में सहायता मिलती है।

जैविक उर्वरक क्रियाशील एवं प्रभावी सूक्ष्य जीवों जैसे जीवाणु, कवक, नील हरित शैवाल, अजोला, फर्न आदि के विभिन्न प्रभेदों से तैयार एक सजीव उर्वरक हैं। गन्ने में ये वायुमंडलीय नत्रजन का स्थिरीकरण, मृदा में उपस्थित अघुलनशील पदार्थों जैसे फोस्फोरस, जिंक, पोटाश, मैगनीज आदि तत्वों को घुलनशील बनाकर इनकी उपलब्धता बढ़ाते है। इसके अतिरिक्त, ये गन्ने के वृद्धि हार्मोन्स एवं विटामिन्स की उत्पादन गति को बढ़ाने में सक्षम होते हैं। मृदा जनित पौधों की बीमारी को रोकने या कम करने, मिट्टी समुच्चय (soil aggregates) की स्थिरता एवं कार्बनिक पदार्थों को अकार्बनिक पदार्थों में परिवर्तित करने में सहायक होते हैं। विभिन्न स्थानों में किए गये शोध से ज्ञात हुआ है कि जैविक विधि से गन्ने की खेती करने से रासायनिक की अपेक्षा लागत मूल्य में 15.4 प्रतिशत की कमी पाई गई। लागत मूल्य में कमी मुख्यतः, रसायनिक उर्वरकों सिंचाई, बीज एवं पौध संरक्षण पर होने वाले खर्च में बचत के कारण हुई।

● संतुलित उर्वरको का प्रयोग

किसी मृदा का स्वास्थ्य उसके भौतिक, रसायनिक एवं जैविक गुणों पर निर्भर करता है तथा प्रत्येक पोषक तत्व की आपूर्ति गन्ने में उसकी आवश्यकता तथा फसल की उपज के अनुसार होती है। संतुलित उर्वरकों के प्रयोग से गन्ने द्वारा पोषक तत्वों की मांग एवं आपूर्ति का अंतर कम से कम होना चाहिए जिससे मृदा संतुलित बनी रहे। उर्वरकों के असंतुलित प्रयोग से मृदा में पाये जाने वाले तत्वों का संतुलन भी बिगड़ जाता है जिससे एक तत्व दूसरे तत्वों की उपलब्धता में बाधक हो जाता है इस तरह से पौधों को मिलने वाले आवश्यक पोषक तत्व उनकी जरूरत के अनुसार प्राप्त नही हो पाते हैं जिसका सीधा प्रभाव फसल उत्पादन पर पड़ता है। यदि यह प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है तो पोषक तत्वों के दोहन का प्रभाव मृदा में पाये जाने वाले लाभदायक सूक्ष्म जीवाणुओं पर भी पड़ता है। ये सूक्ष्म जीवाणु मृदा में होने वाले जैव रसायनिक क्रियाओं के सुचारू रूप से संचालन में आवश्यक होते है जिस तरह से पौधों की वृद्धि एवं विकास के लिए पोषक तत्वो की जरूरत होती है उसी तरह से मृदा में सूक्ष्म जीवो की वृद्धि एवं विकास के लिए भी इनकी आवश्यकता पड़ती जो यदि समय से उपलब्ध नहीं होते तो मृदा स्वास्थ्य पर कुप्रभाव पड़ता है।

● मृदा परीक्षण एवं लक्ष्य निर्धारित उपज के अनुसार उर्वरकों का प्रयोग

आधुनिक समय में उर्वरकों का महत्वपूर्ण स्थान है। फसल उत्पादन में कुल लागत का करीब 15–20 प्रतिषत उर्वरकों पर खर्च होता है इसलिए वर्तमान समय में उर्वरकों की मांग एवं मूल्यों को ध्यान में रखते हुए यह नितांत आवश्यक है कि फसल बोने से पूर्व ही उर्वरकों की दी जाने वाली मात्रा का निर्धारण मृदा परीक्षण के आधार पर कर लिया जाए। मिट्टी का परीक्षण कराये बिना उर्वरक उपयोग करना न केवल धन का अपव्यय है वरन इससे अपेक्षित लाभ भी प्राप्त नही होता इसलिए इसे वैज्ञानिक खेती की पहली सीढ़ी कहा जाता है। मिट्टी परीक्षण करवाकर ही उर्वरकों का उपयोग करना किसान के हित में हैं।

मृदा परीक्षण से लाभ

1. मृदा में उपलब्ध पोषक तत्वों का सही–सही निर्धारण हो जाता है।
2. फसल की दृष्टि से पोषक तत्वों की कमी का पता करके किसान को स्पष्ट जानकारी प्राप्त हो जाती है।
3. मृदा में उपलब्ध पोषक तत्वों तथा लक्ष्य निर्धारित उपज के अनुसार संतुलित उर्वरकों की संस्तुति करने से गन्ने की

फसल का अधिक उत्पादन तथा वातावरण को सुरक्षित रख सकते हैं।

4. मृदा की विषिष्ट दशाओं को निर्धारण करके मृदा को विभिन्न कृषि तकनीको तथा मृदा सुधारको की सहायता से सुधारा जा सकता है।

मृदा स्वास्थ्य में सुधार के लिए उर्वरको का प्रयोग निर्धारित उपज लक्ष्य प्राप्त करने तथा मृदा में निहित पोषक तत्वों की क्षमता के अनुसार करना चाहिए जिससे मृदा में पोषक तत्वों का संतुलन समान रूप से बना रहता है। यदि किसी भी फसल की प्रति क्विंटल उपज प्राप्त करने के लिए पोषक तत्वों की आवश्यकता ज्ञात हो तो उस फसल के लिए पोषक तत्वो की आपूर्ति उसी के आधार पर करने से मृदा में पाये जाने वाले तत्वों पर अधिक भार नही पड़ता है। इस तरह से पौधों की मांग एवं आपूर्ति में संतुलन बना रहता है। इससे मृदा स्वास्थ्य भी अच्छा रहता है। मृदा परीक्षण से मृदा में निहित पोषक तत्वों की क्षमता ज्ञात कर, आवश्यकता के आधार पर उर्वरकों का प्रयोग करने से मृदा स्वास्थ्य में सकारात्मक प्रभाव देखेने में आया है। जैसा की हम जानते हैं कि गन्ना अत्याधिक पोषक तत्वों को ग्रहण करने वाली फसल है लेकिन उर्वरकों का प्रयोग आज भी पूर्व में निर्धारित की गयी मात्रा के आधार पर ही करते आ रहे हैं। अधिक उपज देने वाली प्रजातियों के आने से फसल उत्पादन में सकारात्मक वृद्धि हुई है लेकिन उर्वरकों की पुरानी संस्तुत मात्रा का नवीनी करण नही किया गया है। गन्ने की उर्वरको की संस्तुत मात्रा बहु स्थानीय अनुसंधान के आधार पर पूरे क्षेत्र को दी जाती थी। पहले यह समझा जाता था कि पूरे क्षेत्र की मृदा तथा उसमें पाये जाने वाले भौतिक, रसायानिक एवं जैविक गुण एक समान होंगे लेकिन मृदा परीक्षण एवं फसल प्रतिक्रिया सहसंबंध के अध्ययन से ज्ञात हुआ कि मृदा के विभिन्न गुणों में प्रत्येक स्थान पर परिवर्तन पाये गये जिसके कारण उर्वरको की संतुति भी पूरे क्षेत्र में एक समान नही हो सकती। यही कारण है की लम्बे अंतराल तक उर्वरकों के असंतुलित प्रयोग से मृदा स्वास्थ्य पर बहुत नकारात्मक प्रभाव पड़ा है।

मृदा परीक्षण से मृदा की वास्तविक पोषक तत्व आपूर्ति क्षमता को ज्ञात कर सकते हैं तथा उर्वरकों को संतुलित मात्रा में प्रयोग करके न केवल उर्वरकों के अत्याधिक प्रयोग को रोक सकते हैं वरन उससे किसानों की लागत को कम कर सकते हैं साथ ही मृदा की सतह तथा उपसतह पर होने वाले प्रदूषण से भी बचा जा सकता है। अधिक उर्वरकों के प्रयोग से अन्तःस्तरीय जल श्रोतों में भारी प्रदूषण का खतरा बना रहता है। जो वातावरण व मानव जीवन के अस्तित्व के लिए खतरा हो सकता है। मृदा परीक्षण एवं फसल प्रतिक्रिया सहसंबंध के अध्ययन के अनुसार राजेंद्र कृषि विश्वविद्यालय, पूसा बिहार ने जलोढ़ मृदा के लिए लक्ष्य निर्धारित $FN = 0.261\,T - 0.29SN$, $FP_2O_5 = 0.120\,T - 1.50\,SP_2O_5$ एवं $FK_2O = 0.108T - 0.195\,SK_2O$ समीकरण का विकास किया है जो पूरे उत्तर भारत में गन्ने की उर्वरकों के उपयोग के लिए प्रयोग कर सकते हैं। इसी तरह से महात्मा फुले कृषि विद्यापीठ, राहुरी, महाराष्ट्र ने काली मिट्टी में गन्ना उत्पादन के लिए आवष्यक उर्वरकों को मृदा परीक्षण एवं लक्ष्य निर्धारित उपज के आधार पर $FN = 4.39\,T - 1.56\,SN$, $FP_2O_5 = 1.62\,T - 4.46SP$ एवं $FK_2O = 1.86\,T - 0.37\,SK$ समीकरण का विकास किया है जिसके आधार पर काली मिट्टी में गन्ना उत्पादन के लिए उपयुक्त उर्वरकों का प्रयोग कर सकते हैं।

● समेकित पोषक तत्व प्रवंधन

गन्ने का टिकाऊ उत्पादन तथा मृदा स्वास्थ्य को बढ़ाने के लिए एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन एक महत्व पूर्ण विकल्प के रूप में सामने आया है। इससे गन्ने की पोषक तत्वों की आवश्यकता संतुलित पूर्ण मात्रा मे प्रदान करने से पूर्ति हो जाती है तथा आवश्यक तत्वों का दोहन अधिक नहीं हो पाता है जिससे मृदा में पोषक तत्वो का संतुलन कायम रहता है। साथ ही मृदा मे सूक्ष्म जीवों का भी संतुलन बना रहता है। कार्बनिक खादों के प्रयोग से सूक्ष्म जीवों की वृद्धि एवं विकाश सामान्य तरीके से होता है तथा इनकी सक्रियता से मृदा मे होने वाली जैव–रसायनिक तथा मृदा एंजाइमस का निर्माण एंव संतुलन सामान्य बना रहता है जो आवश्यक पोषक तत्वों के परिवर्तन, अवशोषण, विस्तार एवं आपूर्ति में या तो सहायक होते हैं अथवा उनकी गति बढ़ा देते हैं। मृदा में कार्बनिक खादों के प्रयोग से इनकी भौतिक, रसायनिक एवं जैविक गुणों का विकास होता है जिससे मृदा की संरचना, उसके कणों का स्थायित्व, वायु संचार, जल धारण क्षमता एवं पोषक तत्वो की उपलब्धता संतुलित रूप से सुनिश्चित होती है।

समेकित पोषक तत्व प्रवंधन के लाभ

1. मृदा में उपलब्ध अथवा दिये गये आवश्यक पोषक तत्वों की मात्रा के आधार पर पोषक तत्वों की आपूर्ति व्यवस्थ्ति करते हैं।
2. फसलों के लिए संतुलित पोषण को प्रदान करते हैं तथा छिपी हुये पोषक तत्वो की कमियों और पोषक तत्व के असंतुलन से उत्पन्न विरोधी प्रभाव को कम करता है।
3. मिट्टी की भौतिक, रसायनिक और जैविक क्रियाओं को प्रोत्साहित तथा टिकाऊ बनाने में सहायता करता है।
4. कार्बन सेकुस्टरेसन में वृद्धि तथा आवश्यक पोषक तत्वों के ह्रास को कम कर सकते हैं।

ज्ञान–विज्ञान प्रभाग

ऊसर भूमि को उपजाऊ बनाया जा सकता है

मनीष कुमार बिसेन एवं डी. एस. श्रीवास्तव
कृषि विज्ञान केन्द्र–II, सीतापुर

ऊसर, वह भूमि कहलाती है, जिसमें कुछ भी पैदा नहीं होता। भूमि में ऊसरीलापन मिट्टी में लवणता या क्षारीयता अथवा दोनों की ही अधिकता के कारण होता है।

ऊसर भूमि तीन प्रकार की होती है–

- **लवणीय मृदा**

इस प्रकार की मृदा में घुलनशील लवणों की अधिकता होती है।

पहचान– स्थानीय भाषा में इस मृदा को रेह, रेहटा या नमकीन मृदा (सेलाइन स्वाइल) कहते है। ऐसी मृदा में भूमि की सतह पर उभरे, फूले, सफेद, सिलेटी रंग के लवण दिखाई देते है जो कि समूहों व टुकड़ों में मिलते है। ऐसी भूमि पर चलने पर अच्छा लगता है। लवणीय भूमि की सतह की मृदा एवं उसके नीचे की मृदा कड़ी एवं कम्पैक्ट नहीं होती है।

- **लवणीय–क्षारीय मृदा**

इस प्रकार की मृदा में घुलनशील सोडियम की अधिकता के साथ–साथ विनिमयशील सोडियम की भी अधिकता होती है।

पहचान– साधारण भाषा में इस मृदा को ऊसर, रेह कहते है। इस मृदा में लवणीय–क्षारीय भूमि के मिले जुले गुण रहते है। भूमि की ऊपरी सतह भूरे रंग की होती है जिस पर रेह या सफेद लवण प्रचुर मात्रा में रहते है तथा नीचे की सतह क्षारीय भूमि की भांति सख्त होती है। इस भूमि में नीचे कंकड़ भी मिलता है। ऐसी मृदाओं में टुकड़ों में कहीं–कहीं पर सतह पर लवण व कहीं–कहीं पर ऊसर घास भी दिखाई देती है।

- क्षारीय मृदा

क्षारीय मृदा देखने में काली या स्लेटी रंग की होती है। प्रदेश में पायी जाने वाले क्षारीय मृदा में विनियमशील सोडियम की अधिकता होती हे तथा इसका सुधार मृदा सुधारक यथा जिप्सम, पायराइट आदि के उपयोग के बिना संभव नहीं होता है।

पहचान– इस मृदा को स्थानीय भाषा में ऊसर, बजर, कल्लर या एल्कली स्वाइल कहते है। भूमि पर काले भूरे रंग के अवशेष पदार्थ धब्बों के रूप में दिखाई देते है। ऐसी भूमि की सतह सीमेंट की भांति बहुत कड़ी और कम्पैक्ट होती है। भूमि की भौतिक दशा बहुत खराब होती है जिससे गड्ढ़ों में पानी बहुत दिनों तक भरा रहता है।

ऊसर बनने के कारण–

- वर्षा अधिक किन्तु जल निकासी की समुचित व्यवस्था न होना।
- भूमिगत जल स्तर ऊँचा होना।
- नहरी क्षेत्रों में जल रिसाव का होना।
- भूमि को अधिक समय से परती छोडना।
- कम वर्षा एवं तापमान का अधिक होना।

ऊसर भूमि को सुधारने के लिए निम्नलिखित कदम उठाये जाते हैं :–

- मेड़बन्दी– ऊसर सुधार के लिए ऊसरीले खेतों में ऊँची और मजबूत मेड़ बनाने का कार्य सितम्बर–अक्टूबर तक अवश्य पूर्ण कर लेना चाहिए। (मेंड का आधार 90 सेमी. ऊँचाई 30 सेमी., टाप 30 सेमी. तथा सेक्शन एरिया 0.18 वर्ग मी. होना चाहिए)
- स्क्रेपिंग– जिन खेतों में लवण की सफेद चादर सी दिखाई देती है उन खेतों में मृदा की ऊपरी परत को फावड़ा की सहायता से खुरचकर इकट्ठा कर उसे किसी गहरे गड्ढे में दबा देते हैं अथवा बड़े नाले के द्वारा बहते हुए पानी में गिरा देते हैं।
- सब प्लाटिंग– अच्छे ऊसर सुधार हेतु खेत को छोटे–छोटे टुकड़ों में (लगभग 18–20 डेसीबल) बनायें।
- जुताई/समतलीकरण– ऊसर खेतों का सुधार तभी संभव है जब खेत ठीक से समतल किया गया हो। इसके लिए सूक्ष्म समतलीकरण करने हेतु लेजर लेवलर के द्वारा समतलीकरण किया जाय जिसे कृषि विभाग के उप कृषि निदेशक से सम्पक्र कर उपयोग में लाया जा सकता है।
- खेत नाली (लिंक ड्रेन)– सभी ऊसरीले खेतों में भूमि के ढाल के अनुसार निचली तरफ या दो खेतों के बीच की मेड़ को फाड़कर फील्ड ड्रेन तैयार की जाती हे जिसका दूसरा सिरा सम्पक्र नाली (लिंक ड्रेन) से जोड़ा जाता है। (आकार– मुंहफाड़ 90 सेमी. गहराई 30 सेमी., तली 30 सेमी. तथा सेक्शन एरिया 0. 18 वर्ग मी.)
- जल उपयोग समूहों से निकली खेत नालियों (फील्ड ड्रेन) को सम्पक्र नाली में गिराया जाता हे। सम्पक्र नाली का

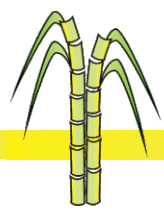

एक सिरा मुख्य नाले में गिरता है। आकार–मुंहफाड़ 165 सेमी. गहराई 60 सेमी. तली 45 सेमी. तथा सेक्शन एरिया 0.63 वर्ग मी. (100 हे. हेतु)।

- **मुख्य नाला**

ऊसरीले खेतों से लवणीय पानी खेत नाली के द्वारा लिंक ड्रेन में तथा लिंक ड्रेन को मुख्य नाला से जोड़ा जाता है। मुख्य नाला पूरे ऊसर क्षेत्र के लवणीय पानी को नदी में ले जाता है। इसकी खुदाई एवं सफाई का कार्य सिंचाई विभाग द्वारा कराया जाता है।

- **बोरिंग**

प्रत्येक जल उपयोग समूह के 4 हे. क्षेत्र में सिंचाई की सुनिश्चित व्यवस्था हेतु बोरिंग के अभाव में समूह के सबसे ऊंचे खेत में बोरिंग।

- **नलकूप व्यवस्था**

पम्पसेट की व्यवस्था बोरिंग धारक को स्वयं अपने संसाधनों द्वारा समूह के सामूहिक सहयोग से किया जाता है।

- **सिंचाई नाली**

आकार–मुंहफाड़ 120 सेमी. गहराई 30 सेमी. तली 30 सेमी. तथा सेक्शन एरिया 0.225 वर्ग मी.।

- **फ्लैशिंग**

लवणीय मृदा से फ्री साल्ट को पानी में घोलकर निकालने हेतु ऊसरीले खेतों में 15 सेमी. ऊंचा 48 घण्टे हेतु पानी भरते है जिसमें घुलशील लवण पानी में घुल जाते है जिसे जल निकास नाली द्वारा बाहर निकाल दिया जाता है। इस सम्पूर्ण क्रिया को फ्लैशिंग कहा जाता है। यह क्रिया सदैव जिप्सम मिक्सिंग से पूर्ण की जाती है।

- **जिप्सम मिक्सिंग**

फ्लैशिंग के उपरांत ओट आने पर भूमि की श्रेणी के अनुसार प्राप्त करायी गयी जिप्सम के बैग को समान–समान दूरी पर खोलते है। तत्पश्चात् हाथ से पूरे खेत में एक समान जिप्सम बिखेर कर कल्टीवेटर द्वारा हल्की जुताई (3–5 सेमी.) करते हैं एवं पाटा नहीं लगाते है। जिप्सम मिक्सिंग का उपयुक्त समय जून माह होता है।

- **लीचिंग**

जिप्सम मिक्सिंग के उपरांत (15 जून से 30 जून के मध्य) खेतों में 15 सेमी. ऊंचा पानी भरते है जिसे 10–12 दिन बाद जल निकास नाली के द्वारा निकाल देते हैं। यदि बीच में पानी सूख जाता है तो उसमें पुनः बोरिंग द्वारा पानी भर जाता है।

नोट– ऊसरीले खेतों में जीवांश खाद कार्बनिक खादों का लगातार प्रयोग करने से भी लवणीय मृदा का सुधार होता है।

- **नर्सरी की तैयारी**

निगम द्वारा ऊसर भूमि हेतु खरीफ निवेश (धान, डी.ए.पी. यूरिया एवं जिंक सल्फेट) को 15 मई के बाद उपजाऊ जमीन में जहां पर सिंचाई का अच्छा साधन हो, वहां पर 60 किग्रा. प्रति हे. की दर से बीज का प्रयोग करते है। रोपाई के क्षेत्र के 1/10 हिस्से में धान की नर्सरी डाली जाती है।

- **रोपाई**

जब धान की नर्सरी 35 दिन की हो जाय तो उसकी रोपाई लीचिंग के उपरांत बोरिंग से अच्छा पानी भरकर एक वर्ग मी. में 65–70 स्थान पर 4–5 पौधों की रोपाई 25 जून से 10 जुलाई के बीच सम्पन्न कर लेते है।

- **धान फसल की देखभाल**

रोपाई के एक सप्ताह बाद खेत से पानी निकाल दें। कुछ सूखने के बाद यदि वर्षा न हो तो धान की सिंचाई करें। पानी भरे रहने के कारण ऊसरीली मृदा में लवण की अधिकता से हरी काई का प्रकोप होता है। इसके लिए खुली धूप में 0.2–0.3 प्रतिशत कापर सलफेट (तूतिया) का घोल बनाकर छिडकाव करें अथवा सूखी झाड़ी से काई को तोड़कर जल निकास नाली से बाहर बहा दें। धान की फसल हेतु दी जाने वाली यूरिया की मात्रा को बराबर–बराबर चार भागों में बांटकर पहला भाग रोपाई के 13–15 दिन, दूसरा भाग 27–30 दिन, तीसरा भाग 45–50 दिन तथा चौथा भाग बालियां निकलते समय (65–70) दिन पर प्रयोग किया जाय।

- **धान की कटाई**

जब धान की बालियां पीली पड़कर नीचे की तरफ झुकने लगे तो ऐसी दशा में धान की कटाई जमीन की सतह से 6 इंच ऊपर से करते है।

- **गेहूं के खेत की तैयारी करना**

धान के ठूठो को सड़ाने के लिए नमी की अवस्था में 40 किग्रा. यूरिया प्रति हे. बुरकाव कर हैरोकल्टीवेटर द्वारा जुताई कर पाटा चला देते है। एक सप्ताह के बाद कल्टीवेटर से जुताई कर खेत की तैयारी कर लेते है। जिन क्षेत्रों में धान की कटाई विलम्ब से हो वहां पर सीधे जीरोटिल फर्टीसीड ड्रिल से बुवाई करें।

- **गेहूं की देखभाल**

यदि बीज पहले से शोधित नहीं है तो बोने से पूर्व बीज को कार्बान्डाजिम अथवा कार्बाक्सिन रसायन 2.5 ग्राम प्रति किग्रा. बीज (100 किग्रा. में 250 ग्राम दवा) की दर से शोधित कर बोवाई करें। बुवाई के समय बेसल के रूप में

96 किग्रा. यूरिया, 87 किग्रा. डी.ए.पी. , 33 किग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश तथा 25 किग्रा. जिंक सल्फट प्रति हे. खेत की तैयारी के समय जमीन में मिला देते है तथा जिंक सल्फेट को डी.ए.पी. उर्वरक के साथ मिश्रण कर प्रयोग नहीं करते है। यूरिया की शेष मात्रा को दो भागों में बांटकर प्रथम पहली सिंचाई 28 दिन के बाद ताजमूल अवस्था पर करने के पश्चात ओट पर 65 किग्रा. तथा तीसरी सिंचाई के बाद 60–65 दिन पर गांठ बनने की अवस्थ पर ओट आने पर 65 किग्रा. यूरिया की टाप ड्रेसिंग करते है। गेहूं में सिंचाई, पहली ताजमूल अवस्था में बुवाई के 28 दिन बाद, दूसरी कल्ले फूटते समय बुवाई के 40–45 दिन बाद, तीसरी गांठ बनने पर 60–65 दिन बाद, चौथी बाली निकलते समय बुवाई के 80–85 दिन बाद, पांचवी दूधिया अवस्था में बुवाई के 100–105 दिन तथा छठी दाना पकने पर 115–120 दिन पर सिंचाई करते हैं। यदि मात्र तीन ही सिंचाई उपलब्ध है तो पहली ताजमूल बुवाई के 28 दिन बाद, दूसरी गांठ बनने पर बुवाई के 60–65 दिन बाद, तीसरी दूधिया अवस्था में बुवाई के 100–105 दिन बाद करनी चाहिए। ऊसरीले क्षेत्रों में सिंचाई हल्की करनी चाहिए।

- **गेहूं की कटाई**

मड़ाई एवं भण्डारण– फसल की बालियां पक जाने पर फसल को तुरन्त काट लेना चाहिए। कटाई के बाद पावर थ्रेशर द्वारा मड़ाई करके अनाज को अलग कर लेना चाहिए। अनाज को सुखाने के उपरांत धातु की बनी बखालियों में भण्डारण करना चाहिए।

- **हरी खाद ढैंचा**

अच्छे ऊसर सुधार के लिए ढैंचा की हरी खाद बहुत उपयोगी होती है। हरी खाद के लिए ढैंचा एक सर्वोत्तम फसल है। ऊसर में ढैंचा की आसानी से हरी खाद तैयार की जाती है। एक हे. के लिए 60 किग्रा. बीज की आवश्यकता पड़ती है जिसे 24 घण्टे पानी में भिगोकर उसे जिप्सम से उपचारित कर बुवाई करने से अंकुरण अच्छा होता है। इसमें प्रत्येक 10–15 दिन के अंतराल पर सिंचाई करते हुए 45 दिन पर जब फसल 1.5 से 2.0 फुट लम्बी हो जाय तो नमी की दशा में पावर डिस्क हैरो के द्वारा पलटाई कर देते है (आवश्यकता पडने पर 40 किग्रा. हे. यूरिया का छिड़काव भी किया जा सकता है जिसे अगली फसल में दी जाने वाली यूरिया की मात्रा से कम कर देना चाहिए) ढैंचा की फसल से जीवांश पदार्थ के साथ लगभग एक बोरी यूरिया के बराबर नत्रजन की जमीन में बढोत्तरी होती है जो कि जमीन में संरक्षित रहती है। इस प्रकार की प्रक्रिया अपनाने से ऊसर भूमि धीरे–धीरे उपजाऊ हो जाती है।

ऊसर भूमि के सुधर जाने के बाद कुछ बातों का विशेष ध्यान रखें ताकि भूमि फिर से ऊसर न होने पाये।

- सुधारे गये क्षेत्र को कभी खाली न छोड़े।
- जैविक खाद जैसे गोबर की सड़ी खाद, कम्पोस्ट, हरी खादों का अधिकाधिक प्रयोग करें।
- सिंचाई हल्की करें।
- नहरी सिंचाई से बचें।
- जल निकास का विशेष ध्यान रखें।

ऊसर भूमि को उपजाऊ बना कर फसल लेने हेतु ऊसर सुधार की जैविक विधि अपनायें इसमें धान का पुवाल, गोबर की खाद, वर्मी कंपोस्ट का उपयोग करें इससे ऊसर भूमि में उर्वरा शक्ति पैदा होती है और फसल की बुआई कर कृषक उत्पादन का लाभ ले सकते हैं। ऊसर भूमि वह भूमि होती है, जिसका पी.एच. 8.5 से अधिक होता है। विनिमयशील सोडियम की मात्रा 15 प्रतिशत से ज्यादा होती है। परन्तु कभी–कभी ई.सी. भी 4. डेसी सायमन/मीटर से अधिक होती है। ऐसी भूमियों में गर्मियों के दिनों में ऊपरी सतह पर सफेद पर्त बन जाती है, जो मुख्यतः सोडियम के कार्बोनेट तथा बाईकार्बोनेट लवण होते है। इनके कारण भूमि की भौतिक दशा खराब हो जाती है। जिससे भूमि में सूक्ष्म जीवों के लिए उपयुक्त वातावरण नहीं मिलता है। ऊसर सुधार वर्षा आने से पहले शुरू करें।

लाल पियर जब होइ अकास।
तब नाहीं बरखा की आस।।

जब आकाश लाल–पीला होने लगता है, तब वर्षा की आशा नहीं रह जाती।

मृदा में उर्वरकों के सक्षम उपयोग के उपाय

राज कुमार सिंह[1], विनोद कुमार[2], विनय कुमार सिंह[2] एवं रविन्द्र कुमार राजपूत[3]

[1]कृषि विज्ञान केन्द्र, हजारीबाग, [2]भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ, [3]कृषि विज्ञान केन्द्र, दुवासू, मथुरा

कृषि उत्पादन को प्रभावित करने वाले अनेक कारकों में उर्वरक सबसे महंगा एवं सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारक है। इस तथ्य से अब भारत का साधारण किसान भी पूर्णतया परिचित हो गया है, जिसके फल स्वरूप उर्वरकों की खपत में अभूतपूर्ण बढ़ोतरी हुई है। देश में मिट्टी परीक्षण प्रयोगशालाओं के खुलने के बाद मिट्टी की उर्वरा शक्ति के विषय में सही जानकारी मिलने के फलस्वरूप पता चला कि हमारे देश की मिट्टी में नत्रजन, फास्फोरस, पोटाश के साथ अन्य तत्वों की भी कमी है।

मिट्टी परीक्षण के परिणामों से यह भी स्पष्ट हुआ है कि उत्पादन में कमी का मुख्य कारण आवश्यक पोषक तत्वों की कमी न होना ही नहीं है क्योंकि उर्वरकों का प्रयोग सर्वथा असंतुलित ढंग से किया जाता रहा है। अधिक उपज देने वाली किस्मों के प्रचलन के बाद उर्वरक प्रयोग का पौष्टिक महत्व प्रकाश में आया। परिणाम स्वरूप उर्वरकों की खपत में दिनोदिन वृद्धि हुई। इस वृद्धि के बावजूद भी यह सत्य है कि अन्य देशों की तुलना में हमारे देश में उर्वरकों की खपत कम है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद की विभिन्न समन्वित योजनाओं के अन्तर्गत किये गये प्रयोगों से पता चला है कि अच्छे कृषि प्रबन्ध की दशा में प्रति किलोग्राम प्रयुक्त पोषक तत्वों द्वारा दाने की उपज में 15 से 40 किला ग्राम वृद्धि होती है जबकि देश के विभिन्न राज्यों में यह काफी कम है। अतः स्पष्ट है कि हमारे देश में उर्वरकों की क्षमता में वृद्धि की संभावनायें बहुत अधिक है। उर्वरकों की क्षमता को प्रभावित करने वाले अनेक कारक हैं, इसमें मिट्टी की किस्म और उसकी उर्वरता, फसल एवं किस्म, नर्सरी व खेत की तैयारी, बीज की दर, बुआई की विधि और समय, उर्वरकों का स्वाभाव और उनके प्रयोग की विधि, वर्षा व सिंचाई, असिंचित क्षेत्रों में नमी का संचय और उर्वरक प्रयोग की विधि और खपतवार, कीट तथा बीमारियों का नियंत्रण प्रमुख है। उर्वरकों की क्षमता को प्रभावित करने वाले कारकों को निम्नलिखित छह प्रमुख वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

1. फसल किस्में एवं उर्वरक क्षमता।
2. मिट्टी का प्रकार एवं उर्वरता {भूमि प्रबंधन एवं उर्वरक क्षमता}
3. जल प्रबंधन
4. सस्य क्रियायें
5. पोषक तत्वों के समन्वित प्रबंधन का उर्वरक क्षमता पर प्रभाव
6. फसल प्रणाली के अनुसार उर्वरक प्रयोग

फसल किस्में एवं उर्वरक क्षमता

विभिन्न फसलों की उर्वरक आवश्यकता भिन्न–भिन्न होती है। फसलों द्वारा अवशोषित पोषक तत्वों की मात्रा और प्राप्त होने वाली उपज में सीधा संबंध होता है। पौधों द्वारा पोषक–तत्वों का अवशोषण जड़ों के विकास पर निर्भर करता है। पौधों की जिन किस्मों के पौधों का जड़ संस्थान विशेष विस्तृत होता है, वे भूमि से पोषक तत्वों का अधिकाधिक करते हैं। इसके विपरीत जिन पौधों का जड़ संस्थान अपेक्षाकृत कम विकसित होता है वे भूमि में मौजूद पोषक तत्वों का अवशोषण उतनी सफलता पूर्वक नहीं कर पाते। जड़ों की धनायन विनिमय क्षमता और फसलों द्वारा अवशोषित पोषक तत्वों की मात्रा में एक सीधा संबंध देखा गया है। उदाहरण के लिये दो दाल वाली फसलों के जड़ों की धनायन विनिमय क्षमता एक दाल वाली फसलों की अपेक्षा बहुत अधिक होती है। गेंहू की बौनी किस्मों के पौधों की जड़ों की धनायन विनिमय क्षमता अपेक्षाकृत अधिक होती है। अतः पोषक तत्वों के सक्षम उपयोग हेतु अधिक उपज देने वाली किस्में उगानी चाहिए।

भूमि प्रबंधन एवं उर्वरक क्षमता

उर्वरकों के प्रयोग द्वारा अपेक्षित उपज प्राप्त करना मिट्टी की किस्म एवं उर्वरता पर आधारित है। विभिन्न प्रकार की मिट्टियों में पोषक तत्वों का प्रभाव फसलों एवं उसकी उपज पर देखा जा सकता है।

पोषक तत्वों के अभाव का चित्र

मिट्टी के उर्वरता स्तर और तत्व विशेष के प्रयोग से प्राप्त उपज वृद्धि में सीधा सबंध पाया गया है। उर्वरता स्तर समान होने के बावजूद मिट्टी की किस्म के अनुसार उर्वरकों की आवश्यक मात्रा भिन्न–भिन्न होता है। हल्की बनावट वाली मिट्टियों की उर्वरक आवश्यकता जलोढ़ मृदाओं की अपेक्षा कम होती है।

हल्के गठन वाली मिट्टियों में प्रयुक्त सिंचाई जल बहुत तेजी से भूमि में नीचे चला जाता है, जिनका उपयोग पौधे नहीं कर पाते हैं। पोषक तत्वों के निक्षालन के फलस्वरूप प्रदूषण की समस्या भी उत्पन्न हो जाती है। अतः इन समस्याग्रस्त मिट्टियों में नत्रजन की क्षमता बढ़ाना नितान्त महत्वपूर्ण है। परीक्षणों से पता चला है कि हल्के गठन वाली बलुई मिट्टी को नम

करके उस पर भारी रोलर चलाने से मिट्टी का आभासी घनत्व बढ़ जाता है जिससे जल एवं उर्वरक की हानि कम होती है। प्रयोगों से सिद्ध हुआ है कि इस तकनीकी के उपयोग से गेंहू व बाजरा की उपज में क्रमशः 35 एवं 40 प्रतिशत वृद्धि देखी गई है। केन्द्रिय मरूक्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर ने अवभूमि में अवरोधकों जैसे तालाब की सिल्ट, वैटोनाइट तथा डोलोमाइट इमल्शन का इस्तेमाल करके पोषक तत्वों की क्षमता वृद्धि एवं जल की हानि रोकने में किया है।

अम्लीय भूमि में उर्वरक क्षमता प्रबंधन

अम्लीय भूमि में कैल्शियम, मैग्नीशियम और मोलीब्डेनम की प्रायः कमी पायी जाती है ऐसी भूमि में चूना पत्थर, डोलामाइट, पेपर मिल स्लज, झौंका भट्टी स्लेंग और बेसिक स्लेंग जैसे औद्योगिक उत्पादो का सुधारकों के रूप में इस्तेमाल करके उर्वरकों की क्षमता में वृद्धि किया जा सकता है।

लवणीय–क्षारीय भूमि में उर्वरक क्षमता

लवणीय–क्षारीय भूमि में सामान्य की तुलना में पोषक तत्वों की विशेष कमी पायी जाती है। गेंहू व धान की अधिक उपज देने वाली किस्मों में नत्रजन की आवश्यकता 20% अधिक होती है। परीक्षणों से स्पष्ट हुआ है कि अमोनियम सल्फेट उर्वरक की क्षमता, कैल्सियम अमोनियम नाइट्रेट एवं यूरिया जैसे अन्य नाइट्रोजन धारी उर्वरकों की अपेक्षा अधिक होती है।

जल प्रबंधन एवं उर्वरक क्षमता

पौधे भूमि से पोषक तत्वों का अवशोषण विलय (तरल) न के रूप में करते हैं। अतः पौधों द्वारा पोषक तत्वों के समुचित मात्रा में अवशोषण के लिये भूमि में उचित मात्रा में नमी का होना नितान्त आवश्यक होता है। भूमि में नमी की मात्रा कम होने पर पोषक तत्वों का अवशोषण कम हो जाता है।

आमतौर पर जल प्रबंधन से सबंधित चार परिस्थितियॉ अर्थात् असिंचित वर्षा पर आश्रित दशा, सिंचाई की कमी की दशा, उचित एवं निश्चित जलापूर्ति की दशा एवं आवश्यकता से अधिक जल की उपलब्धता या निबंधित जल निकास की दशा पायी जाती है।

असिंचित दशा

असिंचित दशा में खेती करने हेतु नमी का संचयन महत्वपूर्ण ही नहीं अनिवार्य होता है। नमी संचयन के लिये ग्रीष्मकालीन जुताई खेत की मेड़ बन्दी और खेत को खाली न छोड़ना आवश्यक होता है। ज्ञात हो असिंचित दशा में फसल की जल आवश्यकता की पूर्ति संचयित जल तथा वर्षा जल द्वारा होती है। गठन के अनुसार भारी गठन वाली मिट्टी की जल संचयन क्षमता हल्के गठन वाली बलुई या बलुई दोमट मिट्टियों की अपेक्षा अधिक होती है।

भारी गठन वाली अर्थात् अच्छी नमी संचयन वाली मिट्टी में उर्वरक नत्रजन के प्रयोग से उपज में अपेक्षाकृत अधिक वृद्धि होती है। साथ ही यह भी स्पष्ट है कि इन मिट्टियों में अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में नाइट्रोजन का इस्तेमाल किया जा सकता है। मिट्टी के गठन और उसमें संचयित जल की मात्रा के आधार पर ही इस बात का सही निश्चय किया जा सकता है कि साल भर में एक या दो फसलें उगायी जाये।

आमतौर पर ऐसी धारणा है कि उर्वरकों का इस्तेमाल करने पर ज्यादा पानी की जरूरत पड़ती है। परन्तु परीक्षणों के आधार पर यह धारणा गलत साबित होती है। उर्वरकों के प्रयोग से फसल की जल आवश्यकता नहीं बढ़ती, बल्कि जल की कुशलता बढ़ जाती है। उर्वरकों के प्रयोग से पौधों की जड़ों का विकास अच्छी तरह होता है, जिससे पौधे उपलब्ध नमी का उपयोग अधिक कुशलता से करते हैं। अतः कहा जा सकता है कि उर्वरक और जल एक दूसरे के पूरक है। एक की क्षमता में वृद्धि होने पर दूसरे की क्षमता स्वतः बढ़ जाती है।

सीमित सिंचाई जल की दशा

सिंचाई जल के अभाव में अधिकतम उर्वरक क्षमता के लिये यह आवश्यक है कि जो भी सिंचाई उपलब्ध हो उसे ऐसे समय पर इस्तेमाल किया जाय, जब नमी के अभाव में फसल के विकास पर विशेष कुप्रभाव पड़ता है। यह विभिन्न फसलों में वृद्धि काल की विभिन्न अवस्था होती है। जिसका विवरण तालिका–1 में दिया गया है।

4. सस्य क्रियाएँ एवं उर्वरक क्षमता :

उपर्युक्त सस्य क्रियाओं को अपनाने के बाद ही किसी फसल की किस्म विशेष से अधिकतम उपज प्राप्त की जा सकती है। आजकल फसलों की अधिक उपज देने वाली किस्मों से अधिकतम उपज प्राप्त करने के लिये उर्वरक एक अत्यन्त आवश्यक निवेश माना जाता है, परन्तु यह भी सत्य है कि उपर्युक्त सस्य क्रियाओं को अपनाने के बाद ही इनके इस्तेमाल से पर्याप्त लाभ प्राप्त हो सकता है। सस्य क्रियाओं से तात्पर्य समय पर सही ढंग से बुआई, उचित समय पर सही ढ्रंग से उर्वरकों का प्रयोग, जल प्रबंधन, खरपतवार नियंत्रण, कीट ब्यादि से पौधों की सुरक्षा आदि से है।

बुआई का समय

उर्वरक प्रयोग से पूरा लाभ उठाने के लिये आवश्यक होता है कि फसल की बुआई उचित समय पर की जाय। जब फसलों की बुआई समय पर नहीं हो पाती है ऐसी दशा में न केवल उपज में कमी आती है अपितु उर्वरकों की कुशलता भी काफी कम हो जाती है। ऐसा देखा गया है कि मार्च के अन्त या अप्रैल के प्रारंभ में तापक्रम बढ़ने के साथ देर से बोई गई गेंहू की फसल समय पर बोई गई फसल के साथ ही पकने लगती है इस प्रकार फसल

तालिका 1 : सिंचाई की उपलब्धता के आधार पर फसल की अवस्था जिस पर सिंचाई लाभ दायक होता है।

फसल	उपलब्ध सिंचाई		
	1 सिंचाई	2 सिंचाई	3 सिंचाई
धान	पैनिकल निकलने पर	फल अवस्था में	
गेंहू	शिखर जड़े बनते समय	फल आते समय	दूध बनने की अवस्था में
मक्का	सिल्किंग के समय	टैसलिंग के समय	
मूंगफली	तीव्र फूल के समय	पैगिंग अवस्था मे	फली बनने की पहली अवस्था
अरहर	फूल बनते समय	फली बनते समय	
उरद	फूल बनते समय	फली बनते समय	
सूरजमुखी	फूल आने से दो सप्ताह पहले	फूल आने के दो सप्ताह बाद	
कपास	फूल आने समय	वॉल बनते समय	
मिर्च	फूल आते समय	–	–
आलू	कन्द बनने से कन्द के प्रौढ़ होने तक		
प्याज	वल्ब बनने से प्रौढ़ अवस्था तक		
मटर	फूल बनते समय	फली बनते समय	
गाजर	जड़ों की बढ़वार के समय		
नींबू	फल बनने से बड़े होने तक		

का जीवनकाल कम हो जाता है। परिणाम स्वरूप पोषक तत्वों का अवशोषण सही ढंग से नही हो पाता है। प्रयोगों से पता चला है कि उचित समय पर बुआई करने पर फसल की नत्रजन उपयोग क्षमता देर से बुआई करने की तुलना में हमेशा अधिक रहती है। प्रयोग परिणामों से पता चलता है कि देर से बोई गई फसल की प्रतिशत नत्रजन क्षमता प्रति हैक्टेयर 90 किलो ग्राम से अधिक नत्रजन देने पर घटने लगती है किन्तु समय से बोई गई फसल में नत्रजन उपयोग क्षमता में 120 किला ग्राम तक वृद्धि देखी जाती है।

अनुसंधान परिणामों से पता चलता है कि देर से गेंहू की बुआई की दशा में बीज की मात्रा बढ़ाने, बीज को रात भर भिंगोकर बोने, गोबर कूड़े की खाद को छायावरण के रूपमें प्रयोग करने तथा फास्फोरस की मात्रा डयोढी कर देने से फसल की उत्पदन क्षमता एवं अन्य पोषक तत्वों को उपभोग की क्षमता में आशातीत वृद्धि होती है।

उर्वरकों के प्रयोग का समय एवं विधि

नाइट्रोजन

ऐसे उर्वरकों के कुशल उपयोग के लिये आवश्यक है कि उनको उचित मात्रा में सही समय पर सही ढंग ये इस्तेमाल किया जाय। अधिकांश फसलों में खासकर हल्के गठन वाली मिट्टियों में, नाइट्रोजन का विभाजित प्रयोग विशेष लाभकर सिद्ध होता है अन्यथा निक्षालन द्वारा नाइट्रोजन क्षति की संभावना बढ़ जाती है।

नाइट्रोजन धारी उर्वरकों का भूमि की उपरी सतह पर मात्र भूरकाव करने और उसे मिट्टी में अच्छी तरह न मिलाने से नाइट्रोजन की गैस रूप में होने की संभावना रहती है। अतः नाइट्रोजन धारी उर्वरकों के सक्षम प्रयोग के लिये यह आवश्यक होता है कि इसे मिट्टी में अच्छी तरह मिलाया जाये।

तालिका 2 : विभिन्न फसलों में नाइट्रोजन धारी उर्वरक प्रयोग करने का समय

फसल	प्रयोग का समय
धान	खाद के रूप में
	कल्ले निकलते समय
	बालिया निकलते समय
गेंहू	भाग बुआई के समय
	भाग पहली सिंचाई के समय
मक्का	1/3 भाग बुआई के समय
	1/3 भाग बुआई के 30 दिन बाद
	1/3 भाग बुआई के 40 दिन बाद
आलू	भाग मूल स्वाद के रूप
	एक महीने के अन्दर

फास्फोरस

फास्फोरस धारी उर्वरकों का मूल खाद के रूप में इस्तेमाल प्रभावकारी होता है। अतः फास्फोरस उर्वरकों की सम्पूर्ण मात्रा फसल की बुआई या रोपाई के समय एक ही बार में इस्तेमाल करनी चाहिए। उर्वरकों को सीधे कतारों में डालना चाहिए जिससे ये मुख्य फसल को अधिक से अधिक मिलता है तथा खरपतवार इसका उपयोग कम मात्रा में कर पाते हैं। इस विधि द्वारा प्रयोग करने पर फास्फोरस का मृदा में यौगिकीकरण (Fixation) कम होता है।

पोटैशियम

अन्य तत्वों की भांति पोटैशियम के सक्षम प्रयोग के लिये आवश्यक होता है कि इसकी आवश्यक मात्रा का इस्तेमाल सही समय पर सही विधि द्वारा किया जाय। यदि पोटैशियम की सम्पूर्ण मात्रा का इस्तेमाल बुआई के समय कर दिया जाता है। प्रयोगों से पता चला है कि हल्की गठन वाली मिट्टियों में पोटैशियम का प्रयोग करने से धान की उपज में सार्थक वृद्धि होती है।

जस्ता

जस्ते का प्रयोग मूल उर्वरक के रूप में फसल की बुआई के समय करना उपयुक्त रहता है। मिट्टी में जस्ते की कमी का सही ज्ञान पहले से न होने के कारण किसान खड़ी फस्ल में इस तत्व की कमी देखने के बाद इसका प्रयोग पर्णीय छिड़काव के रूप में कर सकते हैं।

पोषक तत्वों के समन्वित प्रबंधन का उर्वरक क्षमता पर प्रभाव

पौधों के लिये आवश्यक विभिन्न पोषक तत्वों की पूर्ति हेतु समन्वित प्रयास की आवश्यकता है। आजकल की स्थिति में उर्वरकों की कीमतों में वृद्धि के फल स्वरूप उर्वरकों और खादों के एकीकृत प्रयोग का महत्व बढ़ रहा है। कृषि उत्पादन बढ़ाने में जैविक खादों के महत्वपूर्ण योगदान के बावजूद गोबर का इस्तेमाल उपलें के रूप में ईंधन के लिये कर लिया जाता है या फिर जानवरों को चरने के लिये इधर उधर छोड़ दिया जाता है। परीक्षणों से पुष्टि होती है कि जैविक सामग्री/जैविक /गोबर खाद/ केंचुआ खाद के साथ उर्वरकों का प्रयोग से उर्वरकों की क्षमता में वृद्धि हो जाती है।

फसल प्रणाली के अनुसार उर्वरकों का सक्षम प्रयोग

उर्वरकों की संस्तुति मात्रा एक फसल के लिये न करके पूरे फसल चक्र में ली जाने वाली फसलों की उर्वरक आवश्यकता को ध्यान में रखकर करना विशेष उपयोगी होता है। उल्लेखनीय है कि विशिष्ट फसल में प्रयुक्त कुछ उर्वरकों की अवशिष्ट मात्रा का प्रभाव बाद में उगायी जाने वाली फसल पर पड़ता है। साधारणतया जैविक खादों, फास्फोरस एवं सूक्ष्म पोषक तत्वों की अवशिष्ट मात्रा का अगली फसलों की उपज पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है।

नाइट्रोजन

यह आम धारणा है कि नाइट्रोजन के अवशेष प्रभाव से अगली फसलों की उपज में वृद्धि नहीं होती है परन्तु परीक्षणों से यह सिद्ध हुआ है कि नाइट्रोजन अवशेषों का इस्तेमाल करने से न केवल धान की उपज बढ़ती है वरण इनके अवशिष्ट प्रभाव से गेंहू की उपज में भी वृद्धि होती है।

फास्फोरस एवं जस्ता

विभिन्न फसलों की अवशोषण क्षमता में अन्तर पाया जाता है। इसलिये एक फसल के बजाय पूरे फसल चक्र को ध्यान में रखकर फास्फोरस व जस्ता उर्वरकों की अनुशंसा करनी चाहिये। इन उर्वरकों का अवशेष प्रभाव आने वाली अगली फसल में दिखता है।

जैविक खाद

जैविक खादों का इस्तेमाल आमतौर पर नाइट्रोजन धारी उर्वरकों के पूरक के रूप में किया जाता है। गोबर–कुड़े की खाद या कम्पोष्ट खाद की क्षमता उर्वरक नाइट्रोजन की तुलना में लगभग 25 प्रतिशत के बराबर होती है। जैविक खादों की अवशिष्ट मात्रा से अगली फसल भी लाभान्वित होती है। खरीफ की फसलों में जैविक खादों का इस्तेमाल रबी की तुलना में विशेष प्रभावकारी होता है।

विगत फसल का उपज पर प्रभाव

पहले उगायी गई फसल का अनुगामी फसल की उपज एवं उसमें प्रयुक्त उर्वरकों की क्षमता पर सीधा प्रभाव पड़ता है। दलहन की फसल के बाद ली जाने वाली फसल की उपज अन्य फसलों की अपेक्षा अधिक होती है। राइजोबियम कल्चर के निवेशन में न केवल दलहनी फसलों की उपज वृद्धि होती है बल्कि इसके अवशिष्ट प्रभाव से अनुगामी खाद्यान्न फसलों की उपज में आशा जनक वृद्धि होती है।

यह निर्विवाद सत्य है कि जब भूमि में किसी तत्व की कमी हो जाती है तो ऐसी स्थिति में उस तत्व के अभाव की पूर्ति किये बिना निश्चित उपज प्राप्त करना सर्वथा असंभव हो जाता है। भूमि में तत्व विशेष की पर्याप्त पूर्ति के अभाव में पौधे अपना जीवन पूरा कर पाते हैं। अतः अधिकतम उपज प्राप्त करने के लिये मिट्टी जॉच के आधार पर उर्वरकों का संतुलित मात्रा में प्रयोग अत्यन्त आवश्यक होता है।

पोषक तत्वों के बीच पारस्पारिक संबंध पाया जाता है। एक तत्व की कमी या अधिकता का प्रभाव दूसरे की उपलब्धता पर पड़ता है। नाइट्रोजन और फास्फोरस एवं पोटाष का संयुक्त प्रयोग करने पर एक दूसरे की क्षमता बढ़ जाती है।

सघन कृषि प्रणाली में अधिक उपज देने वाली किस्मों के अधिकाधिक प्रयोग से बहुत से क्षेत्रों में गंधक, जस्ता, बॉरोन, लोहा, मैगनीज और मोलीब्डेनम की कमी हो जाती है। इसको मिट्टी जॉच के आधार पर खेतों में ड़ाल कर फसलों की गुणवत्ता के साथ–साथ अधिकतम उत्पादन लिया जा सकता है।

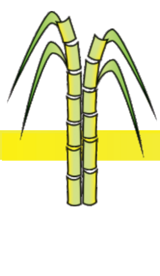

ज्ञान–विज्ञान प्रभाग

उत्तम पैदावार के लिए एकीकृत पादप पोषक तत्व प्रबन्धन

रविन्द्र कुमार राजपूत[1], विनोद कुमार[2], विनय कुमार सिंह[2] एवं राज कुमार सिंह[3]
[1]कृषि विज्ञान केन्द्र, दुवासू, मथुरा, [2]भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान,लखनऊ, [3]कृषि विज्ञान केन्द्र, हजारीबाग

आदिकाल से भूमि की उपजाऊ शक्ति बनाये रखने के लिए किसान किसी न किसी रूप में पोषक तत्वों का प्रयोग करता आ रहा हैं। उर्वरकों के प्रचलन से पहले खेतों में गोबर व हरी खाद का प्रयोग होता था। परन्तु आजकल सघन पद्धति अपनाने के कारण फसल चक्रों में कार्बनिक खादों का प्रयोग नहीं हो पा रहा है। किसान यह आशा करता है कि उसकी जोत के सम्पूर्ण क्षेत्र में गुणवत्ता वाली अधिक से अधिक उपज प्राप्त हो। पहले जब रासायनिक उर्वरक उपलब्ध नहीं थे खेती में जैविक खादों का प्रयोग मुख्य रूप से किया जाता था जिससे कृषि उत्पादन अपेक्षित स्तर तक नहीं पहुँच पाता था परन्तु 60 के दशक में जब हरित क्रान्ति का उद्‌भव हुआ उर्वरकों का प्रयोग धीरे–धीरे बढ़ता गया जिससे उत्पादन में आशातीत वृद्धि दर्ज की गई। प्रारम्भ में प्रमुख पोषक तत्वों में केवल नत्रजनयुक्त उर्वरकों का प्रयोग हुआ लेकिन धीरे–धीरे फास्फेटिक एवं पोटैशिक उर्वरकों के महत्व को समझते हुए इनका प्रयोग भी होने लगा परन्तु अन्य आवश्यक पोषक तत्वों जैसे– मैग्नीशियम, सल्फर, जिंक, आयरन, कॉपर, मैगनीज, मालिब्डेनम, बोरॉन एवं क्लोरीन की मिट्टी में कमी होती रही, फलस्वरूप इन तत्वों का पौधों की आवश्यकतानुसार उपलब्धता न होने से अधिकांश क्षेत्रों में उत्पादन में हो रही लगातार कमी से मृदा में भौतिक, रासायनिक एवं जैविक क्रियाओं में इस प्रकार परिवर्तन हुआ कि देश की बढ़ती आबादी के सापेक्ष खाद्यान्न उत्पादन पर प्रश्न चिन्ह लग गया। गोबर, हरी खाद या गेंहू के भूसे द्वारा कुल पोषक तत्वों के 50 से 75 प्रतिशत आपूर्ति से फसल प्रणाली की उपज में वृद्धि होती है तथा उर्वरता बनी रहती है एवं मृदा का स्वरूप सुरक्षित बना रहता है।

क्या है पोषक तत्व प्रबन्धन

मृदा उर्वरता में उर्वरकों एवं खाद का संतुलन इस प्रकार किया जाये कि मांग एवं जरूरत के अनुसार पौधों को आवश्यक पोषक तत्व उपलब्ध होते रहें, जिससे अधिक से अधिक उत्पादन मिल सके और मृदा का स्वास्थ्य सुरक्षित बना रहे इसके लिए आवश्यक है कि मृदा में कार्बनिक एवं अकार्बनिक खादों का प्रयोग किया जाये, जिससे सभी पोषक तत्वों का निश्चित अनुपात में ग्रहण करना आवश्यक है। क्योंकि प्रत्येक तत्व का पौधों के अन्दर अलग–अलग कार्य एवं महत्व है जो विभिन्न अवस्थाओं में पूर्ण होता है। कोई एक तत्व दूसरे तत्व का पूरक नहीं है। तत्वों का संतुलन बिगड़ने पर उत्पादन सीधे प्रभावित होता है। इस तकनीकी को एकीकृत पोषक तत्व प्रबन्धन के नाम से जानते हैं।

एकीकृत पोषक तत्व प्रबन्धन से लाभ

- अधिकतम पैदावार प्राप्त करना एवं उपज की गुणवत्ता में सुधार।
- पोषक तत्वों को बर्बादी से बचाना (तत्वों का चक्रीय उपयोग)।
- विषैलापन तथा प्रतिक्रियाओं से बचाना, किसी एक तत्व की अधिकता भी विषैलापन पैदा करती है।
- मृदा की उत्पादकता एवं स्वास्थ्य बनाये रखना।
- गुणात्मक उपज प्राप्त करना।
- वातावरण की विपरीत परिस्थितियों से बचाव।
- कीड़े–मकोड़ों के प्रभाव को प्राकृतिक तौर पर कम करना।
- लाभ/लागत अनुपात में वृद्धि करना।

फसलों में एकीकृत पोषक तत्व प्रबन्धन के सुझाव

- मृदा परीक्षण के आधार पर ही उर्वरकों एवं जैविक खादों का प्रयोग किया जाये।
- दलहनी फसलों में राइजोबियम कल्चर का प्रयोग अवश्य करें।
- धान व गेंहूँ के फसल चक्र में ढैंचे की हरी खाद का प्रयोग करें।
- फसल चक्र में परिवर्तन करें।
- उपलब्धता के आधार पर गोबर तथा कूड़ा करकट की कम्पोस्ट बनाकर प्रयोग की जाये।
- खेत में फसल के अवशिष्ट जैविक पदार्थों को मिट्टी में मिला दिया जाय।
- फास्फेट की घुलनशील बनाने वाले बायोफर्टिलाइजर का प्रयोग करें।
- कार्बनिक जीवांश तथा अकार्बनिक उर्वरकों का संतुलित उपयोग करें।

सारणी–1 जैविक खादों एवं जैव उर्वरकों द्वारा उर्वरकों के समतुल्य पोषक तत्व

सामग्री	निवेश की मात्रा	उर्वरकों के रूप में पोषक तत्वों की समतुल्य मात्रा
(क) जैविक खादें / फसल अवशेष		
गोबर की खाद	प्रति टन	3.6 किग्रा नाइट्रोजन, 1.8 किग्रा फास्फोरस, 1.8 किग्रा पोटास
ढैंचा की हरी खाद	45 दिन की फसल	50–60 किग्रा नाइट्रोजन
गन्ने की खोंई	5 टन प्रति हेक्टेयर	12 किग्रा नाइट्रोजन प्रति टन
धान की पुआल + जलकुम्भी	5 टन प्रति हेक्टेयर	20 किग्रा नाइट्रोजन प्रति टन
(ख) जैव उर्वरक		
राइजोबियम कल्चर		19–22 किग्रा नाइट्रोजन
एजेटोबैक्टर एवं एजोस्पारिलम	10 किग्रा प्रति हेक्टेयर	20 किग्रा नाइट्रोजन
नीलरहित शैवाल	10 किग्रा प्रति हेक्टेयर	20–30 किग्रा नाइट्रोजन
एजोला	6–21 टन प्रति हेक्टेयर	3–5 किग्रा प्रति हेक्टेयर

सारणी–2 जैविक खादों में पोषक तत्व की प्रतिशत मात्रा

खाद का नाम	नत्रजन %	फास्फोरस %	पोटाश %
गोबर की खाद	0.5	0.25	0.5
कम्पोस्ट खाद (बिछावन से)	0.5	0.15	0.5
कम्पोस्ट खाद (बायो गैस से तैयार)	1.2–2.0	1.1–2.0	0.8–1.0
मुर्गी बीट	3.8	1.5	1.7
खून की खाद	11.0	1.5	–
भेड़, बकरी की मैंगनी	0.7	0.51	1.8
प्रेसमड	1.9	2.8	0.9
वर्मी कम्पोट	1.2–1.6	1.8–2.0	0.5–0.75
मूँगफली की खली	7.3	1.5	1.3
अण्डी की खली	4.3	1.8	1.3
सरसों की खली	5.2	1.8	1.2
महुआ की खली	2.5	0.8	1.8
नीम की खली	5.2	1.0	1.4

ज्ञान–विज्ञान प्रभाग

टिकाऊ मृदा उर्वरता एवं गन्ना उत्पादन के लिए हरी खाद का प्रयोग

एस.एन. सिंह एवं ए.के. साह
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

गन्ना कृषि तकनीकों पर आधारित निरन्तर चल रहे शोध, विकास एवं प्रसार कार्यक्रमों के समन्वित प्रयासों के बाद भी उत्तर भारत में गन्ना उत्पादन में अपेक्षा के अनुरूप टिकाऊ वृद्धि नहीं हो पा रहीं है। क्षेत्रीय अनुकूलता के आधार पर गन्ना किस्म विकास के सघन शोध कार्यक्रम व गन्ना उत्पादन तकनीकी के विभिन्न आयामों पर यद्धपि बहुत उन्नति हुई है, और इसी के परिणामस्वरूप विशेषकर उत्तर प्रदेश जहाँ की औसत गन्ना उपज वर्ष 2012–13 तक 60 टन/हे तक ही रही है, परन्तु वर्ष 2014–15 में औसत गन्ना उपज 65 टन प्रति हे हो गयी है। कृषि मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा जारी विजन 2020 के अनुसार वर्तमान गन्ना क्षेत्रफल से वर्ष 2020 में कुल गन्ने का उत्पादन 415 मिलियन टन व 11 प्रतिशत चीनी परता प्राप्त करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। इस लक्ष्य को पाने के लिए हमें देश की औसत गन्ना उपज लगभग 100 टन प्रति हे तक प्राप्त करना होगा। यद्यपि गन्ना उतपादन में वृद्धि पाने हेतु विभिन्न कारकों यथा, उन्नतिशील गन्ना किस्मों, गन्ना उत्पादन की विभिन्न शस्य तकनीकियाँ, फसल सुरक्षा प्रबन्धन, गन्ना कृषि में मशीनीकरण आदि का बहुत बड़ा योगदान है, परन्तु सघन फसल पद्धति से खेती, कार्बनिक खादों के प्रयोग का लगातार गिरता स्तर एवं असंतुलित मात्रा में रासायनिक उर्वरकों तथा कीट नाशकों के लगातार बढ़ते प्रयोग से मृदा की उर्वरता में लगातार गिरावट आने के संकेत मिल रहे हैं। गन्ना खेती में मृदा उर्वरता का स्तर बनाये रखने एवं गन्ना उपज में वृद्धि प्राप्त करने हेतु यह आवश्यक है कि मृदा परीक्षण के आधार पर रासायनिक उर्वरकों का संतुलित प्रयोग करते हुए फसल चक्र के आधार पर हरी खाद या उपलब्धतानुसार अन्य जैविक खादों का प्रयोग किया जाय। फलस्वरूप, मृदाओं की भौतिक व रासायनिक दशा में आशातीत सुधार किया जा सकता है। गन्ना की फसल अवधि लम्बी होने के कारण पोषक तत्वों की अधिक आवश्यकता होती है। कभी–कभी पोषक तत्व समुचित मात्रा में उपलब्ध होते हुये भी पौधों को प्राप्त नहीं हो पाते हैं। 100 टन गन्ने की औसत उपज द्वारा 208 किग्रा नत्रजन, 53 किग्रा फास्फोरस, 280 किग्रा पोटाश, 3.4 किग्रा लौह, 1.2 किग्रा मैंगनीज, 0.6 किग्रा जिंक तथा 0.2 किग्रा कॉपर मृदा से प्राप्त किया जाता है। फलस्वरूप, मृदा स्वास्थ्य में लगातार कमी होकर गंधक, जिंक, कॉपर, लौह, मैंगनीज तत्वों की कमी के लक्षण प्रकट होने लगे हैं। रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों के लगातार एवं समुचित जानकारी के अभाव के कारण पर्यावरण को भी अत्यधिक क्षति पहुँच रही है। विगत दशक से अनुभव किया जा रहा है कि मृदा उर्वरता, उत्पादकता व गुणवत्ता में ठहराव की जैसी स्थिति आ गयी है।

उपरोक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुये मृदाओं में संतुलित मात्रा में कार्बनिक/जैविक खादों के साथ–साथ नत्रजन, फास्फोरस व गंधक, जिंक आदि का प्रयोग करना मृदा उर्वरता व उत्पादकता के लिये अति आवश्यक है। उत्तर प्रदेश की अधिकांश मृदायें नत्रजन में अति क्षीण से क्षीण (180 किग्रा/हे से कम) हो गयी है। इसका मुख्य कारण है कि गन्ना कृषक केवल यूरिया उर्वरक का प्रयोग करते हैं। यूरिया एक गतिशील उर्वरक है जिसकी कि लगभग 50 प्रतिशत हानि रिसाव, वाष्पीकरण, नाइट्रीफिकेशन आदि द्वारा होती है। अतः नत्रजन का स्तर बढ़ाने के लिये हरी खाद का प्रयोग अवश्य करना चाहिए। इसके लिए एकीकृत पोषक तत्व प्रबंन्धन में दलहनी फसलों के समावेश के लिये सनई, ढ़ैंचा, मूँग, लोबिया व कम्पोस्ट एवं अन्य कार्बनिक खाद जो भूमि संरक्षण एवं उर्वराशक्ति बढ़ाने वाली होती है, का प्रयोग करना उचित होगा।

भूमि में हरी खाद का प्रयोग करने से भूमि को जीवांश पदार्थ के साथ भूमि की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक दशा सुधरती है। भूमि की जल धारण क्षमता बढ़ती है। भूमि, पोषक तत्वों को अपने अन्दर रोकती है जिससे रिसाव द्वारा पोषक तत्वों का ह्रास नहीं होता है। हरी खाद की जड़ों में पाया जाने वाला रायजोबियम वैक्टीरिया वातावरण से नत्रजन भूमि में इकट्ठी करते रहते हैं। जिससे लगभग 50–60 किग्रा नत्रजन/हे प्राप्त हो जाती है। नत्रजन की तरह ही उत्तर प्रदेश की अधिकांश मृदायें फास्फोरस में भी क्षीण (20 किग्रा/हे से कम) हो गयी है। अतः गन्ने की फसल के लिए फास्फोरस 60 किग्रा/हे देना नितान्त आवश्यक है। फास्फोरस देने से जड़ों का विकास अच्छा होता है। फलस्वरुप पौधे पोषक तत्वों को आसानी से प्राप्त कर लेते हैं तथा पौधे गिरते भी नहीं हैं। प्रायः यह देखा गया है कि मृदाओं में एल्यूमिनियम व लौह आयन्स पाये जाते हैं जिनसे फास्फोरस इन आयन्स के साथ मिलकर स्थिर हो जाता है। जो पौधों को प्राप्त नहीं होता है।

कार्बनिक खादों के प्रयोग द्वारा मृदा उर्वरता में स्थिरता के साथ–साथ भूमि के सूक्ष्म जैविक स्तर में सुधार के

परिणामस्वरूप भूमि सजीव बनी रहती है जिससे वायु से नत्रजन का स्थिरीकरण एवं फास्फोरस की उपलबधता बढ़ती है। भूमि में नत्रजन, फास्फोरस एवं पोटाश जैसे मुख्य पोषक तत्वों के अनुपात (4:2:1) नियंत्रित रहने के साथ–साथ कार्बन–नत्रजन के अनुपात में स्थायित्व भी रहता है। पौधों की प्रतिरोधक क्षमता बढ़ने से फसल स्वस्थ रहती है तथा उत्पादन में 20–25 प्रतिशत तक की वृद्धि हो जाती है। फलस्वरूप मृदा उर्वरता के साथ–साथ उत्पादकता व गुणवत्ता में भी सुधार होता है। इस प्रकार यदि हरी खाद का प्रयोग किया जाय तो 20 से 50 प्रतिशत तक खादों में होने वाले व्यय में बचत कर सरकते हैं तथा उत्पादकता भी अच्छी रहेगी।

यद्यपि, जैविक उर्वरकों के पर्याय के रूप में गोबर की खाद, कम्पोस्ट आदि का प्रयोग कर सकते हैं। परन्तु, इसमें सबसे सरल और टिकाऊ हरी खाद का उपयोग है। हरी खाद के उपयोग से खेती की लागत तो कम होती ही है साथ ही साथ मृदा की उर्वराशक्ति को भी अगली फसल के लिए बढ़ाती है जिसके कारण प्रति हेक्टेयर उपज भी बढ़ती है। हरी खाद की प्रक्रिया पर लंबे समय से चल रहे प्रयोगों व शोध कार्यों से सिद्ध हो चुका है कि हरी खाद का प्रयोग अच्छे व निरोगी गन्ना फसल उत्पादन के लिए बहुत उपकारी है। भारत में हरी खाद के अंतर्गत 49.5 लाख हेक्टेयर क्षेत्रफल है। हरी खाद के लिए मुख्य रूप से दलहली फसलें उगाई जाती हैं। इसकी जड़ों में गांठें होती हैं। इन ग्रंथियों में विशेष प्राकर के सहजीवी जीवाणु रहते हैं। जो वायुमंडल में पाई जाने वाली नाइट्रोजन का यौगिकीकरण करके मृदा में नाइट्रोजन की प्रति पूर्ति करते हैं। इस प्रकार से स्पष्ट है कि दलहनी फसलें मृदा की भौतिक दशा को सुधारने के अतिरिक्त उसमें जीवांश पदार्थ एवं नाइट्रोनज की मात्रा भी बढ़ाती हैं। दलहनी फसलें खरपतवारों को नियंत्रित करने में भी सहायक हैं। हरी खाद मुख्य रूप से दो प्रकार की होती है।

हरी पत्तियों वाली हरी खाद

इसमें दूसरी जगह से पेड़–पौधों और झाड़ियों की हरी पत्तियों को एकत्र करके अन्य खेत में समान रूप से फैलाकर हैरो अथवा मिट्टी पलटने वाले हल से मिट्टी में दबा दिया जाता है। यह कार्य मुख्य रूप से भारत में दक्षिणी और केंद्रीय भाग में होता है।

फसल को खेत में उगाकर पलटना

इस विधि में जिस खेत में हरी खाद वाली फसलें उगाई जाती हैं उसी खेत में उपयुक्त नमी में 45–50 दिन की फसल को मिट्टी पलटने वाले हल से मिट्टी में दबा दिया जाता है। कभी–कभी हरी खाद को व्यावसायिक फसलों के बीच में उगाकर खाद के रूप में प्रयोग करते हैं। इससे व्यावसायिक फसल का उत्पादन कम मिलता है परंतु मृदा कटाव भी नियंत्रित रहता है।

हरी खाद के लाभ

जीवांश पदार्थ को बढ़ाना और मृदा संरचना को सुधारना

यह निम्नलिखित सस्य क्रियाओं पर निर्भर होता है जैसे उगाई जाने वाली फसल का प्रकार, सिंचाई का पानी, मृदा की प्रकृति और प्रकार, प्रकाश काल, पौधों की आयु, पोषक तत्वों की पूर्ति और टीकाकरण एवं कुल बायोमास आदि। औसतन, हरी खाद के प्रयोग से मृदा में काफी मात्रा में जीवांश पदार्थ की वृद्धि होती है। साथ ही मृदा संरचना में भी सुधार होता है।

नाइट्रोजन यौगिकीकरण

यह भी निम्नलिखित सस्य क्रियाओं पर निर्भर होता है। इसमें उगाई जाने वाली दलहन फसल की आयु, नाइट्रोजन, उत्पादित कुल बायोमास, फसल की प्रकृति,

हरी खाद के बाद गन्ना बढ़वार की प्रारम्भिक अवस्था

ढैंचा की विकसित फसल

मृदा का पीएच एवं वातावरण की दशा, सस्य क्रियाएं और फसल की स्थिति इन सभी का सघन तालमेल हो जाए तो नाइट्रोजन यौगिकीकरण अवश्य अच्छा होता है। अन्यथा पौधों की संख्या कम होना, देर से बुवाई करना और सूखा होने पर नाइट्रोजन यौगिकीकरण पर बुरा प्रभाव पड़ता है। मुख्य रूप से नाइट्रोजन यौगिकीकरण मृदा की उर्वरता, पानी की उपलब्धता और हरी खाद वाली फसल की किस्म पर निर्भर होता है। हरी खाद वाली फसलों का योगदान सारणी–1 में अंकित है।

सनई एवं ढ़ैचा सबसे जल्दी कम समय में नाइट्रोजन यौगिकीकरण करने वाली मुख्य फसलें हैं। इसे धान की रोपाई से पूर्व ऊंचे एवं नीचे स्थानों पर उगा सकते हैं। यह मृदा उर्वरता को अति शीघ्र बढ़ाती है। साथ ही नाइट्रोजन की आपूर्ति भी अगली फसल को बढ़ाती है जिससे उगाई जाने वाली फसल में कीटों एवं रोगों का प्रकोप कम होता है। मृदा में जलधारण क्षमता बढ़ती है परिणामस्वरूप फसल का उत्पादन बहुत अच्छा मिलता है।

सारणी–1 अगली फसल के लिए दलहनी फसलों का नाइट्रोजन यौगिकीकरण में योगदान

हरी खाद वाली फसल का नाम	बुवाई का समय	औसत उपज (हरा पदार्थ टन/हे0)	नाइट्रोजन प्रतिशत (हरे भाग पर आधारित)	नाइट्रोजन की उपलब्धता (किग्रा/हेक्टेयर)
सनई	खरीफ	15.2	0.43	84.0
ढ़ैंचा	खरीफ	14.4	0.42	77.1
मूंग	खरीफ	5.7	0.53	38.6
लोबिया	खरीफ	10.8	0.49	56.3
ग्वार	खरीफ	14.4	0.34	62.3
सैंजी	रबी	20.6	0.51	
खेसारी	रबी	8.8	0.54	61.4
बरसीम	रबी	11.1	0.43	60.7
रिजिका	रबी	13.6	0.66	90.1

सूक्ष्म मृदा जीवों की क्रियाशीलता बढ़ाना

इसमें ताजा हरी खाद की फसल मृदा में मिट्टी पलट हल से दबाने पर सूक्ष्म जीवों की क्रियाशीलता तीव्र हो जाती है जिससे हरी खाद वाली फसल जल्दी गल–सड़ जाती है और अगली फसल को नाइट्रोजन की आपूर्ति हो जाती है। मृदा में सूक्ष्म जीवों की क्रियाशीलता, मृदा में नाइट्रोजन–कार्बन अनुपात, मृदा तापक्रम, मृदा में नमी और पौधों की आयु व प्राकर पर निर्भर करती है। इस प्रकार हरी खाद वाली फसल को गलाने–सड़ाने में तीव्रता लाने के लिए मृदा में जैविक पदार्थ और कार्बन–नाइट्रोजन का अनुपात 15:1 और 25:1 के मध्य होना अति आवश्यक है।

मृदा में पहले से उपस्थित पोषक तत्वों की उपलब्धता को बढ़ाना

नाइट्रोजन की आपूर्ति के अतिरिक्त दलहनी फसलें अन्य मुख्य पोषक तत्वों को पुनःचक्रीय अवस्था में लाने में सहायक हैं जैसे नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटाश, कैल्शियम, मैंग्नीशियम, सल्फर एवं सूक्ष्म पोषक तत्व हरी खाद वाली फसलों द्वारा फसल अवधि के दौरान संचित होते हैं। जब हरी खाद वाली फसल को मृदा में मिला दिया जाता हैं अथवा मृदा सतह पर गिरा दी जाती है तो जैसे–जैसे सड़ने की प्रक्रिया आरंभ होती है वैसे–वैसे पोषक तत्व अगली फसल को प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होते हैं और जैविक पदार्थ के सड़ते समय कार्बनिक और अन्य प्रकार के अम्ल (एसिड) बनते हैं। इसी समय उपलब्ध फास्फोरस और पोटाश तथा सूक्ष्म पोषक तत्वों की उपलब्धता अगली फसल के लिए होती है। धान–गन्ना फसल चक्र के अर्न्तगत या गेहूँ की कटाई के बाद हरी खाद हेतु ढ़ैंचा की बुआई कर देनी चाहिए। इसके उपरान्त जब ढ़ैंचे की फसल 45–50 दिन की हो जाय, तो उसे खेते में पलट देने से मृदा की उर्वरता में सुधार होकर विभिन्न जैविक क्रियाओं के सम्पन्न होने के साथ ही मृदा में पोषक तत्वों की उपलब्धता धान तथा गन्ने की फसल को प्रचुर मात्रा में हो जाती है। महाराष्ट्र के कोल्हापुर एवं सोलापुर जिलों में कृषकों द्वारा गन्ने की फसल की पंक्तियों के मध्य सनई की फसल बोने का प्रचलन है। सनई की फसल जब 45–50 दिन की हो जाती है तो उसे

सारणी–2: विभिन्न राज्यों में हरी खाद का अगली फसल का उत्पादन बढ़ाने में योगदान

फसल का नाम	राज्य	हरी खाद वाली फसल	उपज में वृद्धि (प्रतिशत में)
धान	तमिलनाडु	सनई	24
	प. बंगाल	सनई	20
	उड़ीसा	ढ़ैंचा	24
	उत्तर प्रदेश	ढ़ैंचा	51
	बिहार	ढ़ैंचा	60
	आंध्र प्रदेश	सनई	114
	दिल्ली	ढ़ैंचा	16
गेहूं	उत्तर प्रदेश	लोबिया	21
	हरियाणा	सनई	45
	पंजाब	ढ़ैंचा	16
	बिहार	सनई	106
	मध्य प्रदेश	सनई	13
	दिल्ली	सनई	35
गन्ना	उत्तर प्रदेश	सनई	30
	असम	ढ़ैंचा	8
कपास	गुजरात	ढ़ैंचा	21
	महाराष्ट्र	ढ़ैंचा	12
	तमिलनाडु	सनई	21

मृदा सतह में ही काट कर गिरा दिया जाता है।

मृदा के भौतिक गुणों में सुधार

हरी खाद मुख्य रूप से मृदा के भौतिक गुणों को सुधारनें में बहुत लाभकारी होती है। मृदा के भौतिक गुण जैसे मृदा संरचना एवं रचना, नमी धारण की क्षमता तथा पोषक तत्वों की सघनता आदि। इसके अलावा मृदा के भौतिक गुण जैसे वायुसंचार, रंध्रावकाश, अपधावन क्षमता, हाईड्रोलिक कंडक्टीविटी आदि को बनाए रखने में भी सहायक है। मृदा की भौतिक दशा में सुधार होने के साथ ही गन्ना उपज में भी वृद्धि होती है।

खरपतवारों का दबना (घटाव)

हरी खाद वाली फसलों की सघनता अधिक होने से खरपतवारों का नियंत्रण होता रहता है। इसके अलावा पौधों द्वारा उत्पादित एलोपैथिक रसायनों के प्रभाव को भी कम करती है। हरी खाद उगाने वाले मौसम में पौधों के बीच प्रकाश, नमी एवं पोषक तत्वों को ग्रहण करने की प्रतिस्पर्धा भी रहती है जिससे मृदा के भौतिक गुणों में सुधार होता है जोकि अगली फसल की उपज बढ़ाने में बहुत लाभकारी है।

मृदा और जल संरक्षण

हरी खाद की फसल मृदा का संरक्षण करने में बहुत लाभकारी है और बिना फसल उगाए भी मृदा का कटाव रोकने अथवा बचाने में सहायक है। हरी खाद मृदा में रासायनिक अथवा यांत्रिक प्रकार से पानी के अपधावन को कम करने में भी सहायक हैं। प्रक्षेत्र परीक्षण द्वारा प्राप्त परीणामों के अनुसार मृदा सतह से वाष्पोत्सर्जन भी कम करने में सहायक है और वर्षाकाल में मृदा पर पपड़ी बनना रोकती है तथा पानी का मिट्टी में संचय बढ़ता है।

फसल उपज में बढ़ोत्तरी

हरी खाद के उपयोग से अगली गन्ना फसल की वृद्धि और उत्पादन पर अध्ययन किया गया। हरी खाद के बाद धान–गन्ना उगाने पद बहुत लाभ मिलता है। इसके अतिरिक्त हरी खाद गेहूं, गन्ना और कपास की उपज बढाने में भी सहायक है।

हरी खाद वाली फसलों का प्रबंध

फसल का चुनाव

फसलों का चुनाव करते समय मुख्य रूप से दो बातों का ध्यान रखना चाहिए। गर्म जलवायु के लिए चुनाव– सनई, ढ़ैंचा, सायाबीन, लोबिया, और ठंडे मौसम के लिए– बरसीम, रिजका, सैंजी एवं घास आदि।

हरी खाद वाली फसलों का चुनाव करते समय निम्नलिखित बिंदुओं को ध्यान में रखना चाहिए–

1. फसल अधिक वनस्पतिक वृद्धि वाली हो और मृदा की सतह को अधिक से अधिक ढक सके।
2. अधिक मात्रा में हरा पदार्थ प्रदान करने वाली हो।
3. पोषक तत्वों को पुनःचक्रीय अवस्था में लाने की क्षमता रखती हो।
4. प्रक्षेत्र और फसल का प्रबंधन आसान हो।
5. रोगों और कीटों के प्रति अवरोधक हो।
6. जड़ों की वृद्धि और विकास सुनिश्चित हो।
7. बहुउद्देशीय एवं उपयोगी हो।
8. सूखा सहन करने की क्षमता रखती हो।
9. मृदा उर्वरता वृद्धि करने में सक्षम हो।
10. अच्छा बीज उत्पादन देने की क्षमता रखती हो।
11. दलहनी वंशानुकूल की हो और प्रतिकूल मौसम को सहन कर सकती हो।
12. प्राकृतिक रूप से पुनः अंकुरित/बुआई योग्य हो।
13. बीज प्रतिकूल परिस्थिति में भी अंकुरित होने की क्षमता रखता हो।

जुताई

वर्षा के मौसम में वर्षा आधारित क्षेत्रों में जहां पर हरी खाद की फसल उगाना चाहते हैं। वहाँ पर दो जुताई पर्याप्त रहती हैं। तथा परंपरागत विधि से उगाने पर एक जुताई व दो जुताई/पलटाई हैरो से करना पर्याप्त रहता है। नमक प्रभावित क्षेत्रों में दो–तीन जुताई करके पाटा चलाकर खेत समतल करना आवश्यक है।

बुवाई की विधि

ढ़ैंचा अथवा सनई जैसी हरी खाद वाली फसल की बुवाई छिटकावां विधि से कर सकते हैं। इससे पहले 10–12 घंटे बीज को निभाने से बुवाई करने पर अंकुरण अति शीघ्र होता है बशर्ते कि बीज मृदा में अच्छी प्रकार से चिपक जाए। भारत के पश्चिमी भाग में धान के साथ शुष्क बुवाई के लिए ढ़ैंचा/सनई का बीज 30–35 किग्रा/ हेक्टेयर पर्याप्त रहता है। इसके अलावा हल से भी बुवाई कर सकते हैं। ऐसे में पाटा अवश्य लगाना चाहिए। छिटकवां विधि की अपेक्षा पंक्तियों में बुवाई करना अधिक लाभदायक रहता है।

बुवाई का समय

वर्षाकालीन मौसम का लाभ लेने के लिए मानसून के आने से पूर्व शुष्क बुवाई कर सकते हैं और वर्षा आधारित क्षेत्रों में भी वर्षा के आरंभ होने से पूर्व बुवाई करना लाभदायक रहता है। इसके अतिरिक्त उत्तरी भारत में वर्षा आधारित क्षेत्रों मे हरी खाद वाली फसलों की बुवाई जुलाई के शुरू मे कर सकते हैं। ग्रीष्मकाल में सिंचाई की सुविधा होने पर मध्य अप्रैल से मध्य मई तक बुवाई कर सकते है।

बीज दर

हरी खाद वाली फसलों की वृद्धि एवं विकास के लिए उच्च बीज दर रखने की

संस्तुति की गई है। सामान्य दशा में बुवाई के लिए ढ़ैंचा व सनई की बीज दर 50 किग्रा/हेक्टेयर पर्याप्त रहती है जबकि नमक प्रभावित मृदाओं में जहां अंकुरण क्षमता कम होने की संभावना हो उच्च बीज दर रखना लाभकारी रहता है। और दूसरी हरी खाद वाली फसलों की बीज दर 40–50 किग्रा/हेक्टेयर पर्याप्त रहती है।

टीकाकरण

हरी खाद वाली दलहनी फसलों की जड़ों में ग्रंथियां होती हैं जो नाइट्रोजन यौगिकीकरण करने में सहायक हैं। इसके अतिरिक्त वैज्ञानिकों ने अपने शोध में पाया है कि हरी खाद वाली फसलों के बीज को राईजोबियम के टीके से उपचारित करके बोने से जड़ों में गांठों की संख्या में बढ़ोत्तरी होती है जिससे वायुमंडल से नाइट्रोजन यौगिकीकरण अधिक होता है। इससे कुल मिलाकर अगली फसल के उत्पादन में बढ़ोत्तरी मिलती है विशेष रूप से जिन खेतों में पहले कभी भी हरी खाद की फसल नहीं उगाई गई। ऐसी स्थिति में उन खेतों में बुवाई से पूर्व बीज को राईजोबियम जीवाणु उर्वरक खाद के टीके से उपचारित करके ही बोना चाहिए, इससे बहुत लाभ मिलता है। जिन मृदाओं में सुधार के लिए जिप्सम का प्रयोग किया जाता है ऐसे में भी राईजोबियम टीके का उपज बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान होता है।

उर्वरक उपयोग

हरी खाद की फसल को परंपरागत तरीके से उगाने पर बुवाई के समय 15–25 किग्रा/हेक्टेयर नाइट्रोजन और 30–45 किग्रा/हेक्टेयर फास्फोरस देना लाभदायक है।

सिंचाई

वर्षा आधारित क्षेत्रों में हरी खाद की फसलों को वर्षा ऋतु में उगाया जाता है। अतः इन क्षेत्रों में सिंचाई की उपलब्धता नहीं होती और न ही प्रायः आवश्यकता पड़ती है। ग्रीष्मकालीन हरी खाद वाली फसलों में आवश्यकतानुसार 2–3 सिंचाई करनी चाहिए।

मृदा पलटते समय फसल की आयु

अधिकतम लाभ लेने के लिए हरी खाद की फसल की किस अवस्था पर खेत में जुताई करें यह एक मुख्य बिंन्दु है। शस्य वैज्ञानिकों के अनुसार मृदा में पलटाई का समय हरी खाद बुवाई के 40–45 दिन बाद का अच्छा माना गया है। ढ़ैंचा की 6–7 सप्ताह बाद अधिकतम वानस्पतिक वृद्धि हो चुकी होती है, जबकि सनई 50–60 दिन में पलटने योग्य हो जाती है। वैज्ञानिकों का मत है कि सामान्यतः हरी खाद की सभी फसलें 6–7 सप्ताह में जुताई योग्य हो जाती हैं। इससे धान, गेहूं, गन्ना आदि को अधिकतम लाभ मिलता है। जिसके फलस्वरूप उत्पादन में वृद्धि होती है।

पलटाई/जुताई की विधि

खड़ी फसल को पहले पाटा चलाकर मृदा पर गिरा दिया जाता है। इसके बाद तवेदार हैरा/मिट्टी पलट हल से काटकर खेत को 15–25 दिन के लिए छोड़ दिया जाता है। यह कार्य बैलचालित यंत्र से भी कर सकते हैं। यदि हरी खाद वाली फसल के डंठलों की 25 सेमी के टुकड़ों में काटने वाले यंत्र से पलटाई करें तो विशेष लाभ मिलता है। ऐसा करने से फसल के सडने–गलने में कम समय लगता है। ध्यान रहे कि पलटाई उपयुक्त नमी, गहराई पर ही करें।

पलटाई/जुताई की गहराई

प्रक्षेत्र परीक्षण अध्ययन द्वारा सिद्ध हो चुका है कि हरी खाद की फसलों की पलटाई की गहराई 10–15 सेमी होनी चाहिए। उथली पलटाई की अपेक्षा गहरी पलटाई अपेक्षाकृत अधिक लाभदायक रहती है।

मृदा में पलटने और फसल बोने के बीच समय

प्रक्षेत्र फसलों यथा धान, गेहूं, गन्ना आदि से अच्छे उपज परिणाम प्राप्त करने के लिए हरी खाद की फसलों की पलटाई और अगली फसल की बुवाई के बीच समय 15–25 दिन होना चाहिए। मई–जून में बोई गई फसल जुलाई–अगस्त तक अवश्य पलट देनी चाहिए इससे रबी मे बोई जाने वाली फसलों को अच्छी प्रकार पोषक तत्वों की आपूर्ति हो जाती है।

संक्षेप में यह निष्कर्ष निकलता है कि मृदा की उर्वरता एवं उत्पादकता बढ़ाने में हरी खाद का विशेष महत्व है। इसके उपयोग से मृदा में जैव पदार्थ की मात्रा में वृद्धि होती है जो अंततः मृदा के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणधर्मों में अच्छे परिवर्तन लाने में सहायक है। दलहनी फसलों का प्रयोग करने से अगली फसलों को नाईट्रोजन उर्वरक की कम मात्रा की आवश्यकता होती है। और साथ ही उसकी पैदावार में भी वृद्धि होती है। हालांकि, हरी खाद के अनेक लाभ हैं परंतु किसानों द्वारा इसका प्रयोग व हद स्तर पर अभी नहीं हो पा रहा है। इसका मुख्य कारण हे इसके लाभ उनको प्रत्यक्ष रूप से दिखाई नहीं पड़ते और न ही कोई आमदनी मिलती है। अतः जहां तक संभव हो हरी खाद की फसलों को उगाकर मृदा को सुरक्षित रखा जाए और अगली फसलों से अधिकाधिक पैदावार ली जाए। ऐसा करने से मृदा की उर्वरता में सुधार होकर गन्ना तथा गन्ना आधारित अन्य फसलों की उपज में टिकाऊ वृद्धि प्राप्त की जा सकती है।

ढैंचे की जड़ो में नाइट्रोजन यौगिकीकरण करने वाली ग्रंथियॉ

ज्ञान–विज्ञान प्रभाग

जैविक खेती

मोनिका जायसवाल, अजीत सिंह, मेघा विभूते एवं भूपेन्द्र सिंह
कृषि विज्ञान केन्द्र, बुरहानपुर, मध्य प्रदेश

अधिक रासायनिक उर्वरको के उपयोग से मिट्टी में जीवांश कार्बन का स्तर लगातार कम होता जा रहा है, तथा कृषि रसायनो के अंधाधुंध उपयोग से मृदा जीव भी नष्ट होते जा रहे है। अतः भविष्य में मृदा उर्वरता को संरक्षित रखने तथा इनकी निरन्तरता को बनाये रखने के लिए जीवांश खादो की नितांत आवश्यकता है। इसे तैयार करने की विधि सरल एवं गुणवत्ता काफी बेहतर होती है।

जैविक खाद

केंचुआ खाद

केंचुओं द्वारा निगला हुआ गोबर, घास–फूस, कचरा आदि कार्बनिक पदार्थ इनके पाचन तंत्र से पिसी हुई अवस्था में बाहर आता है, इसे केचुआ खाद कहते है। आवश्यकतानुसार पक्का फर्श का निर्माण। घास फूस का षेड या पक्का शेड का निर्माण। फर्श पर 1 मीटर चौडी आवश्यकतानुसार लम्बी व 1.5 से 2 फीट ऊँचाई की क्यारी (ढेर)। आंशिक रूप से सडे गोबर व जैविक कचरे का (1:1) के मिश्रण में उपयोग। 1 किग्रा. प्रति वर्ग मीटर से केंचुआ छोडना। ढेर से जूट की गीली बोरी या घास फूस व पुआल आदि से ढकना। खाद बनने में 2 से 2.5 माह का समय।

वर्मी कम्पोस्ट उपयोग विधि

बीज बोने, खेत की तैयारी के समय एवं गमले मे। गोबर खाद की तुलना मे कम मात्रा। खाद का मिश्रण छायादार स्थान मे पक्के फर्श या प्लास्टिक सीट पर। बिना मिट्टी अथवा अन्य कम्पोस्ट के व्यवहार करना उचित नही। खेतों, बगीचों मे दोपहर के बाद केंचुआ खाद का प्रयोग।

केंचुआ खाद बनाने में सावधानियां

केंचुआ कम व अधिक नमी दोनों के प्रति संवेदनशील होता है अतः उचित नमी (40–50 प्रतिशत) हमेशा बनाये रखे। ढेर को मुर्गी, चूहों तथा दीमक से बचाये। दीमक से बचाव हेतु 4 प्रतिशत नीम के कीटनाशक का प्रयोग करें अथवा 500 ग्राम निम्बोली को रात भर पानी मे भिगोंकर बारीक पीसकर एक लीटर पानी में घोलकर छिडकाव करें। बेड पर ताजे गोबर को न डाले, क्यो कि ताजे गोबर से गर्मी उत्पन्न होती है, जिससे केंचुए मरने की संभावना रहती है। गड्ढे के उपर मचान बनाकर छाया रखे तथा वर्षा व बहते पानी से गड्ढो को बचायें। गड्ढो मे साबुन, दवाईया या किसी प्रकार के रसायनयुक्त पानी का प्रवेश न होने दें। पूरी प्रक्रिया के दौरान बेड के उपरी सतह की दो बार गुडाई अवश्य करें, जिससे वायुसंचार सुचारू बना रहें। केंचुओ को मेंढक, साँप, चिडियों, चींटी आदि से बचाना चाहियें। तैयार केचुआ खाद को छायादार स्थान मे रखना चाहियें।

नाडेप कंपोस्ट खाद बनाने

जमीन के ऊपर ईंट की एक आयताकार टंकी बनायी जाती है, जिसकी दीवारें 9 इंच चौडी होती है। टंकी के अंदर का माप लंबाई 12 फीट, चौड़ाई 5 फीट, ऊंचाई 3 फीट (180 धनफीट), होती है, इटों की जुड़ाई मिट्टी से की जा सकती है। सिर्फ आखिरी रद्दा सिमेंट से जोडिये, ताकि टंकी गिरने का डर नही रहेगा। टंकी का फर्श ईट पत्थर के टुकडे धुम्मस कर सीमेंट से पक्का करें। यह टंकी हवादार होना आवश्यक है, क्यों कि खाद सामग्री को पकने के लिए कुछ मात्रा में हवा की आवश्यकता होती है। इसके लिए टंकी बांधते समय चारों दीवारों में छेद रखे जाते हैं। ईटों के हर दो रद्दों की जुड़ाई के बाद तीसरे रद्दे की जुडाई करते समय हर एक ईट जुड़ाई के बाद 7 ईच का छेद छोडकर जुड़ाई करें। इस प्रकार चारों दीवारों में छेद बनेगा। छेद इस प्रकार रखिये कि पहली लाईन के दो छेदों के मध्य में दूसरी लाईन के छेद आवें। इस प्रकार तीसरे छठें एवं 9 वे रद्दे में छेद बनेगा। छेदों की संख्या बढाने से खाद जल्दी पक सकती है। इस टंकी को अंदर बाहर की दीवारों और फर्श को गोबर मिटट्ी से लीप दें। टंकी सूखने के बाद ही प्रयोग करें। बरसात व अत्याधिक गर्मी में नाडेप टंकी के ऊपर अस्थाई छाया दें।

नाडेप कम्पोस्ट बनाने के लिए सामग्री

1400 से 1500 किग्रा. वानस्पतिक व्यर्थ पर्दाथ, 90 से 100 किग्रा. गोबर 1750 किलो गोमूत्र से सनी मिटट्ी एवं ऋतुमान अनुसार पानी।

हरी खाद

इस प्रकिया में हरे पौधे विशेषतः दलहनी फसलों को उसी खेत में उगाकर जुताई कर मिटट्ी में मिला देते हैं। ये हरी पत्तियाँ या हरे जैविक पर्दाथ मिटट्ी मे जैविक तत्वों की वृद्वि करते हैं तथा पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ाते हैं। यह ध्यान रहे कि पलटने के समय पौध नरम हो और हर हालत मे फूल आने के पूर्व फसल पलट दी जाये। सिंचित अवस्था में मानसून आने के 15 से 20 दिन पूर्व और असिंचित अवस्था

में मानसून आने के तुरंत बाद, तैयार खेत में हरी खाद की फसलों के बीज बोना चाहिए। हरी खाद की फसल का चयन करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि वे जल्दी बढने वाली हों, कीट प्रतिरोधक क्षमता वाली हों, शीघ्र विघटनकारी हो, पत्ते व टहनियॉ काट लेने पर भी वह जिन्दा रहती हों, एवं अधिक मात्रा में जैविक कचरा उत्पन्न करते हों।

मटका खाद

15 किलोग्राम ताजा गोबर, 15 लीटर गोमुत्र तथा 15 लीटर पानी को एक साथ मिट्टी के घड़े में घोल ले, उसमें 250 ग्राम गुड भी मिला लें, इसको कपडा या टाट और मिट्टी से पैक कर दें। 4–5 दिन बाद इस घोल में 200 लीटर पानी मिलाकर एक एकड में छिड़काव करें। यह छिड़काव बोने के 15 दिन बाद करे। सामान्य फसल में 3–4 बार और लम्बी अवधि वाली फसल में 8 बार छिड़के।

खली की खाद

1 किलेग्राम गोबर , एक किलोग्राम चने की खली और 250 ग्राम नीम की खली को 20 लीटर पानी में मिलाकर तीन दिन के लिए रखते है। इस मिश्रण को सुबह और शाम अच्छी तरह से मिलाना चाहिए। इसे छानकर पत्तों पर छिड़का जा सकता है और जड़ में डाला जा सकता है।

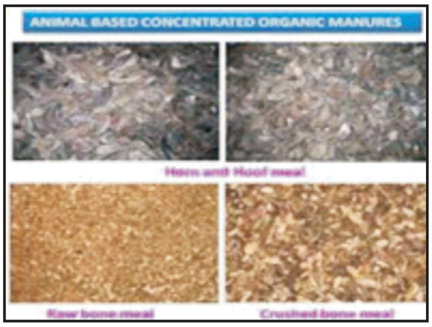

जैविक कीटनाशक

तम्बाखू का काढ़ा

1 किलो तंबाखू के पत्तों को 10 लीटर पानी में आधा घंटे तक उबाले। घोल को लगातार हिलाते रहे। घोल को ठंडा करने के बाद उसे पतले कपडे से छान लें । फिर उसमें 100 ग्राम डिटर्जेट मिलाये। घोल में 1000 लीटर पानी मिलाए और शाम के वक्त 1 एकड़ खेत में छिडकाव करें।

गोबर और गौमूत्र का घोल

एक बर्तन में 5 किलो गोबर, 5 लीटर गौमूत्र को 5 लीटर पानी में मिलायें और उसको चार दिन तक ढक कर सड़ने के लिए छोड़ दें। घोल को दिन में एक बार हिलायें। 4 दिन बाद इसे छान लें और 150 ग्राम चूना मिलायें। 100 लीटर पानी मिलाकर 1 एकड़ में छिडकाव करें।

मिर्च – लहसुन का घोल

3 किलो हरी मिर्च को बारीक पिसकर 10 लीटर पानी डालकर और आधा किलो लहसुन बारीक पिसकर 250 मि. लीटर केरोसीन डालकर रातभर रखे। अब दोनो मिश्रण को छान लें। फिर उसे पानी डालकर पतला करे और 75 ग्राम साबुन का घोल डालें। 4 घंटे बाद 100 लीटर पानी मिलाकर छिडकाव करे।

निम्बोली की गुठली का स्वरस

एक एकड़ के लिए 8 किलो नीम के बीज पीस लें। इसको कपडे की थैली में बांधकर 10–12 घंटे के लिए पानी में डुबोकर रखे फिर पोटली को दबा–दबाकर उसके अर्क को पानी में बाहर निकाले। इसे छानकर 100 ग्राम डिटर्जेट मिला लें। 100 लीटर पानी मिलाकर घोल पतला करें और छिड़काव करें।

बेल का अर्क

बेल की 5 किलो पत्तियाँ लें और उन्हें 10 लीटर पानी में आधे घंटे तक उबालें। घोल को लगातार चलाते रहें। ठंडे होने पर 100 ग्राम डिटर्जेंट मिलायें। 100 लीटर पानी मिलाकर 1 एकड खेत में छिड़काव करें।

वायरस से फैलने वाली बीमारियों की रोकथाम

- वायरस का संक्रमण नजर आते ही नीम का पांच प्रतिशत अक्र खेत में छिड़के। साथ ही संक्रमित पौधें खेत से निकाल दें।
- पौधों का रस चूसने वाले कीड़ों पर नियंत्रण करने के लिए 4 लीटर गौमुत्र और 100 ग्राम हीग, 100 ग्राम चूना लेकर सभी को एक साथ मिलाकर छिडकाव करें।

पौधें के विकास के लिए अर्क

100 किलो गोबर, 100 लीटर गौमूत्र, 100 किलो मूगंफली का केक एक पॉलिथीन में इकट्ठा करें। और इस मिश्रण को बराबर मात्रा में 1 एकड में छिडकाव करें।

एफिड पर नियंत्रण

सिंचाई के समय बेसिल की पत्तियॉ और तने में मंदार के पत्तों को रखने से एफिड पर नियंत्रण पाया जा सकता है। इसी तरह इस कीडे पर नियंत्रण पाने के लिए सिंचाई के समय पानी में अरंडी का तेल मिलाकर छिडकाव करना चाहिए। गोबर के उपलों को सुखाकर उन्हें जलाने के बाद निकली राख का छिडकाव भी प्रभावकारी है।

सफेद मक्खियों पर नियंत्रण

अरंडी के तेल या ग्रीस में भिगोए कागज को खेत में 5–6 निश्चित स्थानों पर रखने से कीडे पर नियंत्रण पाया जा सकता है। पावर स्प्रेयर से हवा छोड़ने पर यह कीडे कागज पर चिपक जाते है। एक किलो गुड और 10 लीटर पानी को मिलाकर एक घोल बनाएं। इस घोल में 100 लीटर पानी मिलकर शाम के समय खेत पर छिड़काव करें।

पत्ते खाने वाले कीड़ों पर रोक

250–300 किलो धतूरे की पत्तियॉ और डंठल लेकर उन्हें बारीक काट लें। इन्हें एक लीटर गरम पानी में डाल दें। मिश्रण ठंडा होने पर 15 लीटर पानी मिलाए और छिडकाव करें।

पत्तों पर धब्बे आने से रोकना

एक लीटर छाछ को 10 लीटर पानी में मिलाकर छिडकाव करें।

हर्बल कीटनाशक का घोल

500 ग्राम नीम की गिरी, एक किलो तम्बाकू 100–250 ग्राम हींग और 50 ग्राम साबुन का पानी लेकर मिश्रण बनाए और एक एकड कपास में छिडकाव करें।

रसचूसक कीडों की रोकथाम

10 लीटर छाछ को एक बर्तन में बंद करके जमीन में 15 दिन के लिए गाड़ दें। बाद में 100 लीटर पानी मिलाकर सब्जियों की फसल पर उपयोग करें।

फलदार पेडों में बांबी बनाने वाले कीड़ों की रोकथाम

नीम के तेल में भिगोया हुआ कपास उस छेद में डाल दें और छेद को गोबर/गौमूत्र/मिटट्ी से ढक दें।

फलदार पेडों को फंगस से बचाव

पौधे की जड़ों के पास तम्बाकू का पाउडर लगाना चाहिए ।

फूल–पड़ी की दवा

एक किलो तम्बाकू को 5 लीटर पानी में मिलाकर तीन दिन रखे फिर अच्छे से मसलकर घोल निचोड़कर उसमें 500 ग्राम नीम का तेल व 25 ग्राम साबुन मिला लें। 15 लीटर पानी में 500 ग्राम घोल मिलाकर सुबह – सुबह छिड़काव करें।

कामलिया कीट की दवा

एक किलो तम्बाकू को 20 लीटर पानी में भिगोकर तीन दिन तक रखे फिर अच्छे से मसलकर घोल निचोड़कर उसमें 400 ग्राम काले धतुरे का रस 250 किलो ग्राम हरी मिर्च कूटकर मिलाकर छानकर घोल में 2 लीटर नीम का तेल व 100 ग्राम साबुन मिला लें। 15 लीटर पानी में 500 ग्राम घोल मिलाकर सुबह – सुबह छिड़काव करें।

हरी इल्ली की दवा

250 ग्राम तम्बाकू, 300 ग्राम हीराकासी, 50 ग्राम नीबू का सत, 2 लीटर पानी में उबालकर छान लें। 15 लीटर पानी में 500 ग्राम घोल मिलाकर सुबह – सुबह छिड़काव करें।

माहु नाशक दवा

10 किलो नीम की पत्ति को कुटकर रातभर 5 लीटर पानी में भिगोकर रखें वह सुबह उबालकर मसलकर छानकर घोल बना लें और 100 लीटर पानी मिलाकर सुबह – सुबह छिड़काव करें।

इल्ली मच्छर मार दवा

पाँच लीटर गोमूत्र, 100 धतूरे के पत्तों को कुटकर मिलाकर छान लें। 1 लीटर गौमूत्र को 15 लीटर पानी में 500 ग्राम घोल मिलाकर सुबह–सुबह छिड़काव करें।

हरे व सफेद मच्छर/मक्खी मार दवा

500 ग्राम तम्बाकू को 5 लीटर पानी में आधा घंटे उबालकर छान लें ठंडा कर साबुन मिलायें। 1 लीटर घोल में 15 लीटर पानी मिलाकर छिड़काव करें।

पत्ते सिकुड़ने या कोढ़ की दवा

एक लकड़ी की राख में मिटट्ी का तेल इतना मिलायें कि तेज गंध आने लगे। इसे सूर्य निकलने से पूर्व फसल के पत्तों के उपर छिड़काव करें।

इल्ली मारने की दवा

एक किलो लहसुन छिलकर पिस लें 200 ग्राम मिटट्ी के तेल में भिगोकर रातभर रखे सुबह 2 किलो मिर्च पिसकर मिलाये। 200 लीटर पानी मिलाकर छिडकाव करें।

लाल तुवर की हरी इल्ली नाशक दवा

सीताफल व अर्नी के बराबर पत्ते लेकर 1 लीटर पानी में उबालना व मसलकर छान लेना। 200 ग्राम रस में 10 लीटर पानी मिलाकर छिड़काव करें ।

चने व कपास की इल्ली नाशक दवा

10 लीटर गौमूत्र में 1 किलो नीम/बेल/आंकडे के पत्ते मिलाकर 15 दिन तक रखे फिर 100 ग्राम लहसुन डालकर इतना उबाले कि 5 लीटर रह जाए। 15 लीटर पानी में 750 ग्राम मिश्रण मिलाकर छिडकाव करे।

कीडें मारने की दवा

पाँच लीटर गौमूत्र , 1 लीटर निरगुण्डी का रस, 1 लीटर हींग का पानी को 8 लीटर पानी में मिलाकर छिडकाव करे।

दीमक मार दवा

पाँच किलो आंकडे के पत्ती तना व जड़ को कुटकर पतले थैल में बांध लें। खेत में सिंचाई करते समय जहॉ पाईप का पानी गिरता है वहॉ थैले को रख दें। यह 1 बीघा के लिये पर्याप्त है।

अमृत संजीवनी कीट – पतंगे नाशक

200 लीटर वाले खाली ड्रम में 60 किलो गोबर डालकर 2/3 हिस्से तक पानी डालकर तीन किलो युरिया, 3 किलो सुपर खाद, 1 किलो म्यूरेट ऑफ पोटाश व 2 किलो की मुगंफली खली डालकर ड्रम में इतना पानी डाले की ड्रम 3 इंच खाली रहें। अच्छे से मिलाकर 48 घंटे के लिए रख दें। 2 लीटर मिश्रण में 13 लीटर पानी मिलाकर छिडकाव करे।

जैविक टॉनिक

वर्मीवॉश: दस लीटर वर्मीवॉश में 100 लीटर पानी मिलाकर 1 एकड में छिडकाव करे।

ज्यादा पैदावार टॉनिक : एक लीटर नीम तेल, 3 किलो बारीक रेत, 3 किलो गाय का गोबर अच्छे से मिलाकर गिले बोरे में भरकर अंधेरे में 3 दिन के लिये रख दें। इसे 150 लीटर पानी में मिलाकर सुबह'–सुबह छिडकाव करें।

बीजोपचार : बीस लीटर पानी में 5 किलो गोबर, 5 लीटर गौमुत्र और 1 किलो मेड की मिटट्ी मिलाकर 1 दिन के लिए रख दें और बीजोपचार करें।

बेहतर अंकुरण के लिए पानी में 24 घंटे मक्का, 7 घंटे गेहूँ, 1–2 घंटे मूगंफली आदि डुबोकर रखने के बाद चार पांच घंटे सुखाया जाता है।

ज्ञान–विज्ञान प्रभाग

जैविक उर्वरकों का गन्ने की खेती में लाभकारी उपयोग

शिव राम सिंह, ईश्वर सिंह, राम रतन वर्मा एवं के.के. सिंह
भाकृअनुप– भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

जैविक उर्वरको का व्यापरिक इतिहास नोब्बे एवं हिल्टनेर के द्वारा निट्रागिन नामक राइजोबियम कल्चर के प्रमोचन से सन 1895 में शुरू हुआ। इसके बाद एजोटोबैक्टर एवं नील हरित शैवाल की खोज हुई। एजोस्पिरिलम तथा ए.एम. फंजाई की खोज नई समझी जाती है। भारत में दलहनी–राइजोबियम सहजीवन के उपर पहला अध्ययन एन.वी. जोशी ने किया था तथा इसका पहला व्यापारिक उत्पादन सन 1956 में शुरू किया गया। भारत सरकार के कृषि मंत्रालय द्वारा नवी योजना में जैविक उर्वरको के उपयोग एवं विकास को राष्ट्रीय परियोजना के रूप में इसे वास्तविक रूप से लोकप्रिय बनाने तथा इसको बढ़ावा देने का प्रयास किया गया। हरित क्रांति के अस्तित्व में आने के बाद, आधुनिक कृषि मुख्य रूप से अकार्बनिक (रसायनिक) खादों में पर निर्भर होने लगी। खाद्यान की बढ़ती हुए मांग को पूरा करने के लिए सघन कृषि एक महत्वपूर्ण विकल्प के रूप में सामने आई है लेकिन इससे निरंतर अत्यधिक अकार्बनिक उर्वरकों के प्रयोग से प्राकृतिक संसाधनों पर दिन प्रतिदिन प्रतिकूल प्रभाव देखने को मिलने लगा है जिससे फसल उत्पादकता में निरंतर कमी आ रही है। इसके साथ–साथ दूसरे जीवों पर कुप्रभाव पड़ता हैं जिनसे रोगों एवं हानिकारक कीटों का प्रकोप साल दर साल बढ़ता जाता है एवं उनके नियंत्रण पर होने वाले खर्च में भी अधिक बढ़ोत्तरी होती जा रही है। ऐसी दषा में गन्ने की खेती में जैविक उर्वरकों का प्रयोग करके परिस्थितिकीय संतुलन को बनाये रखते हुए उत्पादन लागत में सफलता पूर्वक कमी लायी जा सकती है।

जैविक उर्वरक क्रियाशील एवं प्रभावी सूक्ष्म जीवों के विभिन्न प्रभेदों से तैयार एक सजीव उर्वरक है। इनमें जीवाणु, कवक, नील हरित शैवाल, एजोला, जल फर्न आदि प्रमुख होते हैं गन्ने में ये वायुमंडलीय नत्रजन का स्थिरीकरण, मृदा में उपस्थित अघुलनशील पदार्थों जैसे फोस्फोरस, जिंक, पोटाश, मैगनीज आदि तत्वों को घुलनशील बनाकर इनकी उपलब्धता बढ़ाते हैं। इसके अतिरिक्त, ये गन्ने के वृद्धि हार्मोन्स एवं विटामिन्स की उत्पादन गति को बढ़ाने में सक्षम होते हैं। मृदा जनित पौधों की बीमारी को रोकने या कम करने, मिट्टी समुच्चय (soil aggregates) की स्थिरता एवं कार्बनिक पदार्थों को अकार्बनिक पदार्थों में परिवर्तित करने में सहायक होते हैं। महराष्ट्र में किए एक शोध से ज्ञात हुआ है कि जैविक विधि से गन्ने की खेती करने से प्रचलित विधि की अपेक्षा लागत मूल्य में 15.4 प्रतिशत की कमी पाई गई। लागत मूल्य में कमी मुख्यता रसायनिक उर्वरकों, सिंचाई, बीज एवं पौध संरक्षण पर होने वाले खर्च में बचत के कारण हुई।

जैविक उर्वरकों के लाभ

- जैविक खादें रसायनिक उर्वरकों के आंशिक रूप से पूरक है। ये नत्रजन का स्थिरीकरण एवं अघुलनशील तत्वों की घुलनशीलता को बढ़ाकर प्रत्यक्ष रूप से पौधों को उपलब्ध कराते है।
- ये सस्ते, पर्यावरण के अनुकूल एवं प्रदूषण मुक्त होते हैं।
- ये हार्मोन्स एवं विटामिन्स को उत्सर्जित करते हैं जिससे पौधों की बढवार होती है।
- ये जैविक और अजैविक तनाव की परिस्थिति में पौधों का बचाव करते हैं।
- कुछ जैव उर्वरक प्रतिजैविक यौगिक उत्पादित करते हैं जो मृदा जनित पौधों की बीमारी को कम करने में सहायक होते हैं।
- जैविक उर्वरक, मृदा मे पाये जाने वाले लाभदायक जीवाणुओं के अस्तित्व एवं प्रसार में सहायक होते हैं।
- इनके उपयोग से मिट्टी के गुणों में सुधार एवं इनकी गुणवत्ता बनाए रखने में सक्षम होते हैं।
- ये फसलों की पैदावार को 20–25 प्रतिशत तक बढ़ाने में सक्षम पाये गए हैं।

जैविक उर्वरकों की विशेषता

- जैविक उर्वरकों में प्रयुक्त सूक्ष्म जीवों की प्रजातियॉ प्रभावी, तेजी से बढ़ने वाली एवं प्रतिस्पर्धी होनी चाहिए।
- सम्वर्ध माध्यम (कल्चर मीडिया) में आसानी से तैयार किया जा सकने योग्य होने चाहिए।
- स्थानीय परस्थिति के आपेक्ष आसानी से समाहित होने की क्षमता होनी चाहिए।
- जैविक खादें वाहक आधारित होनी चाहिए।
- जैविक खाद बनाते समय संबन्धित सूक्ष्म जीवों की संख्या 10^8 कोशिकाएँ प्रति ग्राम कल्चर में पैक करते समय एवं कम से कम 10^7 कोशिकाएँ प्रति ग्राम प्रयोग करते समय होनी चाहिए।
- जैविक खादों में प्रयुक्त संबन्धित सूक्ष्म जीवों के सम्वर्ध माध्यम (कल्चर मीडिया) का पी एच मान 6–7 के बीच होना चाहिए।

जैविक उर्वरकों के प्रकार

जैविक खादों को उनके काम एवं पौधों में प्रयोग के आधार पर मुख्य रूप से तीन समूहों में विभाजित किया गया है। वायुमंडलीय नत्रजन का स्थिरीकरण करने वाले, फास्फोरस को घुलनशील बनाने वाले तथा कार्बनिक पदार्थो को विघटित करने वाली जैविक खादें। वायुमंडलीय नत्रजन का स्थिरीकरण करने वाले एवं अघुलनशील फास्फोरस को घुलनशील बनाने तथा पौधों तक पहुचाने वाले जीवाणुओं से सुसज्जित जैविक खादों को फिर से अनेक भागों में विभाजित किया गया है जो इस प्रकार है।

वायुमंडलीय नत्रजन का स्थिरीकरण

नत्रजन, गन्ने की वृद्धि एवं विकास के लिए अति आवश्यक तत्व है जो क्लोरोफिल, एंजाइमस, प्रोटीन्स एवं आनुवंशिक पदार्थों जैसे डी.एन.ए, आर.एन.ए. आदि बनाने में मुख्य भूमिका निभाता है। गन्ने में दूसरे तत्वों की तुलना मे, नत्रजन की आवश्यकता सबसे अधिक पाई गई है। शोध कार्यों से ज्ञात हुआ है कि 100 टन प्रति हेक्टेयर गन्ना उत्पादित करने के लिए करीब 205 कि.ग्रा./हे. नत्रजन को अवशोषित करता है जिसके अधिकतम भाग की आपूर्ति अकार्बनिक स्त्रोतों से ही की जाती है। भिन्न–भिन्न देशों में गन्ने में अकार्बनिक रसायनों का प्रयोग भिन्न–भिन्न पाया गया है। अधिकतर गन्ना उत्पादन करने वाले नत्रजन का स्थिरीकरण करने वाले जीवाणुओं का प्रयोग करके नत्रजन उर्वरको की मात्रा में बचत करने के लिए प्रयासरत है। ब्राजील में लम्बी अवधि में किये गये अनुसंधान से यह ज्ञात हुआ है कि गन्ने की फसल अपनी कुल नत्रजन मांग की 70 प्रतिशत तक जैविक नत्रजन से पूरा करती है। भारत में भी अकार्बनिक रसायनों का प्रयोग कम करने के लिए जैविक खादों का सक्रिय रूप से प्रयोग किया जाने लगा है। इसके प्रयोग से कम लागत में गुणवत्ता युक्त गन्ना उत्पादन के साथ–साथ मृदा उर्वरता में बढ़त देखी गई है। शोध कार्यों से ज्ञात हुआ है कि पौधों की बढ़वार को प्रभावित करने वाले जीवाणु जो गन्ने की एवं एजोस्पिरिल्लम कम वायु की उपस्थिति में तथा क्लोस्ट्रिडीयम वायु की अनुपस्थिति में कार्य करते हैं। ये सभी हेट्रोट्रोफिक प्रकृति के होने के कारण इनकी कार्यशीलता मृदा में उपस्थित कार्बनिक पदार्थों की मात्रा पर निर्भर करती है। इन सूक्ष्म जीवों के वृद्धि एवं विकास के लिए मृदा में कार्बनिक पदार्थों एवं अन्य सूक्ष्म तत्वों की उपलब्धता अति आवश्यक है। मृदा में पर्याप्त मात्रा में कार्बनिक पदार्थों की उपपस्थित एवं कार्बनिक पदार्थो की खादो में मृदा पर्याप्त मात्रा में कार्बनिक पदार्थों की उपस्थिति एवं कार्बनिक खादों के प्रयोग से इनमे वृद्धि एवं विकास तेजी से होता है

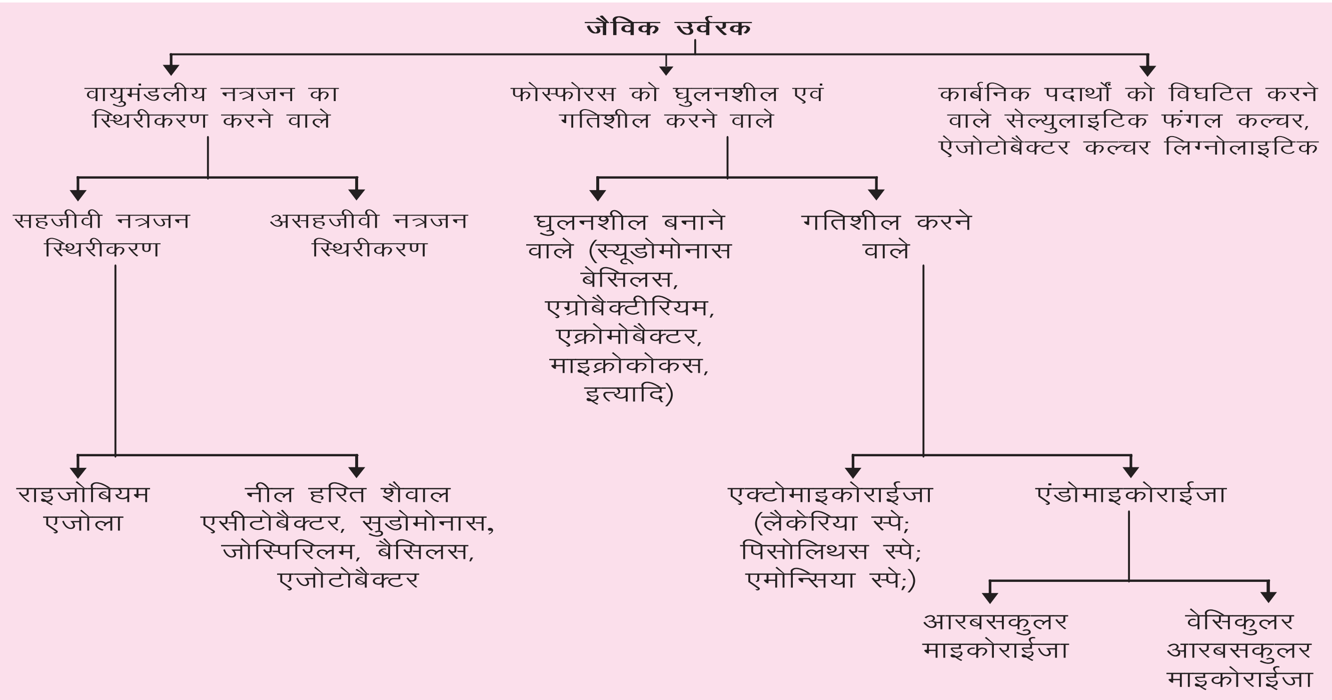

और ये नत्रजन का समुचित स्थिरीकरण देशों में 250 कि.ग्रा. नत्रजन हे. या इससे अधिक मात्रा में लगातार अकार्बनिक स्त्रोतो से प्रयोग करने का प्रलचन है। इतनी अधिक मात्रा में लगातार नाइट्रोजन के उपयोग करने से मृदा मे सूक्ष्म जीवों पर विपरीत प्रभाव पड़ता है तथा इसका प्रभाव गन्ने की उत्पादकता पर पड़ता है कुछ गन्ना उत्पादक देश रसायनिक खादों के साथ जैविक खादों का प्रयोग करने लगे है ब्राजील मे किसान 50 कि.ग्रा./हे. नत्रजन की अकार्बनिक स्रोतों से प्रयोग करके अधिक गन्ना उत्पादन करते है तथा वायुमंडलीय अधिकतर जड़ों के पास व गन्ने के पौधों में एंडोफाइट्स के रूप में अधिक मात्रा में पाये जाते है। जबकि *इंट्रोबैक्टर क्लोएसी, इरविनिया हर्बीकोला, क्लेपसियला नऊमोनी, क्लेपसियला ओक्सिटोका, एजोटोबैक्टर वाइनलंडी, पीनीबैसिलस पोलीमिक्सा* और *एजोस्पिरिल्लम* प्रायः कम मात्रा में पाए जाते है।

स्वतंत्र रूप से वायुमंडलीय नत्रजन का स्थिरीकरण करने वाले जीवाणुओं में *एजोबैक्टर बेजरंकीया, डेरक्सिया, माइकोबेक्टरियम* आदि वायु की उपस्थिति करने के अतिरिक्त पौधों की वृद्धि कारक वाले अनेक रसायन जैसे हार्मोन्स, विटामिन्स एवं कवकरोधी पदार्थों का उत्सर्जन करके प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से गन्ने की उत्पादकता को बढ़ाते हैं।

जैविक उर्वरकों द्वारा प्रभावी रूप से नत्रजन का स्थिरीकरण करने के लिए अनेक जीवाणुओं की संख्या अधिक एवं नई कोशिकाओं का निर्माण तेज गति से होना चाहिए साथ ही मृदा में उपलब्ध नत्रजन की मात्रा कम होनी चाहिए जिससे जीवाणु अधिक सक्रिय होकर नत्रजन का

स्थिरीकरण कर सके। स्वतंत्र रूप से नत्रजन स्थिरीकरण करने वाले समूह के जीवाणु आणविक नाइट्रोजन की अपेक्षा अमोनियम एवं नाइट्रेट को संयुक्त रूप से प्रयोग करते हैं इसलिए मृदा में उपस्थित नत्रजन की मात्रा विशेष रूप से अमोनियम आयन्स अधिक होने से इनकी कार्य क्षमता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। जबकि फास्फोरस की उपलब्धता नत्रजन का स्थिरीकरण करने वाले जीवाणुओं की वृद्धि एवं कार्य क्षमता को बढ़ाता है। दस से पंद्रह किग्रा नत्रजन का स्थिरीकरण करने के लिए स्वतंत्र रूप से वायुमंडलीय नत्रजन का स्थिरीकरण करने वाले जीवाणु को 1–1.5 किग्रा फास्फोरस की आवश्यकता होती है। कैल्सियम, लोहा, सल्फर एवं मोलिबिड्नम तत्वों की मृदा में प्रयाप्त मात्रा में उपस्थित नत्रजन स्थिरीकरण पर सकारात्मक प्रभाव डालती है। मोलिबड्निम, आणुविक नाइट्रोजन के मेटाबोलिजम में सहायक है जबकि लोहा एवं सल्फर, नाइट्रोजिनेज इंजाइम के निर्माण में सहायक होते हैं। भिन्न–भिन्न जीवाणुओं में गन्ने में वायुमंडलीय नत्रजन का स्थिरीकरण करने की क्षमता भिन्न होती है। गन्ने के पौधों में एंडोफाइट्स के रूप में पाए जाने वाले ग्लूकोनोसीटोबैक्टर 10–300 किग्रा. नत्रजन का स्थिरीकरण करते हैं जबकि गन्ने के जड़ों के पास पाए जाने वाले एजोटोबैक्टर 20–30 किग्रा. नत्रजन का स्थिरीकरण करते हैं। भिन्न–भिन्न जीवाणुओं में गन्ने में वायुमंडलीय नत्रजन का स्थिरीकरण करने की क्षमता भिन्न होती है। गन्ने में किये गये विभिन्न अनुसंधानों से यह ज्ञात हुआ है कि नत्रजन स्थिरीकरण करने वाले जैविक खादो के प्रयोग से गन्ने की फसल में करीब 100–120 किग्रा. नत्रजन की बचत की जा सकती है एवं मृदा में उपलब्ध नत्रजन में भी वृद्धि होती है।

फास्फोरस को घुलनशील एवं गतिशील बनाना

फास्फोरस का भी नत्रजन के समान गन्ना उत्पादन में महत्वपूर्ण योगदान है। यह पौधों की जड़ों के विकास एवं विस्तार के साथ–साथ उपापचय क्रियाओं को सुचारू रूप से चलाने एवं शर्करा के संचय में अहम योगदान करता है। फास्फोरस मृदा में मुख्यतः कार्बनिक स्त्रोतों के रूप में पाया जाता है लेकिन पौधे इसे H_2PO_4 एवं H_2PO_4 आयन के रूप में अवशोषित करते हैं। आयनिक–अवस्था होने के कारण यह बहुत क्रियाशील होता है तथा लोहा, अलुमिनियम एवं कैल्शियम के साथ अघुलनशील यौगिक के रूप में परिवर्तित हो जाता है। फास्फोरस की उपलब्धता मृदा के पी. एच. मान पर निर्भर करता है तथा अधिकतम उपलब्धता पी. एच. मान 6.5 से 7.5 के बीच होती है। अधिकांश मृदा में यह अघुलनशील एवं अगतिशील अवस्था में पाया जाता है। अघुलनशील, कम गतिशीलता एवं दूसरे तत्वों से रासायनिक क्रिया कर अघुलनशील रूप में बदलने के कारण उर्वरकों के रूप मे दिये गये एवं मृदा में पाये जाने वाले फास्फोरस की उपलब्धता गन्ने में केवल 15 प्रतिशत तक ही हो पाती है। सूक्ष्म जीवाणु मृदा में अम्लीय पदार्थों को स्रावित करके मृदा का पी एच मान प्रभावित कर फास्फोरस की उपलब्धता बढ़ा देते हैं। इसी प्रकार कवक पौधों की जड़ों का क्षेत्रफल बढ़ाकर एक माध्यम के रूप में फास्फोरस की गतिशीलता एवं पौधों को उपलब्धता बढ़ा देते हैं। सूक्ष्म जीवों को जैविक खाद के रूप में प्रयोग से फास्फोरस की उपलब्धता बढ़ाकर गन्ने की पैदावार बढ़ा सकते हैं।

शोध कार्यों से पाया गया है की लिग्नाइट आधारित फास्फोरस को घुलनशील बनाने वाले जीवाणु (बैसिलस मेगाटीरियम किस्म फास्फोटिकम) जिसका बैक्टीरियल लोड 10^8 कोशिकाएं प्रति ग्राम कल्चर है के प्रयोग से गन्ने के विभिन्न बढ़वार की अवस्थाओं पर मृदा में फास्फोरस की उपलब्धता में वृद्धि हुई। फास्फोरस के साथ पी एस बी (फास्फोरस को घुलनशील बनाने वाले जीवाणु) के प्रयोग से गन्ने की फसल में बढ़वार, गन्ने की संख्या एवं भार और उपज (10–15 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी) पर इसका प्रभाव ज्यादा अच्छा मिला। उपज के साथ–साथ गन्ने में शर्करा की मात्रा पर भी सकारात्मक प्रभाव देखा गया जिससे शर्करा का उत्पादन 15 प्रतिशत बढ़ गया। इन सब लाभों के अतिरिक्त पी एस बी के प्रयोग से गन्ने द्वारा स्थानीय फास्फोरस का अधिग्रहण बढ़ने से गन्ने के लिए संस्तुत फास्फोरस की मात्रा में 25 प्रतिशत की कमी की जा सकती है। प्रक्षेत्र अध्ययन से पाया गया कि अगर रॉक फॉस्फेट को पी.एस.बी. के साथ मिलाकर प्रयोग किया जाए तो फास्फोरस का प्रयोग 50 प्रतिशत तक बिना उपज को प्रभावित किए कम किया जा सकता है। ग्लूकोनोसीटोबैक्टर में भी अघुलनशील फोस्फोरस को घुलनशील बनाने की क्षमता पाई गई। गन्ने से प्राप्त ग्लूकोनोसीटीबैक्टर के प्रभेदों में बैसिलस मेगाटीरियम की अपेक्षा ट्राइकैल्शियम फॉस्फेट एवं मंसूरी रॉक फास्फेट को अधिक घुलनशील बनाने की क्षमता पाई गई। लखनऊ मे एंड्रोफाइट्स जीवाणुओं के 12 प्रभेदों को गन्ने से पृथक किया गया जिनमें से 9 प्रभेदों में फास्फोरस को घुलनशील बनाने की क्षमता पाई गई। और इनको दुबारा गन्ने में संचार (इनोकुलेट) करने से गन्ने का अंकुरण एवं फास्फोरस की मात्रा (कंटैट) में वृद्धि देखी गयी। कैल्शियम युक्त मृदा में सुड्रोमोनास स्ट्रीयटा को 6 किग्रा. कि दर से 4.0 टन प्रैस मड के साथ डालने से गन्ने कि संख्या एवं उपज में क्रमशः 17.2 एवं 12.0 प्रतिशत कि वृद्धि पाई गई साथ ही मृदा में उपलब्ध एवं सकल फास्फोरस में क्रमशः 14.4 व 5.2 प्रतिषत कि वृद्धि पाई गई।

महाराष्ट्र में किए गए शोध में पाया गया कि एजोटोबैक्टर + पी एस बी को नत्रजन व फास्फोरस की संस्तुत मात्रा के साथ प्रयोग करने से गन्ने में अंकुरण, गन्ने की मोटाई, ऊचाई एवं संख्या के साथ गन्ने की उपज में वृद्धि हुई। इसके प्रयोग से गन्ने के रस की शुद्धता में भी वृद्धि हुई। कोयंबटूर में किए गए अन्य शोध कार्य से पाया गया कि एजोस्पिरिलम + पी एस बी अथवा ग्लूकोनोसीटोबैक्टर + पी एस बी को नत्रजन व फास्फोरस की 50 या 75 प्रतिशत संस्तुत मात्रा के साथ प्रयोग करने से गन्ने तथा शर्करा की उपज नत्रजन व फास्फोरस की संस्तुत मात्रा में पाई गई उपज के बराबर थी। जिससे सिद्ध होता है कि जैविक खादों के प्रयोग से अकार्बनिक नत्रजन व फास्फोरस उर्वरकों की 25–50

प्रतिशत मात्रा तक बचत की जा सकती है। एक अन्य शोध में ग्लूकोनोसीटोबैक्टर, पी एस बी व आर्बस्कुलर माइकोराइजा (ए. एम.) कवक के तुलनात्मक अध्ययन से पाया गाय कि ए एम फन्जाई के उपचार से गन्ने की उपज में अपेक्षाकृत अधिक वृद्धि हुई। लेकिन इन तीनों सूक्ष्म जीवों को संयुक्त रूप से फास्फोरस की 50 प्रतिशत संस्तुत मात्रा अथवा बिना फास्फोरस के साथ प्रयोग करने से दोनों अवस्थाओं में गन्ने की उपज एवं मृदा में फास्फोरस की मात्रा में वृद्धि पाई गई। जैविक खादों से प्रभावी लाभ के लिए समुचित प्रभेदो का चुनाव करना चाहिए। ए. एम. कवक के विभिन्न प्रभेदों में से ग्लूमस प्रभेद गन्ने की उपज बढ़ाने में जिगास्पोरा एवं एकलोस्पोरा प्रभेदों से अपेक्षाकृत अधिक प्रभावी पाया गया।

कार्बनिक पदार्थों का विघटन

अविघटित कार्बनिक पदार्थों में उपस्थित पोषक तत्वों को पौधों अवशोषित करने में असमर्थ होता है। इन पोषक तत्वों को उपलब्ध स्वरूप में लाने के लिए कार्बनिक पदार्थों का विघटन आवश्यक है। मृदा में पाये जाने वाले कार्बनिक पदार्थों का विघटन करने में सूक्ष्म जीवों का विशेष महत्व है। ये सूक्ष्म जीव खुद अपना खाना बनाने में असमर्थ होते हैं इसलिए ये मृदा में पाये जाने वाले कार्बनिक पदार्थों पर निर्भर रहते हैं तथा इस प्रक्रिया से ये कार्बनिक पदार्थों का विघटन करके उसमें उपस्थित पोषक तत्वों का निस्तारण करते हैं। कार्बनिक पदार्थों के विघटन की प्रक्रिया में सबसे पहले प्रोटोजोआ, निमेटोड, केंचुए एवं ऑर्थोपोड्स इन कार्बनिक पदार्थों को विखंडित करते हैं इसके बाद ये विखंडित पदार्थ जीवाणुओं, एक्टिनोमाइसिट्सव एवं कावको द्वारा विघटित किए जाते हैं। विखंडन एक बहुत ही साधारण एवं एक्जोथर्मिक (तापमान को बढ़ाने वाली) प्रक्रिया है। इसके अंतर्गत सेलूलोज, हेमीसेलूलोज, लिग्निन, स्टार्च आदि को प्रोटीन एवं कार्बन डाइऑक्साइड में परिवर्तित कर देते है। प्रोटीन, एमीनो एसिड में तथा एमीनो एसिड्स नत्रजन में परिवर्तित हो जाते हैं। इसी तरह कार्बनिक सल्फर एवं कार्बनिक फास्फोरस (फाईटीन, लेसिथीन), अकार्बनिक सल्फेट एवं अकार्बनिक फास्फेट में परिवर्तित हो जाते हैं। विघटन की प्रक्रिया में कवक सबसे पहले कार्यशील होकर कोमल पदार्थों (स्टार्च, सुक्रोज) को विघटित करती है बाद में जीवाणु एवं एक्टिनोमाइसिट्स प्रतिरोधी पदार्थों (सेलूलोज, हेमीसेलूलोज, लिग्निन) को विघटित करते है।

जैविक खादों की असफलता के संभावित कारक

गुणवत्ता की कमी

- अप्रभावी प्रभेदों का प्रयोग
- सूक्ष्म जीवों की अपर्याप्त संख्या
- प्रदूषकों का अधिक मात्रा में पाया जाना

अपर्याप्त भंडारण क्षमता/सुविधा

- अत्यधिक ताप में खुला छोड़ना
- प्रतिकूल अवस्था में सर्जित करना

गलत प्रयोग

- जैविक उर्वरकों को पर्याप्त मात्रा में संस्तुत की गई सिफारिशों के आधार पर प्रयोग न करना
- मृदा में फास्फोरस एवं मोलिब्डीनम की कमी
- बैक्टीरियोफेज कि स्थानीय जनसंख्या का अत्याधिक मात्रा में होना

जैविक उर्वरक प्रयोग करते समय सावधानियाँ

- जैविक उर्वरको के पैकेट को ठंडे एवं सूखे स्थान पर संचित करना चाहिए तथा सीधी सूर्य की रोशनी तथा गर्मी से दूर रखना चाहिए।
- सही संयोग के साथ प्रयोग करना चाहिए।
- कुछ जीवाणु फसल विशेष होते हैं इनको विशेषता के अनुसार चयन करना चाहिए
- दूसरे हानिकारक रसायनों को जैविक उर्वरकों के साथ मिलाना नहीं चाहिए
- जैविक उर्वरक खरीदते समय यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि प्रत्येक पैकेट में आवश्यक जानकारी जैसे उत्पाद का नाम, समाप्ति तिथि, बैच संख्या एवं प्रयोग करने के दिशानिर्देश अंकित हो।
- जैविक उर्वरक जीवित उत्पाद हैं इसलिए इनको संचित करने में सावधानी बरतनी चाहिए।
- नत्रजन स्थिरीकरण एवं फास्फोरस को घुलनशील बनाने वाले दोनों तरह के जैविक खादों को एक साथ प्रयोग करना चाहिए।
- जैविक उर्वरकों को कार्बनिक एवं अकार्बनिक खादों के साथ प्रयोग करना चाहिए।
- जैविक उर्वरक, अकार्बनिक खादों का विकल्प नहीं है परन्तु इनको पूरक के रूप में प्रयोग कर सकते हैं।

जैविक उर्वरक को प्रभावशाली बनाने के उपाय

- जैविक उर्वरक निश्चित रूप से प्रभावी प्रभेदों, पर्याप्त जनसंख्या, घनत्व एवं प्रदूषित करने वाले किसी भी सूक्ष्म जीवों से स्वतन्त्र होना चाहिए।
- फसलों के अनुसार उपयुक्त जैविक उर्वरको को प्रयोग करने कि समाप्ति तिथि से पहले उपयोग कर लेना चाहिए।
- जैविक खाद के पैकेट पर सुझाई गई विधि एवं जानकारी के अनुसार सही समय पर प्रयोग करना चाहिए।
- बीजोपचार के लिए बीजों के साथ चिपकाने वाले पदार्थों का प्रयोग अवश्यक करना चाहिए।
- अम्लीय एवं क्षारीय मृदाओं में जैविक उर्वरकों के प्रयोग के पहले भूमि सुधारकों जैसे चूना एवं जिप्सम का प्रयोग अवश्य करना चाहिए।
- सभी आवश्यक मुख्य एवं गौण पोषक तत्वों कि आपूर्ति सुनिश्चित करनी चाहिए।

ज्ञान–विज्ञान प्रभाग

गन्ने की उपज एवं गुणवत्ता पर सिलिका ग्रेन्यूल्स का प्रभाव

राधा जैन, स्मिता सिंह, अंशु सिंह, नीरू जैन, आर.के. सिंह, आशा गौर, एस.के. शुक्ला एवं अमरेश चन्द्रा
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

गन्ना व्यावसायिक रूप से एक महत्वपूर्ण एवं दीर्घ अवधि की फसल है तथा इसमें शर्करा संचयन की क्षमता अपने ताजा वजन के 25 प्रतिशत मात्रा तक होती है। गन्ने की फसल 12 महीने या इससे भी अधिक समय तक खेतों में खड़ी रहती है। सम्पूर्ण विश्व में गन्ने की खेती का विस्तार अक्षांश 36.4 डिग्री उत्तर से भूमध्य रेखा के 31.0 डिग्री दक्षिण के मध्य उपोष्ण कटिबंधीय एवं उपोष्ण क्षेत्रों के बीच पाया जाता है। भारत में गन्ना एवं शर्करा का उत्पादन 68 टन प्रति हेक्टेयर एवं 6–8 टन प्रति हेक्टेयर है जो अन्य देशों की तुलना में जैसे कि ब्राजील, कोलम्बिया और ऑस्ट्रेलिया की अपेक्षा कम है, जहाँ गन्ना की उत्पादकता 73–85 टन प्रति हेक्टेयर एवं शर्करा उत्पादकता 10–12 टन प्रति हेक्टेयर होती है। गन्ना उत्पादन पद्धतियों में सुधार और गन्ने की उन्नत प्रजातियों के उपयोग के बावजूद भी पिछले कुछ वर्षों में गन्ना एवं शर्करा उत्पादन में संतोषजनक (औसत शर्करा उपज–10.55 प्रतिशत, औसत गन्ना उपज–67.5 टन प्रति हेक्टेयर) परिणाम प्राप्त नहीं हुए है। गन्ने की फसल को अपने प्रारंभिक विकास अवस्था में और शर्करा संचय के दौरान गम्भीर समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

सिलिकॉन

सिलिकॉन पृथ्वी की सतह पर प्रचुर मात्रा में उपलब्ध द्वितीय तत्व है और यह सामान्यतः जटिल सिलिकेट मिनिरल के रूप में पाया जाता है। आजकल सिलिकॉन को पौधों के लिए आवश्यक और उपयोगी तत्व के रूप में माना गया है। कई प्रजातियों के पौधे जैसे चावल, गन्ना, एक बीजपत्री वनस्पतियों एवं साइपरेसी वर्ग के सदस्यों के लिए सिलिकॉन का पभाव लाभकारी पाया गया है। मृदा में सिलिकॉन की मात्रा सिलिकॉन की सान्द्रता से अनुपातित होती है और पौधों मे सिलिकॉन मोनोसिलिसिलिक अम्ल (H_4SiO_4)के रूप में अवशोषित होता है। वर्ष 1965 में, सर्वप्रथम हवाई में गन्ने के लिए सिलिका की उपयोगिता वर्णित की गयी है। सिलिकॉन युक्त यौगिक के उपयोग द्वारा प्रक्षेत्र परिक्षण से गन्ने की फसल के उत्पादन में महत्वपूर्ण बढ़ोत्तरी पायी गयी है। कुछ साक्ष्यों से यह सिद्ध हुआ है कि गन्ने में मृदा से सिलिकॉन का अवशेषण अन्य तत्वों की अपेक्षा अधिक मात्रा में होता है। पोर्टो रिको में 12 महीने की फसल में भूमि के ऊपरी भागों में 379 कि.ग्रा. प्रति हेक्टयर सिलिकॉन, 362 कि. ग्रा. प्रति हेक्टेयर पोटैशियम और 140 कि. ग्रा. प्रति हेक्टेयर नाइट्रोजन पाया गया है, अन्य तत्वों की अपेक्षा सिलिकॉन की मात्रा सबसे अधिक थी।

सिलिका ग्रेन्यूल्स

सिलिकॉन की रोग प्रतिरोधक क्षमता

ज्यादातर पौधों में सिलिकॉन जैविक और अजैविक प्रतिबल या तनाव के प्रभाव को कम करने में लाभकारी पाया गया है। सिलिकॉन के उपयोग से अधिकतर बीमारियाँ जैसे ब्राउन स्पॉट, स्टेम रॉट, खीरे में लीफ स्पॉट इत्यादि से बचाव होता है। सिलिकॉन शर्करा उत्पादन एवं संग्रहण में एक महत्वपूर्ण किण्वक नियामक की तरह भी कार्य करता है।

सिलिकॉन की उर्वरक के रूप में भूमिका

यद्यपि सिलिकॉन मिट्टी में अधिक मात्रा में पाया जाने वाला दूसरा सबसे बड़ा तत्व है, परन्तु अनाकार रूप में उपस्थित होने की वजह से पौधों के लिए पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नहीं होता है। आम तौर पर सिलिकॉन की आपूर्ति एक उर्वरक के रूप में कैल्शियम या पोटैशियम सिलिकेट के द्वारा की जाती है। प्रीवी लाइफ साइंसेज प्रा0 लि0 नवी मुम्बई, भारत, एक प्रौद्योगिकी आधारित कंपनी है जो पेटेंट सिलिकॉन रसायन विज्ञान पर आधारित कृषि यौगिक का विकास करती है। प्रीवी लाईफ साइंसेज द्वारा विकसित सिलिका ग्रेन्यूलस में ऑर्थोसिलिसिलिक अम्ल (0.8 प्रति ात सिलिका) होता है, जिसके कारण पौधे आसानी से सिलिकॉन अवशोषित कर लेते हैं।

प्रयोग का उद्देश्य

सिलिका ग्रेन्यूल्स के प्रभावों का अध्ययन करने हेतु गन्ने की किस्म CoLk94184 पर प्रक्षेत्र परिक्षण किया गया। प्रस्तुत शोध परिक्षण में गन्ने की उपज, विकास, उत्पादकता, शर्करा उत्पादन, उपापचय शर्करा, एस0पी0एस0 और इनवर्टेज किण्वक

पर सिलिका ग्रेन्यूल्स के प्रभाव का अध्ययन किया गया है।

प्रयोग की विधि

गन्ने के विकास, उपज और रस गुणवत्ता जैसी विशेषताओं पर सिलिका ग्रेन्यूल्स के प्रभाव का अध्ययन करने के लिए भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ, प्रायोगिक फार्म में वर्ष 2013–2014 के दौरान प्रक्षेत्र परिक्षण किया गया। अनउपचारित (टी1) के साथ सिलिका की तीन मात्रा 20 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर (टी2), 40 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर (टी3), 80 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर (टी4) और कैल्शियम सिलिकेट 2 टन प्रति हेक्टेयर की दर से (टी5), उपचार का उपयोग किया गया। बुआई के पूर्व प्रक्षेत्र परिक्षण भूमि की मृदा का आंकलन भी किया गया। प्राप्त परिणाम के अनुसार मृदा का पी.एच. 7.08, ई.सी. 0.16, आर्गेनिक कार्बन 0.49 प्रतिशत, उपलब्ध नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटैशियम, 280.89 कि.ग्रा., प्रति हेक्टेयर, 11.09 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर तथा 276.54 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर की मात्रा में पाया गया।

परिक्षण परिणाम

सिलिका ग्रेन्यूल्स के उपयोग से गन्ने के विकास, उपज, रस गुणवत्ता और जैवरासायनिक क्रियाओं जैसी विशेषताओं में सकारात्मक प्रभाव पाया गया।

गन्ना बीज प्रस्फूटन

प्राप्त परिणामों के अनुसार सिलिका ग्रेन्यूल्स के उपयोग से गन्ना बीज अंकुरण में बढ़ोत्तरी पाई गई, सर्वाधिक अंकुरण टी3 (सिलिका ग्रेन्यूल्स 40 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर), उपचार में पाया गया एवं सबसे कम टी5 (कैल्शियम सिलिकेट 2 टन प्रति हेक्टेयर) उपचार में पाया गया।

गन्ने में शुष्क भार संचयन

गन्ने में सिलिका के उपयोग से शुष्क भार विभाजन का संचयन उपचार संख्या टी3 और टी4 (सिलिका ग्रेन्यूल्स 80 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर) में सर्वाधिक डंठल में पाया गया।

गन्ना उपज

परिपक्व गन्ने की फसल के कटाई के उपरान्त गन्ने की लम्बाई, मोटाई एवं उपज में भी बढ़ोत्तरी पाई गई, जो कि टी3 (सिलिका ग्रेन्यूल्स 40 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर) और टी4 (सिलिका ग्रेन्यूल्स 80 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर) उपचार में अधिक पाया गया।

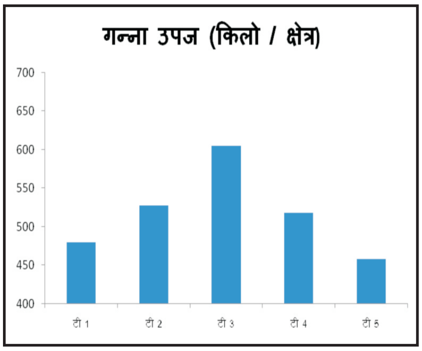

जूस गुणवत्ता

गन्ने के जूस गुणवत्ता परिक्षण में ब्रिक्स, रस की शुद्धता, शर्करा, व्यावसायिक गन्ना शर्करा (सी.सी.एस.) प्रतिशत, शर्करा/रिड्यूसिंग सूगर अनुपात की मात्रा अधिक थी और यह बढ़ोत्तरी टी4 (80 कि.ग्रा. सिलिका ग्रेन्यूल्स प्रति हेक्टेयर) में सबसे ज्यादा पाई गई।

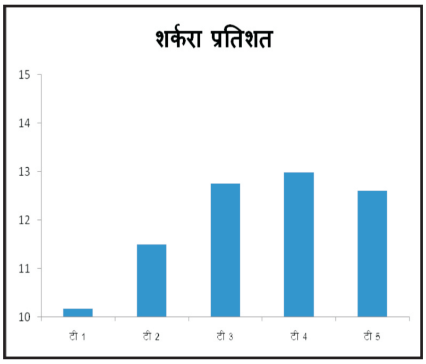

किण्वक कार्यशीलता

इन सभी परिणामों के साथ–साथ गन्ने में एस.पी.एस. एवं एस.ऐ.आई. किण्वक की कार्यशीलता में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन पाया गया जो शर्करा की मात्रा में बढ़ोत्तरी में सहायक सिद्ध होता है।

सॉलयूबेल सिलिका शुष्क भार

अनउपचारित पौधों की अपेक्षा उपचारित पौधों की पत्तियों एवं जडों में सिलिका की मात्रा अधिक पायी गयी, सर्वाधिक सिलिका की मात्रा उपचार संख्या टी2 (सिलिका ग्रेन्यूल्स 20 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर) की पत्तियों में और टी5 (कैल्शियम सिलिकेट 2 टन प्रति हेक्टेयर) की जड़ों में पाया गया।

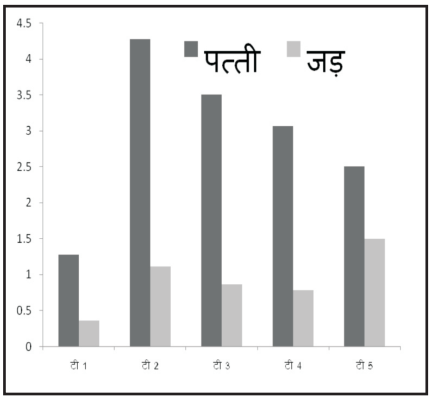

इन सभी परिणामों से ये सिद्ध होता है कि सिलिका ग्रेन्यूल्स के उपयोग से गन्ने एवं शर्करा उत्पादन को बढ़ाने में सहायता प्राप्त होती है। भविष्य में सिलिका फार्मूलेशन का द्रव्य रूप में (सिलिक्सोल) भी, गन्ने की फसल के लिए उपयोग सिद्ध हो सकता है, इस तथ्य से संबंधित शोध कार्य आई.आई.एस.आर., लखनऊ के प्रयोगिक फार्म एवं प्रयोगशाला में सम्पन्न हो रहा है।

उत्तर भारत हेतु संस्तुत उन्नत गन्ना किस्में

संजीव कुमार, पी के सिंह एवं जे सिंह
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

भारत वर्ष मे गन्ना किस्मों के सुधार हेतु कार्य 1912 मे गन्ना प्रजनन सस्थान, कोयंबतूर की स्थापना के साथ प्रारम्भ हुआ। भारत मे जलवायु के आधार पर गन्ना उत्पादक क्षेत्रो को मुख्यतः उष्ण व उपोषण क्षेत्रो मे विभाजित किया जा सकता है। उष्ण जलवायु वाले क्षेत्रो मे तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, कर्नाटक, केरल एवं ओडिशा आदि तथा उपोषण जलवायु वाले क्षेत्रो में उत्तर प्रदेश, बिहार, उत्तराखंड, पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, झारखंड, आसाम आदि आते है। गन्ना किस्मों के विकास एवं बहुस्थानीय मूल्यांकन हेतु पूरे देश में गन्ना उत्पादन क्षेत्र को चार भागो में विभाजित किया गया है। इनमे से दो उपोष्ण जलवायु में तथा दो उष्ण जलवायु में आते है। यह क्षेत्र क्रमशः उत्तर पश्चिम क्षेत्र, उत्तर मध्य एवं उत्तर पूर्वी क्षेत्र, पूर्वी समुद्र तटीय क्षेत्र एवं प्रायद्वीपीय क्षेत्र हैं।

उत्तर पश्चिम क्षेत्र हेतु संस्तुत किस्में

गन्ना उत्पादन की दृष्टि से उत्तर पश्चिम क्षेत्र एक बहुत ही महत्व पूर्ण क्षेत्र है। इस क्षेत्र मे मुख्यतः उत्तर प्रदेश (मध्य एवं पश्चिमी), उत्तराखंड, पंजाब, हरियाणा, राजस्थान आदि राज्य आते है। गन्ना क्षेत्रफल के आधार पर यह एक सबसे बड़ा क्षेत्र है। इस क्षेत्र की औसत उत्पादकता उष्ण जलवायु वाले क्षेत्रो से काफी कम है। अखिल भारतीय समन्वित गन्ना शोध परियोजना के अंतर्गत उन्नत किस्मों का बहुस्थानिक मूल्यांकन किया जाता है। इस मूल्यांकन के आधार पर सर्वोच्च उपज क्षमता एवं उच्च शर्करा वाली गन्ना किस्मों का विमोचन केंद्रीय किस्म विमोचन उपसमिति द्वारा किया जाता है। इस प्रकार से पिछले एक दशक मे इस क्षेत्र के लिए कई उन्नत किस्मों का विकास किया गया है। उनमे से कुछ प्रमुख किस्मों का विवरण नीचे दिया जा रहा है।

'को 98014' (करन–1)

यह एक अगेती किस्म है। जिसको 'को 8316' × 'को 8213' के संकरण से वर्ष 2007 में विकसित किया गया। इस किस्म की गन्ना उपज क्षमता लगभग 75 टन प्रति हेक्टेयर तथा शर्करा की मात्रा लगभग 17.5 प्रतिशत होती है। इसका गन्ना मध्यम पतला, हरापन लिए हुए पीले रंग का होता है। यह लाल सड़न रोग से प्रतिरोधी किस्म है। यह किस्म कम उपजाऊ भूमि व जल भराव की स्थितियो मे भी अच्छी पैदावार देती है।

'को 0238' (करन–4)

यह एक अगेती किस्म है। जिसको 'कोलख 8102' × 'को 775' के संकरण से विकसित किया गया है। इस किस्म को वर्ष 2009 मे केंद्रीय किस्म विमोचन उपसमिति द्वारा इस क्षेत्र में उत्पादन हेतु स्वीकृत प्रदान की गई। इसका गन्ना मध्यम मोटा तथा धूसर भूरे रंग का होता है। इस किस्म की गन्ना पैदावार लगभग 80 टन प्रति हेक्टेयर तथा शर्करा 18.0 प्रतिशत के आस पास होती है। यह लाल सड़न रोग से प्रतिरोधी किस्म है।

'को 0118' (करन–2)

यह एक अगेती किस्म है। इस किस्म को 'को 8347' × 'को 86011' के संकरण से विकसित किया गया है। इस किस्म को वर्ष 2009 मे केंद्रीय किस्म विमोचन उपसमिति द्वारा इस क्षेत्र मे उत्पादन हेतु संस्तुत किया गया। इसका गन्ना मध्यम मोटाई तथा धूसर व बैंगनी रंग का होता है। यह लाल सड़न रोग से प्रतिरोधी किस्म है तथा कम पानी से प्रभावित व जल प्लावित क्षेत्रो हेतु एक सहिष्णु किस्म है। इस किस्म की गन्ना उपज क्षमता लगभग 75 टन प्रति हेक्टेयर तथा शर्करा की मात्रा लगभग 18.5 प्रतिशत होती है।

'को 0124' (करन–5)

यह एक मध्य देर से पकने वाली किस्म है। इस किस्म को गन्ना प्रजनन संस्थान, क्षेत्रीय केंद्र, करनाल द्वारा वर्ष 2010 में 'को 89003' के सामान्य संकरण से विकसित किया गया। इसका गन्ना मध्यम मोटाई का तथा पीले रंग लिए हुए होता है। इस किस्म की गन्ना उपज क्षमता लगभग 75 टन प्रति हेक्टेयर तथा शर्करा की मात्रा लगभग 18.0 प्रतिशत होती है। यह लाल सड़न रोग से प्रतिरोधी किस्म है।

'को 0237' (करन–8)

यह एक अगेती किस्म है। इसको 'को 93016' के सामान्य संकरण से विकसित किया गया है। यह किस्म वर्ष 2010 मे केंद्रीय किस्म विमोचन उपसमिति द्वारा इस क्षेत्र में उत्पादन हेतु अनुमोदित की गई।

इस का गन्ना मध्यम मोटाई का तथा पीले रंग होता है। यह लाल सड़न प्रतिरोधी किस्म है। इस की उपज क्षमता लगभग 70 टन प्रति हेक्टेयर तथा शर्करा की मात्रा लगभग 18.75 प्रतिशत होती है।

'को पन्त 90223'

यह एक मध्य देर से पकने वाली किस्म है। इसको गोविंद बल्लभ पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पंतनगर द्वारा 'बी ओ 91' के सामान्य संकरण से विकसित किया गया है। इसकी गन्ना उपज क्षमता लगभग 70–75 टन प्रति हेक्टेयर होती है। इसका गन्ना मध्यम मोटाई का होता है। यह लाल सड़न रोग से प्रतिरोधी किस्म है। इस किस्म को वर्ष 2001 मे केंद्रीय किस्म विमोचन उपसमिति द्वारा इस क्षेत्र में उत्पादन हेतु स्वीकृत प्रदान के गई।

'कोशा 91230' (रसीली)

यह एक मध्य देर से पकने वाली किस्म है। इस किस्म को उत्तर प्रदेश गन्ना शोध परिषद, शाहजहाँपुर द्वारा 'कोशा 775' × 'को 1148' के संकरण से विकसित किया है। इसका गन्ना मध्यम पतला व हरे पीले रंग का होता है। यह लाल सड़न रोग से प्रतिरोधी किस्म है।

'कोशा 96275' (स्वीटी)

यह एक मध्य देर से पकने वाली किस्म है। इसको 'को 8119' × 'को 62198' के संकरण से विकसित किया गया है। इस किस्म को वर्ष 2007 मे केंद्रीय किस्म विमोचन उपसमिति द्वारा इस क्षेत्र में उत्पादन हेतु अनुमोदित किया गया। यह लाल सड़न के प्रति मध्यम रोग रोधी है। इसकी गन्ना उपज क्षमता लगभग 80 टन प्रति हेक्टेयर तथा शर्करा 17.5 प्रतिशत होती है। इसका गन्ना मध्यम पतला तथा हल्का पीलेपन लिए हुए हरे रंग का होता है।

'कोशा 96268' (मिठास)

यह एक अगेती किस्म है। इसको 'को 1158' × 'को 62198' के संकरण से विकसित किया गया है। इस किस्म को वर्ष 2007 मे केंद्रीय किस्म विमोचन उपसमिति द्वारा इस क्षेत्र में उत्पादन हेतु अनुमोदित की गई। यह लाल सड़न रोग से मध्यम प्रतिरोधी किस्म है। इसका गन्ना मध्यम पतला तथा हल्का पीलेपन लिए हुए हरे रंग का होता है। इसकी गन्ना उपज क्षमता लगभग 70 टन प्रति हेक्टेयर तथा शर्करा 18 प्रतिशत होती है।

'कोह 119'

यह एक मध्य देर से पकने वाली किस्म है। इस किस्म को चौधरी चरण सिंह कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय के क्षेत्रीय केंद्र, उचानी द्वारा 'को 7704' के सामान्य संकरण द्वारा विकसित किया गया। यह किस्म लाल सड़न व कंडुआ रोग के प्रति अवरोधी है। इसकी गन्ना उपज क्षमता 80–85 टन प्रति हेक्टेयर तथा शर्करा 17.5 प्रतिशत होती है।

'कोपंत 97222'

यह एक मध्य देर से पकने वाली किस्म है। इस किस्म को 'कोपंत 84212' के सामान्य संकरण से विकसित की गयी है। इसकी गन्ना उपज क्षमता लगभग 80–85 टन प्रति हेक्टेयर तथा शर्करा 17.0 प्रतिशत होती है। इसका गन्ना हल्के हरे रंग का व मध्यम मोटाई का होता है। यह लाल सड़न के प्रति मध्यम रोग रोधी है।

'कोशा 94270' (श्वेता)

यह एक मध्य देर से पकने वाली किस्म है। इस किस्म को 'को 7704' × एम एस 68/47' के संकरण से विकसित किया गया है। यह किस्म लाल सड़न व कंडुआ रोग के प्रति अवरोधी है। इस किस्म को वर्ष 2005 मे केंद्रीय किस्म विमोचन उपसमिति द्वारा इस क्षेत्र में उत्पादन हेतु अनुमोदित की गई। इसकी उपज क्षमता लगभग 80–85 टन प्रति हेक्टेयर तथा शर्करा 17.0 प्रतिशत होती है। इसका गन्ना पतला तथा हल्का पीलेपन लिए हरे रंग का होता है।

'कोशा 95255' (रचना)

यह एक अगेती किस्म है। इस किस्म को 'को 1158' × 'को 62198' के संकरण से विकसित किया गया है। इस किस्म को वर्ष 2004 मे केंद्रीय किस्म विमोचन उपसमिति द्वारा इस क्षेत्र में उत्पादन हेतु अनुमोदित किया गया। इसकी गन्ना उपज क्षमता लगभग 70 टन प्रति हेक्टेयर तथा शर्करा की मात्रा 17.5 प्रतिशत है।

'कोह 92201'

यह एक अगेती किस्म है। यह किस्म 'को 07704' के सामान्य संकरण से विकसित की गयी है। इस किस्म को वर्ष 2001 मे केंद्रीय किस्म विमोचन उपसमिति द्वारा इस क्षेत्र में उत्पादन हेतु अनुमोदित की गई। इस किस्म की उपज क्षमता लगभग 70 टन प्रति हेक्टेयर है तथा शर्करा मात्रा लगभग 18.2 प्रतिशत है।

'कोजे 20193'

यह एक मध्य देर से पकने वाली किस्म है जिसको केंद्रीय किस्म विमोचन उपसमिति द्वारा वर्ष 2007 में उत्तर पश्चिम क्षेत्र हेतु अनुमोदित किया गया। यह किस्म सामान्य तथा देर से बुआई वाली दशाओ हेतु उपयुक्त पायी गई। इस किस्म को अच्छा गुड़ उत्पादन हेतु भी प्रयोग किया जा सकता है।

'को 05011' (करन–9)

यह एक मध्य देर से पकने वाली किस्म है । इसका गन्ना मध्यम मोटाई का होता

है। यह किस्म 'कोशा 8436' × 'को 89003' के संकरण से विकसित की गई है। यह प्रजाति वर्ष 2012 मे उत्तर पश्चिम क्षेत्र हेतु केन्द्रीय किस्म विमोचन उपसमिति द्वारा अनुमोदित की गई। इसकी पेड़ी बहुत ही उत्तम होती है। इस किस्म की गन्ना पैदावार लगभग 75–80 तन प्रति हेक्टेयर होती है। इसमे शर्करा की मात्रा लगभग 17–18 प्रतिशत होती है। यह किस्म लाल सड़न रोग के प्रति मध्यम अवरोधी है।

'कोह 128'

यह एक मध्य देर से पकने वाली किस्म है। इसको 'कोह 70' × 'कोशा 510' के संकरण से विकसित किया गया है। यह किस्म 2012 मे केंद्रीय किस्म विमोचन समिति द्वारा उत्तर पश्चिम क्षेत्र हेतु अनुमोदित की गई। इसकी गन्ना उपज क्षमता लगभग 80–85 टन प्रति हेक्टेयर तथा शर्करा की मात्रा लगभग 16.5–17.5 प्रतिशत होती है। यह किस्म लाल सड़न रोग के प्रति मध्यम अवरोधी है। इस किस्म की पेड़ी उपज क्षमता अधिक होती है।

'कोपीके 05191'

यह एक उच्च उपज क्षमता वाली अगेती किस्म है जिसको वर्ष 2012 मे केंद्रीय किस्म विमोचन उपसमिति द्वारा उत्तर पश्चिम क्षेत्र हेतु अनुमोदित किया गया है। इसको 'को 1158' के सामान्य संकरण से विकसित किया गया है। इसकी गन्ना उपज क्षमता लगभग 85–90 टन प्रति हेक्टेयर तथा शर्करा लगभग 17 प्रतिशत होती है। यह प्रजाति सूखा तथा जलप्लावित क्षेत्रो के लिए भी उपयुक्त पायी गई है। इसका गन्ना मध्यम मोटा होता है। यह किस्म लाल सड़न रोग के प्रति मध्यम अवरोधी है।

'को 05009' (करन–10)

इस किस्म को गन्ना प्रजनन संस्थान, क्षेत्रीय केंद्र, करनाल से विकसित किया गया है। यह एक अगेती किस्म है। जिसको केन्द्रीय किस्म विमोचन उपसमिति द्वारा वर्ष 2013 मे उत्तर पश्चिम क्षेत्र हेतु अनुमोदित किया गया है। इसकी गन्ना उपज क्षमता लगभग 70–75 टन प्रति हेक्टेयर है तथा शर्करा प्रतिशत लगभग 17–18 प्रतिशत होती है। यह किस्म लाल सड़न रोग के प्रति मध्यम अवरोधी है।

उत्तर मध्य–क्षेत्र हेतु अनुमोदित किस्मे

उत्तर मध्य क्षेत्र मुख्यतः पूर्वी उत्तरप्रदेश, बिहार, झारखंड एवं पश्चिमी बंगाल आदि राज्यो के गन्ना उत्पादन क्षेत्रो को मिलाकर बनाया गया है। इसमे गन्ने की मुख्य समस्या जलप्लावन तथा लाल सड़न रोग है, जिस कारण से इस क्षेत्र मे गन्ना उत्पादकता कम है। इन समस्याओ को ध्यान मे रखते हुए इस क्षेत्र मे किस्मों का विकास किया जा रहा है।

'को 87263' (सरयू)

यह एक अगेती किस्म है जिसको केन्द्रीय किस्म विमोचन उपसमिति द्वारा वर्ष 2000 मे उत्तर मध्य क्षेत्र हेतु अनुमोदित किया गया। इसको 'को 312' × 'को 6806' के संकरण से विकसित किया गया है। यह किस्म जलप्लावित क्षेत्रो हेतु उपयुक्त पायी गई है। यह किस्म लाल सड़न रोग के प्रति मध्यम अवरोधी है। इसकी गन्ना उपज क्षमता लगभग 65–70 टन प्रति हेक्टेयर तथा शर्करा की मात्रा लगभग 17 प्रतिशत है।

'को 87268' (मोती)

यह एक अगेती किस्म है जिसको केन्द्रीय किस्म विमोचन उपसमिति द्वारा वर्ष 2000 मे उत्तर मध्य क्षेत्र हेतु अनुमोदित किया गया। इसको 'बी ओ 91' × 'को 62399' के संकरण से विकसित किया गया है। यह किस्म जलप्लावित क्षेत्रो हेतु उपयुक्त पायी गई है। यह किस्म लाल सड़न रोग के प्रति मध्यम अवरोधी है। इसकी गन्ना उपज क्षमता लगभग 75–80 टन प्रति हेक्टेयर तथा शर्करा की मात्रा लगभग 16.5–17.5 प्रतिशत है।

'को 89029' (गंडक)

इस अगेती किस्म को केंद्रीय किस्म विमोचन उपसमिति द्वारा वर्ष 2001 मे उत्तर मध्य क्षेत्र के लिए अनुमोदित किया गया। यह किस्म 'बी ओ 91' के सामान्य संकरण से विकसित की गई है। यह किस्म लाल सड़न रोग के प्रति मध्यम अवरोधी तथा जलप्लावित क्षेत्रो हेतु उपयुक्त पायी गई। इसकी गन्ना उपज क्षमता लगभग 70 टन प्रति हेक्टेयर तथा रस मे शर्करा मात्रा लगभग 16.5 प्रतिशत होती है।

'को से 95422' (रसभरी)

जैसा इसके नाम से विदित होता है कि इस अगेती किस्म मे रस की मात्रा तथा रस मे शर्करा की मात्रा अन्य दूसरी किस्मों से अधिक पायी जाती है। इस किस्म को 'बी ओ 91' × 'को 453' के संकरण से विकसित किया किया गया है। इस किस्म को केंद्रीय किस्म विमोचन उपसमिति द्वारा वर्ष 2001 मे उत्तर मध्य क्षेत्र के लिए संस्तुत किया गया। इसकी गन्ना उपज क्षमता लगभग 65–70 टन प्रति हेक्टेयर होती है। यह किस्म लाल सड़न रोग के प्रति मध्यम अवरोधी पायी गई। इस किस्म मे शर्करा की मात्रा लगभग 17.5–18.0 प्रतिशत तक पायी गई है।

'को से 96234' (रश्मि)

यह एक अगेती किस्म है जिसको वर्ष 2004 मे केंद्रीय किस्म विमोचन उपसमिति द्वारा उत्तर मध्य क्षेत्र मे खेती हेतु संस्तुत किया गया। इसको 'सी पी 44–101' ×

'को 1148' के संकरण से विकसित किया गया है। इसकी गन्ना उत्पादकता लगभग 65 टन प्रति हेक्टेयर तथा रस मे शर्करा मात्रा 16.5–17.5 प्रतिशत तक पायी गई है। इस किस्म मे लाल सड़न रोग के प्रति मध्यम अवरोधकता पायी गई है।

'कोलख 94184' (बीरेन्द्र)

इस अगेती किस्म को 'कोलख 8001' से स्वपरागण विधि से विकसित किया गया है। इस किस्म को केंद्रीय किस्म विमोचन उपसमिति द्वारा वर्ष 2008 मे उत्तर मध्य क्षेत्र हेतु संस्तुत किया गया है। इस किस्म का गन्ना मध्यम पतला होता है। इसके रस मे उच्च शर्करा मात्रा (17.5–18.5 %) पायी जाती है तथा रेशा औसतन अधिक होता है। यह किस्म जलप्लावित क्षेत्रो मे भी अच्छा प्रदर्शन करती है। इस किस्म की पेड़ी भी अच्छी पैदावार देती है। इस किस्म की गन्ना उपज क्षमता लगभग 75 टन प्रति हेक्टेयर होती है। यह किस्म लाल सड़न रोग से माध्यम अवरोधी पायी गई है।

'को 0232' (कमल)

इस अगेती किस्म को वर्ष 2009 मे केंद्रीय किस्म विमोचन उपसमिति द्वारा उत्तर मध्य क्षेत्र हेतु संस्तुत किया गया। इसको 'कोलख 8102' × 'को 87267' के संकरण से विकसित किया गया है। इस किस्म शर्करा के मात्रा लगभग 16.5 प्रतिशत तक पायी गई है। इसकी गन्ना उत्पादकता लगभग 65–70 टन प्रति हेक्टेयर तक होती है। यह किस्म लाल सड़न रोग से मध्यम अवरोधी है।

'कोसे 01421' (इमरती)

यह एक अगेती किस्म है जिसको 'कोशा 8119' × 'को 62198' के संकरण से विकसित किया गया है। इसकी गन्ना उपज क्षमता लगभग 65 टन प्रति हेक्टेयर तक होती है। इस किस्म को केंद्रीय किस्म विमोचन उपसमिति द्वारा वर्ष 2013 मे उत्तर मध्य क्षेत्र हेतु संस्तुत किया गया है। यह किस्म लाल सघ्न रोग के प्रति मध्यम अवरोधी पायी गई है।

'बी ओ 128' (प्रमोद)

यह एक मध्य–देर से तैयार होने वाली किस्म है जिसको 'बीओ 85' × 'बीओ 43' के संकरण से गन्ना अनुसंधान संस्थान, पूसा, बिहार द्वारा विकसित किया गया है। इस किस्म को केंद्रीय किस्म विमोचन उपसमिति द्वारा वर्ष 2001 मे उत्तर मध्य क्षेत्र मे खेती हेतु संस्तुत किया गया। इस किस्म के रस मे शर्करा मात्रा लगभग 17.5% तक होती है। इसकी औसत गन्ना उत्पादकता लगभग 70.0 टन प्रति हेक्टेयर तक होती है।

'कोसे 96436' (जलपरी)

यह एक मध्य–देर से तैयार होने वाली किस्म है। इस किस्म की केंद्रीय किस्म विमोचन उपसमिति द्वारा वर्ष 2004 मे उत्तर मध्य क्षेत्र के लिए संस्तुत करने हेतु पहचान की गई। इस के रस मे शर्करा मात्रा लगभग 16.5–17.5 प्रतिशत तक होती है। इसकी औसत गन्ना उपज क्षमता लगभग 65.0 टन प्रति हेक्टेयर तक होती है। यह किस्म लाल सड़न रोग के प्रति मध्यम अवरोधी है। यह किस्म जलप्लावित क्षेत्रो हेतु भी संस्तुत की गई है।

को 0233 (कोसी)

यह एक मध्य–देर से तैयार होने वाली किस्म है। यह किस्म क्षेत्रीय केंद्र, मोतीपुर से विकसित की गई है। इस किस्म की केंद्रीय किस्म विमोचन उपसमिति द्वारा वर्ष 2009 मे उत्तर मध्य क्षेत्र के लिए संस्तुत की गई। इस के रस मे शर्करा मात्रा लगभग 16.5–17.5 प्रतिशत तक होती है। इसकी औसत गन्ना उपज क्षमता लगभग 65–70 टन प्रति हेक्टेयर तक होती है। यह किस्म लाल सड़न रोग के प्रति मध्यम अवरोधी है। यह किस्म जलप्लावित क्षेत्रो हेतु भी संस्तुत की गई है।

चैते गुड़ बैसाखे तेल।
जेठ क पंथ असाढ़ क बेल।।
सावन साग न भादों दही।
क्कार दूध नहिं कातिक मही।।
अगहन जीरा पूसै धना।
माघै मिश्री फागुन चना।

चैत में गुड़, बैसाख में तेल, जेठ में रास्ता चलना, आसाढ़ में बेल, सावन में साग, भादों में दही, क्वार में दूध, कातिक में मट्ठा, अगहन में जीरा, पूस में धनिया, माघ में मिश्री और फागुन मे चना हानिकारक हैं।

गेहूँ फसल का कटाई के बाद भण्डारण एवं प्रबंन्धन

पंकज कुमार सिंह, राजीव कुमार सिंह एवं रामजीत
कृषि विज्ञान केन्द्र, सोहाँव, बलिया

भारत में उगाई जाने वाले खाद्यानों में गेहूँ का प्रमुख स्थान है। 1960 के दौरान भारत मे हरित क्रान्ति शुरू हुई जिसका सबसे ज्यादा असर गेहूँ मे देखा गया 1960 के दशक के दौरान भारत मे खाने को अनाज नहीं था लेकिन आज भारत मे अनाज रखने की जगह नही है, इसका श्रेय भारतीय कृषि वैज्ञानिकों को जाता है। विश्व का 36 प्रतिशत गेहूँ का उत्पादन एशिया में होता है। वर्ष 2011–12 के दौरान भारत में गेहूँ का उत्पादन 93.96 मिलियन टन था जो पूरे विश्व का 15 प्रतिशत है। जो वर्ष 1950–51 के दौरान 6.45 मिलियन टन की तुलना में सन् 2012–13 में लगभग 14 गुणा वृद्धि हुई है। यद्यपि इस गुणात्मक उत्पादन ने राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा को नया आयाम प्रदान किया लेकिन कटाई के बाद उचित भण्डारण को लेकर चिताएं भी होती है। एक अनुमान के अनुसार भारत के खाद्यान्न उत्पादन का 15 प्रतिशत उत्पाद उचित भण्डारण तथा परिवहन न मिल पाने से नष्ट हो जाता है। भारत के लगभग 40 प्रतिशत गॉव अभी भी पक्की सड़कों से नहीं जुड़े है। पक्की सड़के न होने के कारण भी अनाज बर्बाद होता है।

फसल पकने के साथ ही कृषकों की समस्याएं भी बढ़ने लगती हैं क्योंकि कटाई के दौरान दाने झड़ने, चिड़ियों द्वारा, कीटों द्वारा खेत में एवं भण्डारण में नुकसान की भारी आशंका रहती हैं। दूसरी तरफ जल्दी कटाई से दानो में नमी अधिक होती है जिसमें कवकों की उत्पत्ति एवं खाद्य गुणवत्ता कम होने की सम्भावना बनी रहती है। कटाई के बाद नुकसान को कम करने के लिए उपलब्ध तकनीकों जैसे समय से कटाई, उचित मशीनों का प्रयोग, सुरक्षित भंडारण तथा कीटौं से सुरक्षा के उपाय अपनाकर कम किया जा सकता है। लेकिन इसमे सबसे बड़ी बाधा कटाई के बाद प्रबंधन एवं भण्डारण की जानकारी का अभाव है।

कटाई

गेहूॅ के एक बड़े हिस्से की कटाई मानव द्वारा दरांती से की जाती है जिसमें सतह से 3–6 सें.मी. उपर से कटाई की जाती है। कटाई का समय एवं विधि कुल फसल उत्पादन के प्रमुख कारण है। कृषकों कटाई के बाद दानों को उचित स्तर तक सुखाना चाहिए जब तक दानों की नमी 10 प्रतिशत न रह जाए। इसमें खेत से काटे हुए गेहूॅ के पौधौं को छोटे– छोटे गठ्ठरों में बांधकर खेत में दो तीन दिन तक सूखने के लिए छोड़ दिया जाता है। कटाई का उचित समय एक महत्वपूर्ण कारक है अतः उचित परिपक्वता समय का ध्यान रखना चाहिए जिससे दानों को झड़ने या गिरने से बचाया जा सके। अलग–अलग किस्मो को अलग – अलग रखना चाहिए जिससे किस्मों की शुद्धता बनी रहे। अधिक एवं सीधे धूप में सुखाने से भी बचना चाहिए। इसके बाद दानों को साफ बोरों में भरना चाहिए जिससे परिवहन में हानि न हो।

कटाई के बाद के नुकसान

गेहूॅ में कुल उत्पादन का लगभग 8 प्रतिशत भाग कटाई के बाद नष्ट हो जाता है, जो मुख्यतः जीव जन्तुओं द्वारा होता है। उचित तरीकों कों अपनाकर इन हानियों को कम किया जा सकता है। जैसे कटाई के बाद दानों को तुरन्त सुखाना, एक समान शुष्क्ता, उचित मड़ाई एवं साफ सफाई जिससे कीटों व चिड़ियों के आक्रमण को रोका जा सके तथा उचित नमी व कीट नियन्त्रण विधियों को अपनाना, उचित हवा का प्रवन्ध तथा ढेरियों को समयबद्ध चरणों में हिलाना जिससे कीड़े न लगे इन सब तरीकों को अपनाकर फार्म एवं बाजार स्तर पर होने वाली हानियों को कम किया जा सकता है।

प्रसंस्करण

गेहूॅ की मूल्य वृद्धि के साथ साथ कटाई उपरांत प्रबंन्धन एवं भण्डारण के खर्चे को कम करते है। गेहूॅ को विभिन्न रूपों में प्रयोग किया जाता है जैसे आटा, मैदा, सूजी, दलिया एवं जानवरों के लिए चोकर भूसी आदि।

प्राचीन काल से ही गेहूॅ के दानों को फर्श पर पतली परत मे फैलाकर धूप में सुखाने की प्रथा चली आ रही है जो आज भी बहुत लोकप्रीय है। गर्म हवाओं वाली मशीने जैसे बिन ड्रायर, बैच ड्रायर एवं सतह प्रवाह ड्रायर भी गेहूॅ को सुखाने के लिए तैयार की गई है। गेहूॅ की अषुद्धियों जैसे कंकड़, पत्थर, रेत, धूल, दूसरी फसलो से अलग करके गेहूॅ को साफ किया जाता है बाद में गेहूॅ को धुल दिया जाता है। दानों की सफाई करने के बाद ग्लूटन का गुण सुरक्षित रखने के लिए एक उष्णजलीय उपचार देते है जिसमें नमी एवं ताप को एक साथ व्यवस्थित किया जाता है।

भारत में लगभग 1100 बड़ी मिल और 3 लाख छोटी आटा मिलें हैं जो गेहूॅ को खाने योग्य उत्पादों में बदलते है। प्रसंस्करण से फसल की अवधि बढ़ाने, खराब होने से बचाने एवं मूल्य वर्धन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। दो प्रकार के आधारीय मिल चलन में है। पहले प्रकार मे पत्थर से पीसा जाता जिसमें पूरा गेहूँ चोकर भूसी एवं अंकुर के साथ पिस जाता है दूसरे प्रकार में आधुनिक रोलर मिल से पिसाई की जाती है जिसमें अधिक मात्रा में आटा प्राप्त होता है और इसमें भूसी नहीं पाया जाता है।

प्रसंस्करण के लिए दो प्रकार के मिल का प्रचलन है। एक पारम्परिक पत्थरों से पिसाई जिसमें गेहूॅ को छिलके सहित पीसा जाता है तथा दूसरा आधुनिक रोलर आटा मिल जिसमें आटे का मुख्य भाग दाने के भ्रूणपोश के बिना छिलकों एवं भूसी में प्राप्त होता है। पिसाई के बाद उत्पाद को सुरक्षित थैलो में भरकर ठण्डे एवं सूखे स्थान पर भण्डार करते है। गेहूॅ के आटे में कैल्शियम कार्बोनेट, विटामिन ए और डी, थियामिन, रिबोफलेविन इत्यादि पोषक तत्व प्रचुर मात्रा में पाये जाते है।

भण्डारण

भारत में देखा गया है कि गेहूॅ की फसल का बड़ा हिस्सा किसान अपने जानवरों एवं बीज के लिए रखते है। किसान अपनी उपज को भण्डार करने के लिए साधारण भण्डारों का प्रयोग करते है जो टिन, मिट्टी, ईटों के बने होते है। खाने के लिए गेहूॅ का भण्डारण बोरों मे भरकर कमरों, ड्रम आदि मे किया जाता है या फार्म पर ढेर बनाकर रखा जाता है जहॉ उचित फर्श तथा बन्द खिड़की जिसमें दरवाजे नहीं होते। विभिन्न प्रकार के जीव, फॅफूदी, चूहे, गिलहरी, कीट, पशुओं, नमी, वर्षा, गर्मी आदि से उपज को बचाया जा सकता है। भण्डारण संरचना आकार एवं प्रकार में विभिन्न प्रकार की हो सकती है जैसे आन्तरिक, बाह्य भण्डार, भूमिगत, भूमि के उपर, वायुरहित संरचना इत्यादि। छोटे कमरे, बखारी, पूसा बिन तथा पंतनगर कुठला आदि कुछ आधुनिक भण्डारण के साधन हैं।

भण्डारण के लिए ग्रामीण गोदामों का निर्माण हो

ग्रामीण क्षेत्रों में गोदाम बनाने के लिए ग्रामीण विकास के बजट का हिस्सा ग्रामीण गोदाम बनाने पर खर्च करने का प्रावधान किया जाए तथा लगभग 50 से 200 टन क्षमता के गोदाम प्रत्येक ग्राम पंचायत में होना आवश्यक कर दिया जाये। पी. पी. पी. माडल को प्रोत्साहन देने के लिए अच्छी सब्सिडी का प्रबन्ध किया जाए। हालॉकि यह योजना 2001 से नाबार्ड एंव एन.सी. डी.सी. द्वारा लागू किया जा रहा है। इससे कई फायदे होगें एक तो किसानों को अनाज के भंडारण और ग्रामीण उपभोक्ताओं को राशन का अनाज मिलने में सहूलियत होगी साथ ही ग्रामीण इंफ्रास्ट्क्चर मजबूत होगा । गोदाम के निर्माण में खर्च होने वाली राशि से सैकड़ों ग्रामीणें को रोजगार मिल सकेगा। गॉव का उत्पादन गॉव में ही खरीदा जायेगा जिससे गॉव के किसानों की फसल की विपणन लागत भी कम हो जायेगी तथा किसानों का शुद्ध मुनाफा बड़ जायेगा। किसानों को अधिक लाभ मिलेगा। साथ ही भण्डारण की सही जानकारी किसानों को पता रहेगी जिससे किसानों को लाभ मिल सकेगा।

अतं में यह निष्कर्ष निकलता है कि उत्पादन में बढ़ोतरी के साथ साथ उचित कटाई के बाद प्रबंधन तथा भण्डारण के मूलभूत संस्थाओं को विकसित करने की आवश्यकता है जिससे भविष्य की राष्टीय खाद्य सुरक्षा को सुनिश्चित किया जा सके।

बाधा कुदारी खुरपी हाथ।
लाठी हंसुआ राखै साथ।
काटे घास और खेत निरावै।
सौ पूरा किसान कहलावै।।

हाथ में कुदाल, खुरपी, हंसुआ और लाठी रखकर खेत निराने वाला और घास काटने वाला ही पक्का किसान कहलाता है।

ज्ञान–विज्ञान प्रभाग

पॉली मल्च तकनीक–मैरो कद्दू के लिए लाभकारी

वी.पी. सिंह[1] वीरेन्द्र कुमार[2] एवं ललित भट्ट[3]
[1]सह प्राध्यापक (उद्यान विज्ञान), गो.ब. पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पंतनगर (उत्तराखण्ड)
[2]सहायक प्राध्यापक (कृषि), उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी (उत्तराखण्ड)
[3]सहायक प्राध्यापक (सब्जी विज्ञान), गो.ब. पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पंतनगर (उत्तराखण्ड)

मैरो कद्दू या 'समर स्क्वैश' एक प्रमुख कद्दू वर्गीय सब्जी फसल है। इसको चप्पन कद्दू या विलायती कद्दू के नाम से भी जाना जाता है। यह कम गर्म तथा पाला रहित स्थान में उगने वाली और शीघ्र उपज देने वाली फसल है। मैरो कद्दू का पौधा झाड़ीनुमा एक वर्षीय होता है।

इसका उद्गम स्थान अमेरिका के उपोष्ण क्षेत्र है। भारत में यह कम तापमान वाले क्षेत्रों जैसे उत्तर पश्चिमी पर्वतीय क्षेत्रों के मध्यम ऊँचाई वाले भागों के लिए अधिक उपयुक्त है। उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों में इसकी व्यावसायिक खेती अभी शुरूआती दौर में है परन्तु इसकी आसान काश्त, बेमौसमी व कम समय की फसल, उच्च उत्पादन क्षमता तथा प्रति इकाई क्षेत्रफल से अधिक आय आदि गुणों के कारण इसके क्षेत्रफल विस्तार की असीम सम्भावनायें हैं। ग्रीष्मकाल में इसकी उपज बाजार में सबसे पहले उपलब्ध होने के कारण इसका मूल्य अधिक मिलता है एवं कृषकों को अच्छा आर्थिक लाभ प्राप्त होता है। प्रदर्शनों के परिणाम दर्शाते हैं कि उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों में इसकी उत्पादकता, उत्पादन क्षमता से काफी कम है। पर्वतीय क्षेत्रों में इसकी काश्त का समय मार्च से अगस्त तक है परन्तु अगेती फसल के लिए शुरूआत में कम तापमान पौधों की वृद्धि को बाद में मृदा में नमी की कमी व तापमान में उतार–चढ़ाव (temperature fluctuation) वृद्धि व उपज को प्रभावित करते हैं। पर्वतीय क्षेत्रों की मृदाओं में वाष्पीकरण व अन्तःस्त्रवण दर अधिक होने के कारण सिंचाई के लिए उपलब्ध जल के दक्षतापूर्ण उपयोग के अलावा भूमि से जल के वाष्पीकरण को रोककर नमी संरक्षण पर भी विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। अतः नमी संरक्षण के लिए कृषि विज्ञान केन्द्र, ग्वालदम (चमोली) के वैज्ञानिकों ने उत्तराखण्ड में सर्वप्रथम वर्ष 2005 में मैरो कद्दू की व्यावसायिक खेती प्लास्टिक मल्च के अन्तर्गत कराने हेतु कृषक प्रक्षेत्रों पर चमोली जनपद की पिण्डर घाटी में प्रर्दशन लगवाये। प्रर्दशनों के उत्साह जनक परिणाम प्राप्त हुए जिससे अन्य जनपदों के काश्तकार भी इस तकनीक को अपनाने के लिए प्रेरित हुए हैं। इस तकनीक की सफलता को देखते हुए कृषि विज्ञान केन्द्र, ग्वालदम (चमोली) ने प्लास्टिक मल्च के अन्तर्गत मैरो कद्दू की वैज्ञानिक खेती की विधि विकसित की, जिसका विवरण प्रस्तुत लेख में दिया गया है।

उन्नत किस्में

संकर – डुकाटो, सियोल ग्रीन, हिमांशू, बुलम हाऊस, पूसा अलंकार

सामान्य – आस्ट्रेलियन ग्रीन

बीज दर, पौध तैयार करना व रोपाई

संकर किस्मों के 3–4 कि.ग्रा. तथा सामान्य किस्मों के 6–7 कि.ग्रा. बीज प्रति हैक्टेयर की आवश्यकता होती है। अनुपचारित बीजों को बोने से पूर्व कवकनाशी रसायन कार्बेन्डाजिम या थायराम की 2.5 ग्राम मात्रा प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करके बुवाई करने से बीज जनित रोगों से बचा जा सकता है। सामान्यतः

अगेती फसल के लिए मैरो कद्दू की पॉली बैग में तैयार होती नर्सरी

पर्वतीय क्षेत्रों में कृषक मैरो कद्दू की सीधी बुवाई खेतों में थाले बनाकर मार्च माह में करते हैं। परन्तु इस विधि में बीज अधिक लगता है व किसी कारणवश बीज के न जमने पर पौध संख्या कम होने से उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है तथा कृषक अगेती फसल के लाभ से भी वचिंत रह जाते हैं। अगेती फसल के लिए मैरो कद्दू की पौध उगाने के लिए पर्वतीय क्षेत्रों में क्षेत्र विशेष की भौगोलिक व जलवायवीय परिस्थितियों के अनुसार जनवरी–फरवरी माह में इसके बीज पॉली बैग (15×10 से.मी. या 10×7 से.मी.) या प्रो ट्रे सेल (18–20 घन से.मी. आयतन) में बोये जाते हैं। इन पॉली बैगों में कम्पोस्ट/वर्मी कम्पोस्ट व बलुई दोमट मिट्टी का मिश्रण 1:1 के अनुपात में एवं प्रो ट्रे में कोकोपीट, वर्मीक्यूलाइट एवं परलाइट (3:1:1) का मिश्रण भरते हैं। प्रो ट्रे के लिए यदि कृषकों के पास उक्त सामग्री उपलब्ध नहीं है तो वे वर्मी कम्पोस्ट एवं दोमट मिट्टी का 1:1 के अनुपात में प्रयोग कर सकते हैं। अगेती फसल के लिए मैरो कद्दू के बीजों की

बुवाई से पूर्व इनका अंकुरण कराना आवश्यकता होता है अन्यथा जनवरी–फरवरी में कम तापमान के कारण अंकुरण देरी से होता है। अंकुरण कराने के लिए बीजों को सर्वप्रथम गुनगुने पानी में भिगोते हैं तत्पश्चात् उन्हें एक सूती कपड़े या टाट के पतले कपड़े में लपेटकर बिना सड़ी हुई गोबर की खाद के अन्दर रखते हैं। जिससे की बीज को अंकुरण के लिए पर्याप्त गर्मी, तापमान एवं नमी मिलती रहे। इन अंकुरित बीजों की पहले से भरे हुए पॉली बैगों (संकर किस्म–1 बीज व सामान्य किस्म–2 बीज प्रति बैग) या प्रो ट्रे (1 बीज प्रति सेल) में बुवाई कर देते हैं। इस प्रकार बोये गये पाली बैगों को एक तिहाई से आधे भाग तक कच्चे गोबर की जमीन पर एक समान परत फैलाकर उसमें दबा देते है साथ ही साथ इनको पॉली टनल से ढक देते हैं। इस प्रकार पौध की बढ़वार के शुरूआती समय में जब बाहर का तापमान काफी कम (कभी–कभी शून्य से नीचे) होता है एवं मात्र पॉली टनल द्वारा तापमान को नियन्त्रित करना सम्भव नहीं हो पाता उस समय कच्चे गोबर की गर्मी से उगते हुए पौधों को पॉली टनल के अन्दर पर्याप्त तापमान मिलता रहता है एवं अधिकतम व न्यूनतम तापमान के मध्य भिन्नता कम हो जाती है। अधिक ठण्ड में कभी–कभी इस प्रकार उगाई गई पौध में पॉली टनल के अन्दर भी 10 डिग्री सेल्सियस से अधिक तापमान में बढ़ोत्तरी देखी गई है। पॉलीथीन शीट से सूर्य की किरणें प्रवेश करती हैं और यह हरित गृह (ग्रीन हाऊस) प्रभाव के सिद्धान्त पर कार्य करती है। पॉलीथीन शीट ठन्डी व सर्द हवाओं को अन्दर प्रवेश नहीं करने देती है। इस तरह कच्चे गोबर की गर्मी व पॉलीथीन के संयुक्त प्रभाव से जनवरी व फरवरी माह में भी बिना कृत्रिम ऊर्जा प्रदान किए बीजों के अंकुरण एवं पौधों की बढ़वार के लिए उचित वातावरण मिल जाता है, जिससे बीजों का जमाव तेजी से व एक समान होता है। इस प्रकार तैयार की गई पौध फरवरी के द्वितीय सप्ताह से मार्च के प्रथम सप्ताह तक (3–4 पत्ती वाली अवस्था) रोपाई योग्य हो जाती है। यदि मैरो कद्दू की रोपाई संरक्षित वातावरण (पॉली टनल या पॉली हाऊस) में करनी है तो पर्वतीय क्षेत्रों में क्षेत्र विशेष की ऊँचाई के अनुसार फरवरी माह में कर देनी चाहिए। यदि फसल को खुले वातावरण में उगाना है तो फरवरी के अन्तिम सप्ताह से मार्च के प्रथम पखवाड़े तक, जब क्षेत्र में पाला पड़ने की सम्भावना समाप्त हो जाए इनकी रोपाई कर देनी चाहिए। खेत की तैयारी के लिए तीन बार जुताई करके पाटा लगाकर खेत को समतल कर लेते हैं। तैयार खेत में जमीन से 10–15 से.मी. उठी हुई क्यारियाँ बना लेते हैं। इन क्यारियों में संकर किस्मों के लिए 90 से.मी. × 60 से.मी. व सामान्य किस्मों के लिए 75 से.मी. × 50 से.मी. दूरी पर बनायें थालों को एक फीट की गहराई तक खोदकर उसमें 2–3 कि.ग्रा. गोबर की सड़ी खाद/कम्पोस्ट, 20 ग्राम नत्रजन, 10 ग्राम फॉस्फोरस एवं 10 ग्राम पोटाश अच्छी प्रकार से ऊपरी सतह वाली मिट्टी में मिलाकर भर देते हैं। रोपण से 6–8 घण्टे पूर्व पौधों में हल्की सिंचाई करते है तथा प्रो ट्रे से सावधानी पूर्वक माध्यम/ मिट्टी सहित पौधों को निकालकर या पॉली बैग की पॉलीथीन काटकर जड़ या तने को किसी प्रकार की क्षति से बचाते हुए मृदा को बिना हिलाए थालों में रोपाई कर देते हैं। रोपाई सामान्यतः सायंकाल में करनी चाहिए एवं रोपाई के तुरन्त पश्चात् हल्की सिंचाई करें।

पॉली मल्व लगाने की विधि

पॉली मल्व को मैरो कद्दू में रोपाई से पूर्व या रोपाई के पश्चात् लगाया जा सकता है परन्तु सामान्यतः पौध रोपण के पश्चात् (लगभग 03–05 दिन बाद जब रोपित पौधे सीधे खड़े हो जाएं) मल्व लगाने की संस्तुति की जाती है क्योंकि कई बार यह देखने में आया है कि रोपण से पूर्व लगाई गई मल्व पर पौधा गिर जाता है जिससे दिन के समय मल्व शीट के सम्पर्क में आने से कोमल पौधे के झुलसने की सम्भावना बढ़ जाती है एवं रोपण के पश्चात् पौध मृत्यु दर बढ़ जाती है। मल्व फिल्म लगाने के लिए फिल्म का एक सिरा (चौड़ाई की ओर से) जमीन में गाड़कर पूरी फिल्म फैलाते समय पौधे को सावधानी से पकड़कर नीचे की तरफ से मल्व फिल्म के पूर्व में बनाएं गए छेदों में (बरमे या एक बड़े पाईप की सहायता से आवश्यकतानुसार दूरी पर छेद बनाये जाते हैं) घुसा दिया जाता है ताकि वह ऊपर फैल सके। इसके पश्चात् मल्व फिल्म को चारो तरफ से मिट्टी में (4'' से 6'') दबा देते हैं ताकि वह सही स्थिति में बनी रहे। मल्विंग के लिए 25 माइक्रोन की काली फिल्म का प्रयोग मैरो कद्दू के व्यावसायिक उत्पादन के लिए किया जा

कृषकों को मैरो कद्दू में पॉली मल्व लगाने की विधि का प्रशिक्षण देते वैज्ञानिक

पॉली मल्व में मैरो कद्दू की शीघ्र वृद्धि एवं पुष्पन

रहा है। कृषि विज्ञान केन्द्र, चमोली द्वारा किये गये अनुसंधानों में नीले रंग की पॉली शीट का भी मैरो कद्दू के गुणवत्ता युक्त उत्पादन में अच्छा प्रभाव देखा गया है।

पॉली मल्च से लाभ

- मृदा जल का संरक्षण होता है तथा पौधों की जल माँग में कमी आती है।
- खरपतवार नियंत्रण पर होने वाले श्रम, समय व व्यय की बचत होती है।
- मिट्टी में पर्याप्त हवा का संचार होने के साथ–साथ मिट्टी की बनावट का परिरक्षण होता है।
- फल का सीधे मिट्टी से सम्पक्र न होने के कारण फल की गुणवत्ता अच्छी रहती है।
- पौधों के आस–पास कार्बन डाई–आक्साइड की सान्द्रता 'चिमनी प्रभाव' के कारण बढ़ जाती है जिससे प्रकाश संश्लेषण क्रिया में सुधार होता है, जिसकी वजह से पौधों की अच्छी बढ़वार, अगेती उपज व अधिक उत्पादन होता है।
- मैरो कद्दू में मल्च फिल्म के प्रयोग से जड़, तना व फल सड़न आदि रोगों में उल्लेखनीय कमी पाई गई है।

पोषक तत्व प्रबन्धन

अच्छी व गुणवत्ता युक्त उपज प्राप्त करने के लिए रोपाई के 25 दिन बाद यूरिया (1 प्रतिशत्) एवं 50 व 75 दिन बाद

पाली मल्विंग में जल प्रबन्धन एवं संरक्षण पर परीक्षण

पाली मल्विंग में रंगीन मैरो कद्दू की काश्त

पोटेशियम नाइट्रेट (1 प्रतिशत्) का छिड़काव करना चाहिए। सूक्ष्म पोषक तत्वों की पूर्ति के लिए मल्टीप्लैक्स / एग्रोमिन (3.0 मि.ली. / पानी में) या अन्य सूक्ष्म पोषक तत्वों का मिश्रण (0.4 प्रतिशत् अथवा संस्तुत दर पर) बनाकर 3 छिड़काव 15–15 दिन के अन्तराल पर रोपाई के 30–35 दिन बाद से करना चाहिए।

जल प्रबन्धन

पौध रोपण के तुरन्त पश्चात् हल्की सिंचाई करनी चाहिए। रोपित पौधों के स्थापित होने तक प्रतिदिन सिंचाई करें तथा बाद में अन्तराल बढ़ायें। पॉली मल्च के साथ बूँद–बूँद (ड्रिप) सिंचाई पद्वति का प्रयोग करना अच्छा होता है, जिससे पानी की बचत के साथ–साथ अधिक व उच्च गुणवत्ता युक्त उत्पादन मिलता है। परन्तु उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों में सीमान्त एवं लघु सीमान्त कृषकों के पास स्वंय के ससंधानों के अभाव व धन की कमी के कारण कृषक बिना ड्रिप सिंचाई पद्वति के ही इसकी खेती करने के लिए विवश हैं। अतः कृषको को क्यारियों के बीच में बनी नालियों में सिंचाई करने की सलाह दी जाती है।

परागण

मैरो कद्दू एक पर परागित फसल है। इसमें नर व मादा पुष्प अलग–अलग होते हैं। इसकी पत्ती के आधार पर एकल पुष्प बनते हैं। इसके नर व मादा पुष्प आसानी से पहचाने जा सकते हैं क्योंकि मादा के नीचे उसका छोटा, गोल अण्डाशय सलंग्न होता है। पुष्प सूर्योदय पूर्व से प्रातः ग्यारह बजे तक खिले रहते हैं। इसी समय परागण कीटों द्वारा होता है। मादा पुष्प चौबीस घण्टे तक ही ग्राहय होते है परन्तु अगेती फसल में कभी–कभी 2–3 दिनों तक मौसम खराब होने पर या वर्षा होने से परागण करने वाले कीटों का फसल पर भ्रमण कम हो जाता है, जिससे उपज पर तो विपरीत प्रभाव पड़ता ही है, पर्याप्त परागण न होने से फल भी आकार में टेड़े–मेड़े हो जाते है। इन परिस्थितियों में हस्त परागण (हैण्ड पोलिनेषन) द्वारा उपज एवं गुणवत्ता को बढ़ाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त काष्तकारों को 8–10 मधुमक्खी के बॉक्स प्रति हैक्टेयर रखने की सलाह भी दी जाती है।

रोग व कीट नियंत्रण

चूर्णिल आसिता / फंफूदी

इस रोग में पत्तियों के निचले भाग पर सफेद चूर्ण दिखता है तथा पत्तियाँ सूखकर झड़ जाती हैं। धीरे–धीरे यह रोग पूरे पौधे पर फैल जाता है तथा उपज काफी कम हो जाती है। इसके नियंत्रण के लिए उचित फसल चक्र अपनायें। रोग का प्रकोप होने पर बारीक गन्धक (25 किग्रा. / है.) का बुरकाव करें अथवा घुलनशील गन्धक (02 ग्राम / ली. पानी) या कैराथेन (0.60 ग्राम / ली. पानी) का छिड़काव करें।

मृदुरोमिल आसिता

अधिक नमी वाले क्षेत्रों में इसका प्रकोप अधिक होता है। इस रोग में पत्तियों के ऊपरी भाग पर पीले, कोणीय धब्बे तथा निचले भाग पर बैंगनी धब्बे दिखते हैं। शीघ्र पूरा पत्ता सूख जाता है और पौधा मर जाता है। इसके नियंत्रण के लिए रोगग्रस्त पौधा व फलों को गहरे गडढे में डालकर दबा दें तथा डाईथेन एम–45 के (2 ग्रा / ली. पानी में) घोल का छिड़काव 10–15 दिनों के अन्तराल पर करें।

राइजोक्टोनिया जड़ विगलन

इस रोग से पौधे अंकुरण या रोपाई के तुरन्त बाद मर जाते हैं। इसके नियंत्रण के लिए बाविस्टिन (2 ग्राम/लीटर पानी) के घोल से जड़ के पास सिंचाई करें।

लाल कद्दू भृंग

यह पौधों की पत्तियों को खाकर उनमें छिद्र बनाती है और पौधों के पास जमीन पर पीले अण्डे देती है। इसकी सूड़ी जड़, तने तथा जमीन से लगे फलों को खाकर नुकसान पहुँचाती है। इसके नियंत्रण के लिए गहरी जुताई कर सूंड़िया या प्यूपा को नष्ट करें। राख का बुरकाव भी काफी लाभदायक होता है। 20 मि.ली. मेलाथियान (50 ई.सी.) का 200 ग्राम गुड़ तथा 20 ली. जल में घोल बनाकर एक सप्ताह के अन्तराल में दो बार छिड़काव करें। प्रकाश प्रपंच तथा विश प्रलोभन का प्रयोग भी भृंगों को मारने के लिए लाभकारी है।

फल छेदक कीट

यह कीट फूलों एवं फलों को खाकर या छेदकर नुकसान पहुँचाते हैं जिससे उपज पर बुरा असर पड़ता है। इसके नियंत्रण के लिए इमिडाक्लोप्रिड या प्रोफेनोफॉस (3 मि ली./10 ली.) के घोल का छिड़काव 15 दिनों के अन्तराल पर करें।

पॉली मल्च तकनीक के प्रयोग का आर्थिक पक्ष

कृषि विज्ञान केन्द्र ग्वालदम (चमोली)

मल्चिंग तकनीक में उगते मैरो कद्दू की देख–रेख करता कृषक

कृषक प्रक्षेत्र पर मल्च में मैरो कद्दू की फसल का निरीक्षण करते पंतनगर के वैज्ञानिक

द्वारा कृषक प्रक्षेत्रों पर पॉली मल्च तकनीक के अन्तर्गत मैरो कद्दू उत्पादन व उसका आर्थिक विश्लेषण तालिका–1 में दर्शाया गया है। कृषकों के खेतों पर लगे प्रदर्शनों के परिणाम दर्शाते हैं कि इस तकनीक के उपयोग से मैरो कद्दू की उपज में सामान्यतः 40–50 प्रतिशत् (औसत 44.31 प्रतिशत् की वृद्धि होती है। मैरो कद्दू का प्रचलित विधि से (बिना मल्च के) उत्पादन करने पर लाभ लागत अनुपात 2.26 व पॉली मल्च में करने पर 2.68 आता है जो कि उत्तराखण्ड पर्वतीय क्षेत्रों में सामान्यतः उगाई जाने वाली धान्य, दलहनी व तिलहनी फसलों की अपेक्षा काफी अधिक है (इन फसलों का लाभ–लागत अनुपात सामान्यतः 1.5 से कम रहता है)। पॉली मल्च तकनीक अपनाने पर अतिरिक्त व्यय रू0 21,600.00 प्रति हैक्टेयर व अतिरिक्त आय रू0 99,200.00 हुई। अतः पर्वतीय क्षेत्रों में इस तकनीक के अन्तर्गत मैरो कद्दू का उत्पादन करने पर एक रूपया अतिरिक्त व्यय कर रू0 4.60 की अतिरिक्त आय काश्तकारों को प्राप्त हुई।

अतः यह तकनीक पर्वतीय क्षेत्रों में मैरो कद्दू उत्पादन के लिए अत्यन्त लाभकारी है। इस तकनीक का उपयोग करने पर न केवल श्रम व खरपतवार नियंत्रण पर आने वाला खर्च बच जाता है वरन् अगेती फसल के साथ–साथ पानी, समय तथा खाद व उर्वरक की भी बचत होती है। प्रदर्शन के परिणाम यह भी दर्शाते हैं कि अन्य लाभों के अतिरिक्त आर्थिक दृष्टिकोण से भी पॉली मल्च के अन्तर्गत मैरो कद्दू की खेती लाभदायक है। इस तकनीक की सफलता व लाभों को देखते हुए जिला चमोली के सब्जी उत्पादक वर्तमान में इस तकनीक का उपयोग व्यावसायिक मैरो कद्दू उत्पादन में कर रहें है। अन्य पर्वतीय क्षेत्रों के कृषक भी उक्त तकनीक को अपनाकर उत्पादन एवं लाभ में वृद्धि कर सकते हैं।

तालिका–1 पाली मल्च तकनीक के अन्तर्गत मैरो कद्दू उत्पादन का आर्थिक विश्लेषण

विवरण	अगेती उपज (टन/है.)	कुल उपज (टन/है.)	उपज में वृद्धि (प्रतिशत्)	सकल व्यय (रू./है.)	सकल आय (रू./है.)	शुद्ध आय (रू./है.)	लाभ–लागत अनुपात	अतिरिक्त उपज (टन/है.)	अतिरिक्त व्यय (पॉली मल्च तकनीक अपनाने पर)	अतिरिक्त आय	लाभ लागत अनुपात (पॉली मल्च)
काली पॉली मल्च	26.30	56.50	44.31	1,19,250.00	3,20,000.00	2,00,750.00	2.68	17.35	21,600.00	99,200.00	4.60
मल्च रहित	17.85	39.15	–	97,650.00	2,20,800.00	1,23,150.00	2.26	–	–	–	–

कोदों की उन्नत खेती

के.एम. सिंह
कृषि विज्ञान केन्द्र, शाहजहाँपुर, उत्तर प्रदेश

कोदों, कम वर्षा एवं जहाँ पर सिंचाई की उचित व्यवस्था न हो उन स्थानों के लिए मोटे अनाजों में एक महत्वपूर्ण फसल है। खरीफ के मौसम में अनियमित वर्षा वाले स्थानों पर इस फसल कों आसानी से उगाया जा सकता है। उत्तर प्रदेश में इसकी खेती सोनभद्र, ललितपुर, बहराइच, सीतापुर, खीरी, बाराबंकी आदि में की जाती है। आजकल सरकार द्वारा मोटे अनाजों के उत्पादन प्रोत्साहन हेतु किसानों को उत्पादन लागत में छूट देने का प्रावधान है। कोदों को पकाने के लिए कठोर बीज आवरण को हटाना आवश्यक है। इसका अधपका एवं मोल्टेड अनाज जहरीला होता है। कोदों को आसानी से संरक्षित किया जाता है तथा अकाल की स्थिति में भी पैदावार देने में सक्षम होता है। मधुमेह रोगियों को इसे चावल के विकल्प के रूप मे प्रयोग करना चाहिए।

भूमि

कोदों की खेती से रेतीली बलुई मिट्टी व दोमट मिट्टी में अच्छी पैदावार ली जाती है। इसके अलावा पथरीली व बजरी युक्त मिट्टी इसके लिए अनुपयुक्त होती हैं।

भूमि की तैयारी

मानसून आने से पूर्व खेत को एक दो बार हल से जुताई करके छोड़ देते है, जिससे वर्षा का जल संरक्षित हो सके। मानसून प्रारम्भ होने पर मिट्टी पलट हल अथवा हैरो की सहायता से पहली जुताई तथा दो–तीन जुताईयां कल्टीवेटर से करते है। दो जुताई उपरान्त पाटा लगा देते है।

बुवाई का समय

कोदों की फसल से अच्छा उत्पादन लेने के लिए 15 जून से 15 जुलाई के मध्य बुवाई अवश्य कर देनी चाहिए।

बुवाई की विधि

कोदों की बुवाई पंक्ति से पंक्ति 45 सेमी की दूरी पर सीडड्रिल अथवा लाइन निकालकर करते हैं तथा बीज से बीज की दूरी 8 से 10 सेमी व बीज की गहराई 3 सेमी रखनी चाहिए।

बीज दर

कोदों का बीज 15 किग्रा प्रति हेक्टेयर दर से प्रयोग करते है।

उन्नतशील किस्में

जे.के.–6, जे.के.–62, जे.के.–2, ए.पी. के.–1, के.एम.वी.–20, जी.पी.वी.के.–3 जिनका औसत उत्पादन 16 से 18 कुन्टल प्रति हेक्टेयर होता हैं। इसके अलावा डिंडोरी 73, पाली कोयम्बटूर 2 एवं निवास 1 भी उन्नत किस्में हैं।

खाद एवं उर्वरक

खेत में उर्वरक उपयोग क्षमता, उर्वरता बनाए रखने व पानी धारण क्षमता बढ़ाने हेतु 5 से 10 टन कम्पोस्ट खाद का प्रयोग मानसून की पहली जुताई के समय करना लाभकारी होता हैं। भूमि की उर्वरता जॉच के आधार पर ही उर्वरक प्रयोग करना चाहिए। सामान्य दशा में नत्रजन, फास्फोरस, पोटाष को 40:20:20 किग्रा प्रति हेक्टेयर दर से प्रयोग करते हैं। नत्रजन की आधी मात्रा, फास्फोरस व पोटाश की पूरी मात्रा बुवाई के समय कूड़ो में प्रयोग करते हैं। नत्रजन की शेष मात्रा को बुवाई से लगभग 35 दिन बाद प्रयोग करें।

सिंचाई प्रबन्धन

कोदों की खेती सामान्यतः खरीफ में की जाती हैं जहॉ पर पानी की आवश्यकता नहीं पड़ती हैं। यदि सिंचाई की सुविधा हो तो एक दो सिंचाई उस समय करें जिस समय वर्षा लम्बे समय तक रूक गयी हो। अत्यधिक वर्षा की दशा में खेत से पानी निकाल देना चाहिए।

खरपतवार प्रबन्धन

अच्छे उत्पादन हेतु कोदों की फसल को शुरूआती अवस्था में खरपतवार रहित होना चाहिए। खेत को खरपतवार रहित रखने के लिए बुवाई के 12 से 15 दिन पर पहली निकाई–गुड़ाई करते हैं। दूसरी निकाई बुवाई से 30 से 35 दिन पर कर देते हैं। लाइन में बोई गई फसल में निकाई–गुड़ाई का कार्य हेण्डहो अथवा हवीव हो से किया जा सकता है।

फसल सुरक्षा

बीमारी

अरगट रोग

यह बीज जनित बीमारी हैं जो फफूंद के कारण होती हैं। इस रोग का प्रकोप फूल आने के समय होता है। इस रोग में फूलों से चिपचिपा पदार्थ निकलता, हल्के गुलाबी रंग का स्राव होता हैं, बाद में सूखकर पापड़ी में परिवर्तित हो जाता हैं।

रोग ग्रस्त अनाज का उपयोग मनुष्य व पशुओं दोनो के लिए हानिकारक होता है।

रोकथाम

- बीज को बुवाई से पूर्व 20 प्रतिशत नमक के घोल में डुबोकर तुरन्त स्केलेरेशिया को अलग कर देना चाहिए तथा शुद्ध पानी में 4–5 बार धोकर बीज का प्रयोग किया जाय।
- फसल में फूल आने से पूर्व निम्न फफूँदनाशी का प्रयोग करें –

क. जिरम 80 प्रतिशत घुलनशील चूर्ण 2.00 किग्रा प्रति हेक्टेयर प्रयोग स्प्रे कर करें।

ख. मैंकोजेब घुलनशील चूर्ण 2.00 किग्रा प्रति हेक्टेयर प्रयोग स्प्रे कर करें।

ग. जिनेब 75 प्रतिशत घुलनशील चूर्ण 2.00 किग्रा प्रति हेक्टेयर प्रयोग स्प्रे कर करें।

कन्डुवा रोग

इस रोग में बाली में कालें चूर्ण जैसे कवक के बीजाणु भर जाते हैं। प्रारम्भिक अवस्था में बीजाणु एक हल्के पीलें रंग की झिल्ली से ढ़कें रहते हैं, जो आगं चलकर फट जाती है एवं बीजाणु बाहर निकलकर पूरी फसल में फैल जाते है।

रोकथाम

बीज को बुवाई से पूर्व बीज उपचार करने के उपरान्त प्रयोग करें। बीज उपचार थीरम 75 प्रतिशत डी.सी. /डब्ल्यू.पी. या कार्बेन्डाजिम 50 प्रतिशत डब्ल्यू.पी. 2.5 ग्राम प्रति किग्रा बीज की दर से उपचारित करना चाहिए।

रतुआ/गेरूई रोग

यह रोग फफूंद जनित रोग है। इसके प्रकोप पत्तियों पर दिखाई देता है। इसमें पत्तियों पर फफोले दिखाई देते है। इस रोग के प्रकोप के कारण पौधों में प्रकाश सश्लेषण की क्रिया प्रभावित होती है, जिसके कारण उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

रोकथाम

क. मैंकोजेब घुलनशील चूर्ण 2.00 किग्रा प्रति हेक्टेयर खड़ी फसल में स्प्रे कर करें।

ख. जिनेब 75 प्रतिशत घुलनशील चूर्ण 2.00 किग्रा प्रति हेक्टेयर खड़ी फसल में स्प्रे कर करें।

प्रमुख कीट

कोदों की फसल में सामन्यत: कम कीटों का प्रकोप होता है। इसके प्रमुख कीट दीमक व तना छेदक कीट है।

तना छेदक कीट

यह कीट फसल के मघ्य भाग वाले तने को काट कर नुकसान पहुँचाता है।

रोकथाम

तना छेदक कीट की रोकथाम के लिए कारटाप हाइड्रोक्लोराइड 4 जी 18 किग्रा प्रति हेक्टेयर की दर से बुवाई के 30 से 35 दिन पर प्रयोग करें, बाद में 15 से 20 दिन के अन्तराल पर एक दो वार प्रयोग करें।

दीमक

दीमक कीट पौधों की जड़ काटकर नुकसान पहुँचाती है।

रोकथाम

क. ब्युबेरिया बैसियाना 1.15 प्रतिशत (जैव कीटनाशी) की 2.5 किग्रा प्रति हेक्टेयर को लगभग 100 किग्रा सड़ी गोबर की खाद में मिलाकर 4–5 दिन छायादार स्थान में रखकर, बुवाई से पूर्व आखिरी जुताई के समय भूमि में मिलाकर प्रयोग करें।

ख. खड़ी फसल में दीमक का प्रकोप रोकने के लिए क्लोरपाइरीफॉस 20 ई.सी. की 2.5 लीटर प्रति हेक्टेयर दर से सिंचाई के साथ प्रयोग करें।

कटाई व मड़ाई

फसल सितम्बर – अक्टूबर माह में पका तैयार हो जाती है। फसल की कटाई जमींन से सटाकर करते हैं। कटी फसल को छोटे – छोटे बण्डल बनाकर सुखा लेते है। थ्रेसर से अथवा बण्डलों को पीटकर अनाज अलग कर लेते है।

उत्पादन

अनाज का औसत उत्पादन

- 15 – 18 कुन्टल प्रति हेक्टेयर एवं चारा का औसत उत्पादन 30–40 कुन्टल प्रति हेक्टेयर होता है।

उत्पाद का उचित भण्डारण करने के लिए दानों में 10 से 12 प्रतिशत नमी होनी चाहिए।

अन्य बिन्दु

- गर्मी में खेत की जुताई अवश्य करें।
- बीज हमेशा शोधित प्रयोग करने चाहिए।
- जैविक खाद एवं उर्वरक का प्रयोग संस्तुति के अनुसार ही करें।
- खेत में जल निकास व्यवस्था उचित होनी चाहिए।
- 30 से 35 दिन तक फसल खरपतवार रहित रखें।
- फसल को कीट व रोग रहित रखें।

धान में समेकित खरपतवार नियंत्रण

कमलेश मीना[1], ए.आर.कुमारी[1], शमशेर सिंह[1] एवं दीपक राय[2]

[1]कृषि विज्ञान केन्द्र (भाकृअनुप–भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान) मल्हना, देवरिया;

[2]कृषि विज्ञान केन्द्र (भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान) लखनऊ

धान का उपयोग खाने के साथ–साथ विभिन्न उद्योगो में भी किया जाता है चावल में स्टार्च पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है। विशेष रुप से कपड़ा उद्योग में इसका अधिक प्रयोग किया जाता है। धान के भूसे का प्रयोंग जानवरो को खिलाने एंव बिछावन के रुप में किया जाता है। विश्व में भारत, चीन, बंगलादेश, इण्डोनेसिया, जापान, म्यांमार, पाकिस्तान, फिलिपिंस, थाइलैण्ड, विएतनाम, कोरिया, इटली, रुस, इजिप्ट, यूएसए एंव ब्राजील में संसार की आधे से अधिक जनसंख्या का प्रमुख भोजन चावल है।

हमारे देश में धान की खेती क्षेत्र विशेष एंव जलवायु के आधार पर कई तरीकों से की जाती है। विभिन्न क्षेत्रों में जलवायु व धान उत्पादन की विधियों के अनुसार खरपतवारों की जाती व संख्या अलग–अलग होती है। भारत के पूर्वी क्षेत्र में खरपतवारों की समस्या अधिक होती है। उत्तरी–पश्चिमी भारत में खरपतवारों की प्रजातियॉ कम व उनकी संख्या अधिक होती है। धान की सीधी बुवाई करने वाले क्षेत्रों में खरपतवार प्रायः अधिक होती है। सीधी बुवाई करने पर यदि समय रहते खरपतवारों पर नियंत्रण नही किया गये तो लगभग 60–70 प्रतिशत उपज में कमी हो सकती है। जबकि रोपाई करने वाले क्षैत्रो में खरपवारों के द्वारा 30–40 प्रतिशत तक उपज में कमी आ सकती है। इसलिये अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए इन खरपतवारों पर समय रहते नियंत्रण करना आवश्यक है।

धान में होने वाले प्रमुख खरपतवार एवं पहचान

अ. घास वर्गीय खरपतवार

1. सामान्य नाम–जंगली धान, जंगली घास

अन्य नाम–छोटा सांवक, साई, सामा, सामक, सौक, भरता इत्यादि।

पहचान–पौधे छोटे, सीधे व शाखओं वाले, पत्तियॉ चिकनी, संकरी व जामुनी पट्टी वाली होती है। तना बहुत सख्त, फुला हुआ गांठ वाला व नीचे से बैंगनी रंग का होता है। सिट्टे बिना बालों वाले ढीले–ढीले, पकने पर हरे रंग के व दाने जमीन पर झडंने वाले होते है।

2. सामान्य नाम–बर्नयार्ड घास

अन्य नाम–सांवक, साई, सनवा बरटा इत्यादि।

पहचान–पौधे का रंग धान के रंग से हल्का होता है एंव पत्तियॉ भी धान की पत्तियों से नरम व लम्बी होती है। यह एक सीध बढ़ने वाला खरपतवार है। जो फसल से भी अधिक लम्बा(100–140 से. मी.) होता है। प्रति पौधा औसतन 30000–40000 बीज उत्पादन करने की क्षमता होती है। इसकी बाली गुथी हुई वहल्के हरे रंग की चमकदार, एंव एक तरफ से चपटी व दूसरी तरफ से गोल होती है।

3. सामान्य नाम–इजिप्सयन क्रो फुट ग्रास (कौवा पंजा घास)

अन्य नाम– मकड़ा, मघाना इत्यादि।

पहचान–यह घास जमीन के ऊपर फैलती है। तना शाखाओं वाला 15–60 से. मी. लम्बा होता है तथा इसका प्रसार तने पर स्थित गांठों से निकलने वाली जड़ों से होता है। लीफ ब्लेड व शीथ पर बाल नही होते है। पत्ते 2–8 मि.मी. चौड़े, रेखाकार, नरम व लम्बे रेशों से ढके रहते है। पुष्प कौए के पंजे की तरह होते है। बीज बहुत छोटे व खुरदरे होते है।

4. सामान्य नाम–इंडियन गूज घास

अन्य नाम–मंडुवा

पहचान–इसका पौधा शाखाओं के सहारे जमीन पर चटाई की तरह फैलता है। दो या अधिक पंक्तियों में स्पाइकलेट्स होते है। ज्यादातर उंगलियों जैसे गुच्छों के नीचे एक उंगलि जैसी स्पाइकलेट्स होती है।इसके बीजो का जमाव वर्षा से पहले हो जाता है।

ब. सैजेज वर्गीय खरपतवार

1. सामान्य नाम–फलैट सैज

अन्य नाम–डिल्ला, बीज वाला मोथा, नगर मोथा, पानी पाला मोथा अखावन इत्यादि।

पहचान–यह एक वर्षीय, 20–70 से.

मी. लम्बा, एवं पानी पसंद करने वाला खरपतवार है। इसकी पत्तियॉ फूलों के नीचे लगी होती है तथा फूलों का रंग पीला होता है। लीफ शीथ कभी–कभी लाल रंग के साथ–साथ भूरे रंग की होती है। स्पाइक 2–5 से.मी.लम्बी, खुली हुई 2–4 से.मी. लम्बी शाखाओं पर लगी होती है।

2. सामान्य नाम–छतरीनुमा छोटे फूल वाला सैज

अन्य नाम–मोथा ,डिल्ला इत्यादि।

पहचान–यह बहुवर्षीय खरपतवार है। इसका तना सीधा, बिना शाखाओं वाला व आधार से त्रिकोणीय होता है। पत्तियॉ लम्बी व आमतौर पर तने को ढ़ककर रखती है तथा आगे से लाल भूरी होती है।

स. चौडी पत्ती वाले खरपतवार

1. सामान्य नाम–वाटर क्लोवर, फोर लिफ क्लोवर

अन्य नाम–चार पत्ती, धन पापड, इंदिरा मारिशा

पहचान–यह बहुवर्षीय जलीय फर्न चार पत्तीयों वाला घास होता है। इसका प्राकंद अस्थायी गांठों में निहित होता है। खेत में धीरे–धीरे बढ़ कर काफी बड़ा हो जाता है और फसल की बढ़ोतरी को कम कर देता है। यह खरपतवार अपने आप को खेत के पानी के साथ ढाल लेता है।

2. सामान्य नाम–गुजबेरी

अन्य नाम– बटकुंड्या, मकोई, पिलपोटन इत्यादि।

पहचान–यह एक वर्षीय शाक है। जिसकी ऊँचाई 100–150 से.मी. होती है। इसकी पत्ती के किनारे दांतेदार है एवं पत्तियॉ 2–12 से.मी. लम्बी होती है। फूल दूधिया से पीले रंग के होते है। फल एक कागजी कवर से ढका होता है। जो पकने पर भूरे रंग का होता है। पकने पर जमीन पर गिर जाता है।

3. सामान्य नाम–पिंक नोड फ्लावर

अन्य नाम–थुजकर, घर फुले, मक्का, गंठीला इत्यादि।

पहचान–यह एक वर्षीय खरपतवार है। इसकी पत्तीयॉ लम्बी, मोटी व तने के पासवाले भाग से ऊपर उठी हुई होती है। तना टेढ़ा होता है। फूलों का रंग सफेद एंव जिसमें जामुनी रंग की झलक दिखाई पड़ती है। इसका प्रसार बहुत छोटे–छोटे बीजों से होता है।

खरपतवार नियंत्रण

धान में खरपतवार नियंत्रण के लिये मिली–जुली विधियों का प्रयोग करना चाहिए। ताकि समय पर खरपतवारों का नियंत्रण करके अधिक से अधिक पैदावार प्राप्त की जा सके।

गर्मी में गहरी जुताई

धान की बुवाई/रोपाई से पूर्व अप्रैल–मई में मिट्टी पलटने वाले हल के द्वारा 2–3 गहरी जुताई करना चाहिए। ताकि मृदा में उपस्थित खरपतवार के बीज नष्ट हो जाये।

निराई–गुडाई

धान की फसल में दो निराई–गुड़ाई करना चाहिए। प्रथम निराई–गुड़ाई रोपाई अथवा बुवाई करने के 20–25 दिन बाद एवं द्वितीय निराई–गुडाई 45–50 दिन बाद करना चाहिए। निराई–गुडाई हाथ के द्वारा चलने वाले यंत्रो जैसे हेण्ड हो, व्हील हो व खुरपी इत्यादि के द्वारा करना अधिक लाभदायक रहता है। इन हस्थ चालित यंत्रों के द्वारा निराई–गुडाई करने के लिए कतारों में रोपाई करना चाहिए।

3. **खरपतवार नाशियों का प्रयोग**–धान में खरपतवार नाशियों का प्रयोग खरपतवारों की नस्ल, बुवाई का तरीका व समय के आधार पर किया जाता है।

धान की सीधी बुवाई/रोपाई में खरपतवार नाशियों का प्रयोग

सावधानियॉ–धान की रोपाई/बुवाई से पूर्व निम्नलिखित सावधानीयॉ रखना चाहिये। ताकि फसल में कम से कम खरपतवार हो।

- खेत में कच्चे गोबर का प्रयोग नही करना चाहिए।
- प्रमाणित व शुद्ध बीज का ही प्रयोग करें।
- बीज तैयार करने के लिए फसल की मड़ाई करने से पूर्व मशीन की अच्छी तरह से सफाई करनी चाहिए।
- खेत की मेड़ बन्दी करना चाहिए। ताकि वर्षा ऋतु में खरपतवारों के बीज पानी के साथ बहकर नहीं आये।

तालिका–1 धान की सीधी बुवाई में प्रयोग होने वाले प्रमुख शाकनाशी

शाकनाशी का नाम	मात्रा/एकड़	प्रयोग का समय	प्रयोग की विधि
पेन्डिमैथालिन 30 ई.सी.	1333ग्राम	बुवाई के तुरन्त बाद	रसायन को 150 लीटर पानी/एकड़ में मिलाकर छिडकाव करें
बिसपायरिबैक 10% एस.पी.	80–100 मि.ली दिन बाद	बुवाई के 20–22	रसायन को 120– 150 लीटर पानी/एकड़ में मिलाकर छिडकाव करें
आग्जाडायरजिल 80 डब्ल्यू.पी.	50 ग्राम	बुवाई के तुरन्त बाद	रसायन को लगभग 150 लीटर पानी/एकड़ में मिलाकर छिडकाव करें
अजिमस्ल्फुरोन 50 डब्ल्यू डी.जी.	24–28 ग्राम	बुवाई के 15–20 दिन बाद	रसायन को 120–150 लीटर पानी/एकड़ में मिलाकर छिडकाव करें
पायराजोसल्फुरोन 10 डब्ल्यू.पी.	60 ग्राम		रसायन को लगभग 150 लीटर पानी/एकड़ में मिलाकर छिडकाव करें
कारफेंट्राजोन 40डी.एफ.	20 ग्राम	बुवाई के 15–20 दिन बाद	रसायन को 150 लीटर पानी/एकड़ में मिलाकर छिडकाव करें
2,4 डी सोडियम साल्ट 80%	250 मि.ली.	बुवाई के 20–22 दिन बाद	रसायन को लगभग 150 लीटर पानी/एकड़ में मिलाकर छिडकाव करें
2,4 डी ईस्टर 38 ई.सी.	526 मि.ली.	बुवाई के 20–22 दिन बाद	रसायन को 150 लीटर पानी/एकड़ में मिलाकर छिडकाव करें
फिनोक्साप्रोप+सेफनर 6.7 ई.सी.	447 मि.ली.	बुवाई के 20 दिन बाद	रसायन को लगभग 150 लीटर पानी/एकड़ में मिलाकर छिडकाव करें

तालिका–2 रोपाई किये गए धान में प्रयोग होने वाले प्रमुख शाकनाशी

शाकनाशी का नाम	मात्रा/एकड़	प्रयोग का समय	रसायन को लगभग 100–120 लीटर पानी/एकड़ में मिलाकर छिडकाव करें
ब्यूटाक्लोर 50 ई.सी.	1–1.2 ली.	रोपाई के 2–3 दिन बाद	रसायन को लगभग 100–120 लीटर पानी/एकड़ में मिलाकर छिडकाव
एनिलोफास 30 ई.सी.	533 मि.ली.	रोपाई के 2–3 दिन बाद	
पेन्डिमैथालिन 30 ई.सी.	1333 ग्राम्	रोपाई के 2–3 दिन बाद	रसायन को लगभग 100–120 लीटर पानी/एकड़ में मिलाकर छिडकाव करें अथवा लगभग 50–60 किलों. रेत में मिलाकर प्रयोग कर सकते है परन्तु खेत में 3–4 से.मी पानी रहना चाहिए।
आग्जाडायरजिल 80 डब्ल्यू.पी.	50 ग्राम	रोपाई के 2–3 दिन बाद	
प्रेटिलाक्लोर 50 ई.सी.	600 मि.ली.	रोपाई के 2–3 दिन बाद	
एनिलोफोस 30 ई.सी.	533 मि.ली.	रोपाई के 2–3 दिन बाद	
2,4 डी सोडियम साल्ट 80%	250 मि.ली.	बुवाई के 20–25 दिन बाद	रसायन को लगभग 120–150 लीटर पानी/एकड़ में मिलाकर छिडकाव करें
2,4 डी ईस्टर 38 ई.सी.	526 मि.ली.	बुवाई के 20–25 दिन बाद	
बिसपायरिबैक 10% एस.पी.	80–100 मि.ली	बुवार्ब के 20–22 दिन बाद	

ज्ञान–विज्ञान प्रभाग

खाद एवं उर्वरकों का प्रबन्ध तथा गन्ने की मिठास

सुधीर कुमार शुक्ल, शशिविन्द कुमार अवस्थी एवं आशा गौर
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

गन्ने की फसल की वानस्पतिक वृद्धि अधिक होने के कारण पोषक तत्वों का अधिक मात्रा में उपयोग होता है। इसको बनाए रखने के लिए सभी पोषक तत्वों की आवश्यकता पड़ती है। 100 टन उत्पादन वाली गन्ने की फसल मृदा से लगभग 205 किलोग्राम नत्रजन, 55 किलो0 स्फुर, 275 किग्रा. पोटेशियम के अलावा 3.5 किग्रा. लौह, 1.2 किग्रा. मैगनीज, 600 ग्राम जिंक एवं 100 ग्राम तांबा का अवशोषण करती है। विभिन्न पोषक तत्वों में नत्रजन का विशेष स्थान है। वैसे अधिकतर क्षेत्रों में अब गंधक तथा जिंक की कमी भी परिलक्षित हो रही है। विभिन्न पोषक तत्वों का सही अनुपात में प्रयोग किसी भी अकेले पोषक तत्व की अपेक्षा अधिक लाभकारी होता है।

नत्रजन

नत्रजन का पौधों की वृद्धि में विशेष स्थान है। फसल की अवधि (12–18 महीने) एवं क्षेत्रों के आधार पर गन्ने में 112 किग्रा. से लेकर 504 किग्रा. नत्रजन/हे. तक का प्रभाव दिखलाई पड़ता है। उत्तर भारत में सामान्य रूप से 112–224 किग्रा./हे. तमिलनाडु में 168 से 280 किग्रा./हे., कर्नाटक में 280 से 584 किग्रा./हे., महाराष्ट्र में 392 से 504 किग्रा. तक एवं आंध्र प्रदेष में 252 से 392 किग्रा./हे. की दर से नत्रजन का प्रयोग करते है। गन्ना सी$_4$ कुल का होने के कारण नत्रजन का अवशोषण सी$_3$ पौधों की अपेक्षा सुचारू रूप से करता है। अगर मृदा में गन्ने की वृद्धि के दौरान 40 पी. पी. एम. की दर नत्रजन की उपलब्धता बनी रहती है तो गन्ने की वृद्धि अच्छी होती है। सामान्य रूप से नत्रजन के विभिन्न स्त्रोतों का गन्ने की गुणवत्ता पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ता है। नत्रजन के प्रयोग का समय पौधों में जड़ों के द्वारा आपूर्ति कर सकने की क्षमता तथा गन्ना एवं शर्करा की उपज पर निर्भर करती है। 12 महीने वाली फसल के लिए नत्रजन 60 से 90 दिनों के अंदर दे देना चाहिए। 24 महीने वाली फसल में अगर नत्रजन की अंतिम मात्रा 11वें महीने में दी गयी है तो अधिक शर्करा (टन प्रति हेक्टेयर) पायी गयी। बलुई मृदा में तीन तथा दोमट एवं मटियार भूमि में नत्रजन का दो बार भी प्रयोग किया जा सकता है।

गन्ने की एक वर्ष की फसल में शुरूआत के 45से 90 दिनों तक किल्ले निकलने की अवस्था रहती है। अतः उस समय नत्रजन का प्रयोग ही अधिक लाभकारी रहता है। दक्षिण भारत में अडसाली फसल में नत्रजन का तीन बार प्रयोग, बुवाई के समय 10 प्रतिषत बुवाई के 8 सप्ताह बाद 40 प्रतिशत तथा मिट्टी को चढ़ाने के समय 50 प्रतिशत किया जा सकता है। नत्रजन के उर्वरकों का कूँड़ों में प्रयोग से नत्रजन की उपयोग क्षमता में वृद्धि होती है। वृहत स्तर पर अध्ययन से पता लगा है कि नत्रजन का छिड़काव की तुलना में मृदा में प्रयोग अधिक लाभकारी होता है। हवाई (संयुक्त राज्य अमेरिका) में भी विभिन्न परीक्षणों से पता लगा कि नत्रजन को मृदा में मिलाना छिड़काव से बेहतर तकनीक है।

नत्रजन का अन्य पोषक तत्वों के साथ संयुक्त प्रभावः

विभिन्न पोषक तत्वों में नत्रजन × पोटेशियम, नत्रजन × फास्फोरस एवं नत्रजन तथा गंधक के संयुक्त प्रभाव का गन्ने की उपज एवं गुणवत्ता पर उचित प्रभाव पड़ता है। नत्रजन के साथ पोटेशियम का उचित मात्रा में प्रयोग से पोषक तत्वों का समुचित उपयोग होता है। विभिन्न अध्ययनों से यह पता लगा है कि अमोनियम के रूप में नत्रजन के साथ सुपर फास्फेट के प्रयोग से गन्ने की फसल द्वारा फास्फोरस का मृदा से अधिक अवशोषण होता है। इसके विभिन्न कारण हैं जैसे :–

- अम्ल बनाने वाले अमोनियम उर्वरक दिए जाने पर मृदा के फास्फोरस का घुलनशील होना
- उर्वरक डालने वाले मृदा क्षेत्र में जड़ों का अधिक विकास तथा
- जड़ों की चयापचयी शक्ति में बढ़ोत्तरी।

नत्रजन एवं गंधक का संयुक्त प्रभाव भी गन्ने में देखा गया है तथा इसके लिए नत्रजन एवं गंधक का औसत अनुपात 10–17 : 1 है। जिन पौधों में गंधक की कमी होती है उनमें शर्करा की मात्रा में भी कमी होती है और वह नत्रजन का नाइट्रेट एवं घुलनशील पोषक तत्वों का संचय करते है जिससे मिल योग्य शर्करा में कमी हो जाती है। गंधक विभिन्न एमीनों एसिड जैसे सिस्टीन, सिस्टिन, मेथ्यूनीन का अवयव है। यह अवयव अमीनो एसिड गंधक युक्त विभिन्न यौगिक, को एन्जाइम तथा द्वितीय पौध उत्पादन के प्रथम उत्पाद है। गंधक इन एन्जाइमों का संरचनात्मक घटक अथवा आर.एस.एच. समूह में कार्य करता है जिससे पौधे में चयापचय प्रमाणित होता है। अमोनियम के पोषण से ए. पी. एस. – सल्फोट्रान्सफिरेस एन्जाइम की क्रियाशीलता

बढ़ती है जिससे गंधक युक्त एमीनोएसिड की अवश्यकता पड़ती है जिसकी आवश्यकता अमोनियम के संश्लेषण के समय होती है।

गन्ने के रस की गुणवत्ता पर प्रभाव

नत्रजन की उचित मात्रा, सही समय एवं सही विधि से प्रयोग करने से गन्ने की उपज एवं गुणवत्ता पर विशेष प्रभाव पड़ता है। गन्ने में नत्रजन की अधिक मात्रा का देर से प्रयोग करने पर देर से निकलने वाले कल्लों की वृद्धि होती है जिससे रस की शुद्वता में कमी आती है। इस प्रकार के प्रयोग से अपचयित शर्करा में वृद्धि होती है एवं शर्करा (सुक्रोस) में कमी होती है।

फास्फोरस

उपोष्ण क्षेत्रों में लगभग सभी मृदाओं में फास्फोरस की कमी पायी गयी है लेकिन इस पर भी सभी कृषि योग्य फसलों में फास्फोरस का प्रभाव अनिश्चितता पूर्ण रहा है। गन्ने में फास्फोरस का अधिक अवशोषण तो बहुत ही कठिन है और इसकी कमी से कम किल्ले, जड़ों की वृद्धि में कमी, कम दूरी पर गांठें, गांठों की देर से पत्ती द्वारा बंद होना देखा गया है। गन्ने में फास्फोरस का आठवीं से दसवीं पर्वसंधि (इन्टरनोड) में सांद्रण फास्फोरस को सही स्तर को दर्शाता है।

राक फास्फेट के अतिरिक्त अन्य सभी फास्फोरस प्रदान करने वाले उर्वरक, फास्फोरस की कमी वाली मृदाओं में गन्ने की उपज एवं गुणवत्ता की दृष्टिकोण से बराबर प्रभावशील रहे हैं। अध्ययनों से पता लगा है कि, मिल की मैली (प्रेसमड) फास्फोरस का अच्छा स्रोत है। प्रेसमड से अन्य लाभ भी है जैसे :

- इससे मृदा में कार्बनिक पदार्थ की मात्राा बढ़ती है।
- इससे नत्राजन एवं गंधक की भी पूर्ति होती है।
- यह मृदा सुधारक का भी कार्य करता है। यह अम्लीय मृदा में कैल्शियम का स्तर बढ़ाता है तथा एलुमिनियम के स्तर को कम करता है।
- यह मृदा की आयन विनिमय क्षमता (कैटायन इक्सचेन्ज कैपेसिटी) को वृद्धि करता है।

अम्लीय मृदा में, प्रेसमड, ट्रिपिल सुपर फास्फेट से अधिक प्रभावशील है लेकिन यह चूना डालने का विस्थापक नहीं है। लगभग 15–20 टन/है. की दर से प्रेसमड का प्रयोग गन्ने की उपज एवं गुणवत्ता की वृद्धि करता है तथा अधिकतर मृदाओं के लिए अनुकूल रहता है।

फास्फोरस को बुवाई के समय ही एक बार में पूर्ण रूप से दे दिया जाता है। गन्ने में फास्फोरस की अधिक आवश्यकता किल्ले निकलने तथा शुरूआती वृद्धि के समय ही रहती है जब मृदा में जड़ें अधिक विकसित नहीं होती है। इस प्रकार से फास्फोरस का पट्टी विधि द्वारा प्रयोग से जो कि गन्ने के ठूँठ के पास होता है, फास्फोरस की कमी वाले क्षेत्र को पोषण प्रदान करता है जिससे फास्फोरस का स्थिरीकरण भी नहीं हो पाता। लेकिन अगर राक फास्फेट का प्रयोग किया गया है तो इसकी संस्तुति की जाती है कि यह मृदा में पूर्ण रूप से मिला दिया जाय। गन्ने में विभिन्न क्षेत्रों के आधार पर 45–225 किग्रा./है. फास्फोरस की दर संस्तुत की जाती है।

फास्फोरस का संयुक्त प्रभाव

जहॉ धान की फसल के बाद गन्ना लिया जा रहा हो वहॉ फास्फोरस के प्रयोग के बाद जस्ता की कमी परिलक्षित होती है। इस प्रकार से फास्फोरस का जस्ते के साथ ऋणात्मक संयुक्त प्रभाव दिखलाई पड़ता है। फास्फोरस डालने के बाद जस्ते का कम अवशोषण अकेले भौतिक ऋणात्मक संयुक्त प्रभाव ही नहीं होता है बल्कि यह दैहिक रूप से भी संचालित होता है। जस्ते एवं फास्फोरस का संयुक्त प्रभाव पौधों की जडों से प्रारम्भ होता है तथा पौधे के उपरी भाग तक प्रवाहित होता हैं। फास्फोरस के संयुक्त सम्बन्ध में सामान्य तथा क्षारीय मृदाओं में गंधक का अम्लीय प्रभाव के वजह से इसकी उपलब्धता अधिक समय तक बनी रहती है। उन मृदाओं में जिनकी जल ग्रहण करने की शक्ति कम होती है एवं लौह, एल्युमिनियम तथा मैंगनीज की अधिकता होती है इन पोषक तत्वों का हानिकारक स्तर सिलिकान की उपस्थित के कारण कम हो जाता है जिससे फास्फोरस की उपलब्धता बढ़ती है।

पोटेशियम

गन्ने में प्रोटीन तथा कार्बोहाइड्रेट के संश्लेषण एवं संचालन के लिए तथा शर्करा के संश्लेषण में पोटेशियम का विशेष महत्व है। पोटेशियम की कमी की दशा में गन्ने में प्रकाश संश्लेषण द्वारा बनाए भोजन के संचालन में कमी पायी जाती है। जल के सम्बन्ध में इसका महत्व तो सभी को पता है तथा बारानी खेती में बाद में भी पोटेशियम खेत में डालने के लिए संस्तुत किया जाता है। पोटेशियम का उपयोग अधिक नत्रजन के दुष्प्रभाव को कम करता है तथा इससे कोशिका की दीवारों को मजबूती प्रदान होती है जिससे गन्ने के गिरने की सम्भावना कम हो जाती है। पोटेशियम के प्रयोग से शर्करा का उत्पादन बढ़ता है। गन्ने में शर्करा की मात्रा भी पोटेशियम के प्रयोग से बढ़ती है जिसका मुख्य कारण पत्ती में नत्रजन की कमी तथा अपचयित शर्करा को अनपचयित शर्करा में बदलना होता है। कर्नाटक में मान्डया में (एल्फीसोल) प्रकार की मृदा होने के कारण पोटेशियम का प्रभाव अंकित किया गया। संखेश्वर में वर्टीसोल्स में भी इसका प्रभाव पाया गया। लेकिन पूसा (बिहार) तथा लखनऊ में उपज वृद्धि में इसका प्रभाव न्यूनतम रहा। क्योंकि यहॉ की मृदा में इल्लाइट खनिज की अधिकता है जिससे पोटेशियम की आपूर्ति

होती रहती है।

पोटेशियम से गन्ने के व्यास में भी वृद्धि अंकित की गयी। इसका प्रयोग बुवाई के समय नालियों देने से अच्छा रहता है। बलुई मृदा में इसको दो बार भी प्रयोग किया जा सकता है। वैसे पोटेशियम के सभी स्रोतों का उपज एवं गुणवत्ता पर कोई अन्तर नहीं पाया गया है। पोटेशियम के प्रयोग से गन्ने की उपज एवं शर्करा में वृद्धि होती है।

गंधक

गन्ने में गंधक का प्रयोग उत्पादकता में वृद्धि तथा कुछ सीमा तक मृदा जल में कमी को भी सह लेने की शक्ति प्रदान करता है। उत्तर भारत में गंधक के प्रयोग से गन्ने की उपज में वृद्धि का मुख्य कारण नत्रजन उपयोग क्षमता में वृद्धि जो कि नाइट्रेट रिडक्टेस एन्जाइम की क्रियाशीलता में वृद्धि की वजह से हुई जिससे अन्ततः शुष्क पदार्थ की मात्रा में प्रति किलो नत्रजन के उपयोग से बढ़त हुई। रैटून स्टटिंग रोग में गंधक के प्रयोग से लाभ होता है। इसमें कार्बोहाइड्रेट शर्करा के चयापचय में वृद्धि होती है। इस प्रकार से 30–40 किग्रा गंधक/हे. की दर से प्रयोग गन्ने की उपज एवं गुणवत्ता के लिए उचित रहता है। गंधक के विभिन्न स्रोतों में अमोनियम सल्फेट, अमोनियम फास्फेट, सल्फेट, जिप्सम एवं सिंगल सुपर फास्फेट का प्रभाव लगभग समान पाया गया है।

संतुलित उर्वरकों का प्रयोग

भारतीय मृदाओं में द्वितीय तथा सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी का कारण अधिक पोषक तत्व की मात्रा वाले अकार्बनिक उर्वरकों का प्रयोग एवं कम पोषक तत्वों की मात्रा वाले कार्बनिक खादों का न्यूनतम प्रयोग ही रहा है। फलस्वरूप गन्ने में अन्य पोषक तत्वों की कमी परिलक्षित हो रही है। खादों पर लम्बे समय तक किये जाने वाले प्रयोगों से यह सिद्ध हो चुका है कि फसल की उत्पादकता तथा मृदा की गुणवत्ता, अन्तः गहन फसल पद्धति में अधिक समय तक बनाए रखने के लिए न ही रासायनिक उर्वरक एवं न ही कार्बनिक खादें ही अकेले उत्तम सिद्ध हो सकती हैं। इसलिए पोषक तत्वों का समेकित प्रबन्ध जिससे सभी रासायनिक, कार्बनिक एवं जैविक खादों का समग्र प्रयोग, जिससे मृदा की उर्वरता एवं फसल की उत्पादकता को बनाए रखा जा सके ही उत्तम विधि है।

हरी खाद वाली फसलें जैसे सनई, ढैंचा, ग्वार इत्यादि को जुताई कर मृदा में मिलाने से मृदा की संरचना में तथा फास्फोरस की घुलनशीलता पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। सामान्यतयः एक हरी खाद वाली फसल लगभग 30–40 किग्रा. नत्रजन का मृदा में स्थिरीकरण करती हैं। शाहजहाँपुर (उ.प्र.) में अध्ययनों से पता चला कि गन्ने की पंक्तियों के बीच में सनई की खेती तथा 60 दिन की अवस्था पर खेत में ही इसको पलटने से मृदा में कार्बनिक पदार्थ की बढ़ोत्तरी होती है एवं गन्ने की उपज तथा शर्करा पर कोई विपरीत प्रभाव भी नहीं पड़ा। मुजफ्फरनगर तथा लखनऊ में अध्ययनों से यह पता चला कि केवल हरी खाद की जड़ों से ही 50 प्रतिषत नत्रजन मृदा में मिल जाती है।

आलू की पत्तियों की हरी खाद जिसमें 2.5 प्रतिशत नत्रजन तथा 80–85 प्रतिशत जल होता है से 30 किलो. नत्राजन/हे. मृदा में उपलब्ध होती है, लेकिन गन्ने की उपज में वृद्धि 50 किग्रा. नत्रजन/हे. के समतुल्य होती है। इसका प्रभाव अन्य सारे पोषक तत्वों की उपलब्धता तथा पत्तियों के उसी जगह पर सड़ने के कारण हुआ। भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान लखनऊ में शरदकालीन गन्ने में गन्ना उत्पादन क्षमता (237.5 किलो. गन्ना/किलो. नत्रजन) ढैंचा की हरी खाद लेने के बाद जब गन्ना की बुवाई की गयी में रसायनिक खादों की तुलना में वृद्धि अंकित की गयी। जहाँ पर केवल रासायनिक खादों का ही प्रयोग हुआ था वहाँ पर यह केवल 128.5 किलो. गन्ना/किलो. नत्रजन पायी गयी। गोबर की खाद डालने से यह 181.2 किलो. गन्ना/किलो. उर्वरक नत्रजन पायी गयी। मिल से निकलने वाले अपशिष्ट पदार्थों में लगभग 3 प्रतिशत प्रेसमड होता है। इसके अतिरिक्त इससे अच्छी मात्रा में द्वितीय तथा सूक्ष्म पोषक तत्व भी मिलते हैं। रासायनिक उर्वरकों के साथ प्रेसमड के समेकित प्रबन्ध से मृदा की भौतिक, रासायनिक तथा जैविक संरचनाओं पर लाभदायक प्रभाव पड़ता है तथा नत्राजन का पौधों के द्वारा उपयोग भी बढ़ता है। इस प्रकार से 30 टन/हे. की दर से अगर प्रेसमड का प्रयोग किया जाय तो नत्रजन की पौधों के द्वारा शोषण 100 किग्रा. नत्रजन रासायनिक खादों के बराबर ही होता है। 10 टन प्रेसमड प्रति हेक्टेयर के साथ + 75 किग्रा. नत्रजन (रासायनिक उर्वरकों के द्वारा डालने से) 50 प्रतिशत नत्रजन की बचत होती है और इसकी उपज लगभग 150 किग्रा. नत्रजन/है. की दर के बराबर आती है।

विन्नस जो कि एल्कोहल डिस्टीलरी से अपशिष्ट द्रव पदार्थ के रूप में निकलता है तथा चीनी मिल द्वारा ही उत्पादित किया जाता है को प्रेसमड, रासायनिक उर्वरकों के साथ मिश्रित कर गन्ने की उपज एवं गुणवत्ता पर कोई हानिकारक प्रभाव नहीं दिखायी पड़ा। स्पेन्टवा । को सिंचाई जल के साथ देने से गन्ने में लवणीय तथा कैल्शियम युक्त मृदाओं में लौह जनित हरिमाहीनता में कमी पायी गयी।

वर्मी कम्पोस्ट : एक उत्तम जैविक खाद

चंचिला कुमारी[1], मनीष कुमार[1] एवं विनय कुमार सिंह[2]

[1]कृषि विज्ञान केन्द्र, कोडरमा, [2]भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

वर्मी कम्पोस्ट निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका केंचुओं की है जिसके द्वारा कार्बनिक/जीवांश पदार्थों को विघटित करके/ सड़ाकर यह खाद तैयार की जाती है। यही वर्मी या केंचुए की खाद कहलाती है। वर्मी कम्पोस्टिंग कृषि के अवशिष्ट पदार्थ, शहर तथा रसोई के कूड़े कचरे को पुनः उपयोगी पदार्थ में बदलने तथा पर्यावरण प्रदूषण को कम करने की एक प्रभावशाली विधा है। वर्मी कम्पोस्ट बनाने में निम्न कार्बनिक पदार्थों का प्रयोग किया जा सकता है :

कृषि या फसल अवशेष

पुवाल, भूसा, गन्ने की खोई, पत्तियां, खरपतवार, फूल, फसलों के डंठल, बायोगैस अवशेष, गोबर आदि।

घरेलू तथा शहरी कूड़ा कचरा

सब्जियों के छिलके तथा अवशेष, फलों के छिलके तथा अवशेष, फलों, सब्जी मण्डी का कचरा, भोजन का अवशेष आदि।

कृषि उद्योग सम्बन्धी व्यर्थ पदार्थ

वनस्पति तेल शोध मिल, चीनी मिल, शराब उद्योग, बीज तथा खाद्य प्रसंस्करण उद्योग के अवशिष्ट पदार्थ।

केंचुओं की प्रजातियां

कम्पोस्ट बनाने की सक्षम प्रजातियों में मुख्य रूप से *इसेनिया फोटीडा* तथा *इयूड्रिल्स इयूजीनी* है जिन्हें केंचुए की लाल प्रजाति भी कहते हैं। इसके अतिरिक्त *पेरियानिक्स एक्सवकेटस, लैम्पीटो माउरीटी, डावीटा कलेवी* तथा *डिगोगास्टर बोलाई* प्रजातियां भी है जो कम्पोस्टिंग में प्रयोग की जाती हैं परन्तु ये लाल केंचुओं से कम प्रभावी हैं।

वर्मी कम्पोस्ट कैसे बनायें

किसी ऊंचे छायादार स्थान जैसे पेड़ के नीचे या बगीचे में 2 मीटर × 2 मीटर × 2 मीटर क्रमशः लम्बाई, चौड़ाई तथा गहराई का गड्ढा बनायें या जमीन के ऊपर 9 ईंच दिवार बनायें। गड्ढे के अभाव में इसी माप की लकड़ी या प्लास्टिक की पेटी का भी प्रयोग किया जा सकता है। जिसके निचले सतह पर जल निकास हेतु 10–12 छेद बना देने चाहिए।

- सबसे नीचे ईंट या पत्थर की 11 सेमी. की परत बनाइये फिर 2.0 सेमी. मौरंग या बालू की दूसरी तह लगाइये। इसके ऊपर 15 सेमी. उपजाऊ मिट्टी की तह लगाकर पानी के हल्के छिड़काव से नम दें। इसके बाद अधसड़ी गोबर डालकर एक किलो प्रति गड्ढे की दर से केंचुए छोड़ दें।
- इसके ऊपर 5 –10 सेमी. घरेलू कचरे जैसे सब्जियों के अवशेष, छिलके आदि कटे हुए फसल अवशेष जैसे पुवाल, भूसा, पेड़ पौधों की पत्तियां आदि को बिछा दें। 20–25 दिन तक आवश्यकतानुसार पानी का हल्का छिड़काव करते रहें इसके बाद प्रति सप्ताह दो बार 5–10 सेमी. सड़ने योग्य कूड़े कचरे की तह लगाते रहें जब तक कि पूरा गड्ढा भर न जाये। रोज पानी का छिड़काव करते रहे। कार्बनिक पदार्थ के ढेर पर लगभग 50 प्रतिशत नमी होनी चाहिए। 6–7 सप्ताह में वर्मी कम्पोस्ट बनकर तैयार हो जाता है। वर्मी कम्पोस्ट बनने के बाद 2–3 दिन तक पानी का छिड़काव बन्द कर देना चाहिए। इसके बाद खाद निकाल कर छाया में ढेर लगाकर सुखा देते हैं। फिर इसे 2 मिली. छन्ने से छानकर अलग कर लेते हैं। इस तैयार खाद में 20–25 प्रतिषत नमी होनी चाहिए। इस तैयार खाद को आवश्यक मात्रा में प्लास्टिक की थैलियों में भर देते है। इसके अतिरिक्त वर्मी कम्पोस्ट का निर्माण वायु पंक्ति (विन्डरो) विधि से भी किया जा सकता है जिसमें जीवांश पदार्थ का ढ़ेर किसी छायादार जमीन की सतह पर लगाकर किया जाता है।

केंचुए का कल्चर या इनाकुलम तैयार करना

केंचुए कूड़े कचरे के ढेर के नीचे से कम्पोस्ट बनाते हुए ऊपर की तरफ बढ़ते हैं पूरे गड्ढे की कम्पोस्ट तैयार होने के बाद ऊपरी सतह पर कूड़े कचरे की एक नयी सतह लगा देते हैं तथा पानी छिड़क कर नम कर देते है। इस सतह की ओर सभी केंचुए आकर्शित हो जाते हैं। इन्हे हाथ या किसी चीज से अलग कर इकट्ठा कर लेते है जिसे दूसरे नये गड्ढे में अन्तः क्रमण के लिये प्रयोग करते है।

वर्मी कम्पोस्ट के पोषक तत्व

वर्मी कम्पोस्ट के अन्य जीवांश खादों की तुलना में अधिक पोषक तत्व उपलब्ध होते हैं। इसमें लगभग नाइट्रोजन 1–1.5 प्रतिषत, फास्फोरस 1.5 प्रतिशत तथा पोटाष 1.5 प्रतिशत होता है। इसके अतिरिक्त इसमें द्वितीयक तथा सूक्ष्म तत्व भी मौजूद होते है।

वर्मी कम्पोस्ट का प्रयोग

धान्य फसलों, तिलहन तथा सब्जियों के लिए 5.0 से 6.0 टन वर्मी कम्पोस्ट प्रति हे. की दर से प्रयोग करना चाहिए। बुवाई के पहले इसे खेत में बिखेर कर जुताई करके भूमि में मिला देना चाहिए। फलदार वृक्षों में 200 ग्राम प्रति पौधा तथा घास के लान में 3 किग्रा./10 वर्ग मीटर की दर से प्रयोग करें।

वर्मी कम्पोस्ट के लाभ

- मृदा के भौतिक तथा जैविक गुणों में सुधार होता है।
- मृदा संरचना तथा वायु संचार में सुधार हो जाता है।
- नाइट्रोजन स्थरीकरण करने वाले जीवाणुओं की संख्या में वृद्धि होती है।
- कूड़े कचरे से होने वाले प्रदूषण पर नियंत्रण होता है।
- वर्मी कम्पोस्ट एक लघु कुटीर उद्योग के रूप में रोजगार के नये अवसर प्रदान करता है।
- फलों, सब्जियों तथा खाद्यान्नों की गुणवत्ता बढ़ती है तथा उनके उपज में भी वृद्धि होती है।

यह रसायनिक उर्वरक की खपत कम करके मृदा स्वास्थ्य को सुरक्षित रखने का प्रभावी उपाय है।

आरोग्य एवं संजीवनी प्रभाग

चूहों का कृषि में महत्व एवं निदान

दुष्यन्त कुमार राघव
कृषि विज्ञान केन्द्र, हजारीबाग, झारखंड

जानवरों, कीट व्याधि व कवकों का हमारी कृषि अर्थ व्यवस्था में अति महत्वपूर्ण योगदान है । जहाँ ये हमारी फसल उत्पादन में वृद्धि करते है वहीं हानि भी आर्थिक स्तर तक पहुंचाते हैं। चूहे को भारतीय संस्कृति में धार्मिक लाभ के कारण पहचान मिली है। लेकिन विगत वर्षो में इसने हमारी कृषि उत्पादन में सेंधमारी करके नुकसान पहुँचाया है। चूहे की 46 जाति एवं 128 प्रजाति भारतीय उपमहाद्वीपों में पायी जाती है जिसमे से हमारे कृषि महत्व में 18 प्रजाति की पहचान की गई है। हमारा सामाजिक परिवेश मौसम फसल परिस्थितिकी एवं भूमण्डल का आधार इनकी क्रियाशीलता के लिए जिम्मेदार होता है। मुख्यत: *बेन्डीकोटा बैन्गालेनसिस* नामक प्रजाति का ही हमारे कृषि क्षेत्र में अधिक प्रभाव है, यह खेतों में, घरो में, अनाज के गोदामों में, नमी व सिंचित क्षेत्रों में अधिक पाया जाता है। सूखा प्रभावित कृषि क्षेत्रों में *टेट्राइडिका* व *मुसा मसकुलस* नामक प्रजाति पूरे भारतवर्ष में फसलों को नुकसान पहुँचाती है। चूहे मुख्यत: धान, गेहूँ गन्ना, मक्का, मोटे अनाज वाली फसलों जैसे रागी, मडुवा आदि, ज्वार, तेल वाली फसल, दलहनी फसलों, सब्जियों में आलू, टमाटर, मशरूम एवं अनाज के गोदाम एवं मुर्गी फार्म में मुर्गियों को दाना इत्यादि में आक्रमण करके, उत्पादन एवं उत्तमता को प्रभावित करते हैं। साधारणतयः इनका हानि स्तर 2.15 प्रतिशत तक पाया गया है। लेकिन मानव व्यवहार व परिस्थिति की संतुलन एवं कीटनाशकों के अंधाधूंध इस्तेमाल के कारण इनका प्रकोप झारखण्ड जैसे राज्य में 20–25 प्रतिशत तक पहुँच चुका है कहीं– कहीं तो ये 100 प्रतिशत तक हानि पहुँचाते हैं।

जनसंख्या वृद्धि के कारक

हाल के वर्षों में इनका प्रकोप बढ़ा है जिससे इन्होंने राष्ट्रीय स्तर पर अपनी पहचान भण्डारण एवं फसलों के मुख्य पीड़क के रूप में स्थापित कर ली है। इसके लिए निम्नलिखित कारक जिम्मेदार है।

फसल चक्र

आधुनिक कृषि में जनसंख्या वृद्धि के कारण कृषि की सघन खेती प्रणाली अपनाई जा रही है जिससे इनके लिए अधिक समय तक छिपने की जगह एवं भोजन उपलब्ध हो रहा है जो कि इनकी जनसंख्या में वृद्धि करने में सहयोग करता है ।

मौसम

फसल उगाने की पद्धति में हेरफेर करके पूरे वर्ष मौसम आधारित अनाज वाली फसलें उगाई जाती है जैसे धान, गेहूं, बाजरा, ज्वार आदि जो पूरे वर्ष इनके लिए भोजन उपलब्ध कराती है।

भोजन उपलब्धता

कृषि में सघनीकरण एवं तकनीकी प्रसार के कारण भरपूर अनाज उत्पादन होता है। जिससे खेतों से गोदाम तक अनाज की भारी उपलब्धता रहती है ।

प्राकृतिक शत्रुओं का अभाव

कृषि का सघनीकरण के कारण खेतों में वृक्षों का अभाव एवं कीटनाशकों का अंधाधुध प्रयोग से इनके प्राकृतिक शत्रुओं जैसे उल्लू, सांप इत्यादि की संख्या में भारी कमी हो रही है जिससे इनकी संख्या में वृद्धि होती रहती है ।

परिस्थितिकी संतुलन

प्राकृतिक शत्रुओं के आवास का जानकारी के अभाव में नष्ट करना, इनके संरक्षण करने के लिए कोई ठोस सरकारी योजना की कमी खाद्य श्रृखंला का अभाव भी उनकी जनसंख्या वृद्धि करता है ।

यांत्रिक कर्षण क्रियायें

कर्षण क्रियाओं के समय प्राकृतिक शत्रु नष्ट हो जाते हैं जैसे जुताई करते समय सांप के अण्डे, खेत में उपस्थित केचुए जो कि प्राकृतिक शत्रुओं को आकर्षित करते हैं। अधिक यांत्रिकरण अपनाते समय अगर अतिरिक्त सावधानी न ली जाये तो ये चुहे के लिए उपयुक्त साधन हो जाते है। गर्मीयों में खाली खेत छोड़ना एवं उसकी जुताई नहीं करने से वहाँ चूहों का स्थाई आवास बन जाता हैं।

अधिक जनन क्षमता

चूहों की जनन क्षमता अधिक होती है। एक जोड़ा चूहों का समूह पूरे वर्ष में 1 लाख तक चूहों की संख्या पहुँचा सकता है। इसके लिए इसमें प्राकृतिक शत्रु होने से इनकी जनसंख्या में तेजी से वृद्धि के बावजूद इनकी जनसंख्या को नियंत्रित किया जा सकता है।

जलवायु

किसी भी प्राणी के विकास एवं विनाश के लिए जलवायु सबसे प्रभावी कारक है। प्रजनन दर में कमी या वृद्धि, आर्द्रता, नमी, वर्षा, बाढ़, सूखा, गर्म हवा, धूप इत्यादि

सीधे–सीधे हमारी जनसंख्या को प्रभावित करते है। बदलते मौसम के प्रभावों का असर समुचे वायुमण्डल पर देखा जा रहा है जैसे असमय बाढ़, वर्षा, असमय फसलों का पकना या वृद्धि के लिए उपयुक्त तापक्रम का न मिलना या इसके प्रभाव के कारण हमारी खाद्य श्रृखंला का क्रम बदलना भी प्रमुख कारण है ।

मुख्य फसलों में आर्थिक हानि एवं मुल्यांकन

धान

यह हमारे विश्व में मुख्य भोजन फसल है। भारत में इसे मुख्यतः उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखण्ड, आन्ध्रप्रदेश, तमिलनाडु, केरल एवं उत्तर पुर्वी क्षेत्रों में उगाया जाता है। चूहों के द्वारा सिंचित क्षेत्रों में उगाये जाने वाली धान के खेत, असिंचित क्षेत्रों में निचली भूमि तथा वर्षा आश्रित होने में उपजाऊँ निचली भूमि में इनका प्रकोप अधिक होता है। उत्तर पूर्व क्षेत्रों में बांस में फूल आने के समय इनका प्रकोप बढ़कर 30–98 तक पहुँच जाता है। धान की फसल में मुख्यतः *बेन्डिकोटा बैन्गालेसिस* का प्रकोप होता है। धान की फसल में बालियों के बनते समय तथा पकते समय इसका प्रकोप होता है। यह तने को बीच से काटकर गिरा देता है तथा बालियों को काटकर अपने बिल के अन्दर इकट्ठा करता है, अधिक नुकसान की स्थिति में इसके बिल के मुंह के पास कटी हुई बालियों का ढेर पाया जाता है। धान की फसल में इनके द्वारा 11–28 प्रतिशत तक हानि देखी गई है। धान की फसल काटने के बाद यह खेतों में लगने वाली अन्य फसल जैसे आलु में आक्रमण प्रारम्भ कर देता है तथा आलु की मेड़ को खोदकर अच्छे आलुओं काटकर निकाल देता है इसमें भी यह 40–60 प्रतिशत तक हानि पहुँचाता है। मक्का की फसल में यह पौधे के ऊपर चढ़ जाता है तथा हरे भूट्टे को कुतर देता है अन्त में उसे काटकर नीचे गिरा देता है। मक्के के दाने कठोर होने पर गोदाम तक जाकर भुट्टे में हानि पहुँचाते हैं।

गन्ना

गन्ने की फसल में 90 दिनों की अवस्था के बाद ही हानि पहुँचाना प्रारम्भ कर देते हैं और अन्त तक यह प्रयास जारी रहता है। मुख्यतः यह निचले हिस्से की गोलाई से काटकर गन्ने को गिरा देते हैं। मुख्यतः *बे. बेन्गालेन्सिस* के द्वारा हानि पहुँचाई जाती है। अगर गन्ने के झुण्ड को अच्छे से बंधाई नहीं हो पाती है तो सिंचाई के समय हवा के झोके से यह गिर जाता है क्योंकि यह गन्ने के पौधा के जड़ को खोखला कर वहाँ घर बना लेता है, इसके कारण कुतरे हुई गन्ने के पौधे में अन्य बीमारियों का प्रकोप भी होता है। गन्ने की रेटुन फसल में इसका प्रकोप अधिक देखा गया है। जो कि 8–26 प्रतिशत तक होता है। जिससे गन्ने में चीनी की उत्पदकता भी 26 प्रतिशत तक कम हो जाती है।

तेल वाली फसलें

सभी तेलीय फसलें जैसे मुंगफली, सूरजमुखी आदि में इसका प्रकोप अधिक खतरनाक रूप से होता है। इन खेतों में चूहे की *म्यूसा पोडगा, बेन्डीकोटा बेन्गालेन्सिस* एवं *म्यूसा मसकुलस* के द्वारा 85 प्रतिशत तक हानि पहुँचाती है।

दलहनी फसलें

दालों में अधिक प्रोटीन पाया जाता है जो कि किसी भी जानवर के लिए अत्याधिक आवश्यक पोषक पदार्थ है। माध्यम से अत्याधिक स्तर तक पौधे, फली एवं कलीयों की क्षति अरहर, मसूर, मूंग, सोयाबीन एवं चना में चूहों के द्वारा की जाती है। भण्डारण के समय भी चूहों के द्वारा हानि पहुँचाई जाती है।

सब्जियाँ

सामान्यतः चूहे सभी सब्जियों में हानि पहुँचाते हैं लेकिन भूमिगत सब्जियों जैसे आलू, शकरकन्द, गाजर इत्यादि में सर्वाधिक हानि पहुँचाते हैं। टमाटर पकते समय मिर्च में फल लगने पर हानि पहुंचाते हैं। सब्जियों में प्रमुखता *बेन्डीकोटा बेमालैनसिस* ही अत्याधिक हानि पहुँचाते हैं।

पाल्ट्री फार्म

ब्रायलर इकाईयों वाले क्षेत्रों में इसका प्रकोप भी आर्थिक हानि के स्तर तक पहुँच गया है। मुख्यतः *बेन्डीकोटा बेनगालनसिस* का प्रकोप सर्वाधिक होता है। ये ब्रायलर फीड को खा जाते है, तथा जब ब्रायलर को फीड दिया जाता है उस समय भी उसके साथ प्रतियोगी होते है। क्योंकि ब्रायलर ईकाई में तापमान नियंत्रण करने के लिए धान की भूसी का इस्तेमाल किया जाता है इसलिए इनके रहने के लिए उपयुक्त वातावरण मिल जाता है। इनके द्वारा 5–10 प्रतिशत तक हानि पहुँचाई जाती है। ये कई बीमारियों के भी वाहक होते हैं जिससे ब्रायलर में बीमारी फैलने की संभावना अधिक बढ़ जाती है। इसके द्वारा विसर्जित मल – मूत्र के द्वारा कई बिमारियाँ भी फैलती है। *रेटस रेटस* एवं *म्यसू मस्कुलस* शहरी क्षेत्रों में तथा *बन्डीकोटा बैन्गालेन्सिस* ग्रामीण क्षेत्रों में हानि पहुँचाते है। इसके द्वारा 30 दिन की उम्र वाले ब्रायलर को भी हानि पहुँचाते है जो कि 5–9 प्रतिशत तक पायी गई है । ये अण्डों को रखने वाले ट्रे को भी हानि पहुँचाते है जो कि 5–9 प्रतिशत तक होता है। इनके द्वारा सर्वाधिक हानि संरचनात्मक ढाँचे को पहुँचाई जाती है। जिससे पूरी ईकाई में 50–75 प्रतिशत तक की हानि होती है इससे मरम्मत व देखभाल में अधिक व्यय होता है जिससे सारी ईकाई का मुनाफा प्रभावित होता है।

उद्यान व नर्सरी

इसमें ये मुख्यतः तीन प्रकार से हानि पहुँचाता है (1) अँकुरित पौधे को काट देता है जिससे पौधा मर जाता है (2) जड़ को काट देता है, जिससे उसकी बढ़वार धीरे होती है या पौधा मर जाता है (3) फल पकने की अवस्था में पेड़ पर चढ़कर फलों को काट देता है। फलों को तोड़कर रखने के बाद इसका प्रकोप आसानी से देखा जा सकता है क्योंकि गोदाम में आक्रमण करना अति सरल होता है। कृषि में यंत्रीकरण के प्रभाव के कारण कटाई व थ्रैसिंग के समय दाने गिर जाते है। जिसके माध्यम से आक्रमण में सुविधा रहती है। इस समय अनुमानतः 11 से 1 कुन्तल प्रति हेक्टेयर हानि दर्ज की गई है। अनाज का बाई प्रोडक्ट में प्रयोग होने के कारण बेकरी ईकाई द्वारा अनाज की अधिक खपत हो रही है लेकिन चूहा नियत्रंण के ऊपर ध्यान नहीं देने के कारण ये अधिक हानि पहुँचा रहे है । शहरी क्षेत्र में बिस्कुट फैक्ट्री, बैंकिग उद्योग, पशु आहार उद्योग, मुर्गी आहार उद्योग के प्रचलित होने के कारण इसका प्रकोप लगातार बढ़ रहा है।

चूहा नियंत्रण की योजना एवं विधि

पर्यावरणिक एक प्राकृतिक विधि

- सर्वप्रथम इसके आवास/कॉलोनी की पहचान करें तत्पश्चात् उस स्थान को नष्ट कर दें।
- बेकार पड़ी कृषि योग्य भूमि पर इसकी कालोनी न बनने दें, इस भूमि में जंगली सड़ी व बेकार के खरपतवार को नष्ट कर दें जो कि इसके प्रजनन में मदद करते हैं तथा आवास उपलब्ध कराते हैं।
- चूहे प्रायः खेतों की मोटी एवं सूखी मेड़ के पास अपना बिल बनाते हैं इसलिए खेतों में मेढ़ों की ऊंचाई एवं मोटाई कम रखे।
- खाने योग्य कूड़ा – कचरा जिसे चूहे अपना भोजन बना सकते हैं उसको इधर – उधर न डालें। यह ध्यान रखे की गोदामों से निकलने वाले कचरे को खुले में न डाले उसे नष्ट कर दें।

भोज्य पदार्थो में कमी

इसका मुख्य भोजन गेहूँ एवं धान है। इसलिए इन अनाजों का व्यवस्थित प्रयोग करें। गोदाम में भण्डारण करते समय व खेत से लेकर गोदाम तक लाने की प्रक्रिया में सावधनी बरते जिससे इनका सही विस्तारण हो सके, इससे चूहों को भोजन मिलने में असुविधा होगी और इसकी संख्या पर नियंत्रण रखा जा सके।

एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में जाने पर रोक लगाना

बन्डीकोटा बैन्गालेन्सिस बहुत गहरे बिल खोदता है, *रेटस रेटस* पेड़ों व बिल्डिगों में अपना निवास बनाना पसन्द करता है। जबकि म्यूसा मसकुलस 1 से.मी चौड़ी स्थान से भी निकल जाता है। उपरोक्त तीनों प्रजातियों में पूरे वर्ष प्रजनन तीब्र गति से होता है। इसलिए बेरियर/स्कावट के माध्यम से एक क्षेत्र में जाने से जाली से रोके जैसे नारियम के पेड़ों पर मेंटल की चादर गोलाई में बांधे जिससे ऊपर न चढ़ पाये। इसके साथ ही हम लोहे के तार की जाली में बिजली प्रवाहित करें।

दूर भगाने वाले तकनीक

पारम्परिक विधि के अनुसार पाइन वृक्ष की पत्तियों के नुकीली सिरे को ऊपर की तरफ कर के खेत के चारो ओर रखे तथा पाम के पौध को झण्डे की तरह खेत में लहराये जिसके लिए पालीथीन के 3–4 फीट टुकड़े काटकर उसमें लगावे ऐसा करने पर सांप के रहने जैसी आवाज आती है जो कि चूहों को खेत से दूर करती है। अल्ट्रासोनिक तरंग पैदा करने वाले कुछ यन्त्र बाजार में उपलब्ध है जिसके प्रयोग से भी इनको खेतों से दूर रखने में मदद मिलती है। कॉपर आक्सीक्लोराइड 1.5 % घोल एवं 4.5 % थिरम का घोल बनाकर इसमें मूंगफली का तेल मिलाकर खेत में रखने से रेटस रेटस नामक प्रजातियों 30 दिन तक खेतों से दूर रखने में प्रभावी पाई गई है ।

कृषण क्रियाओं के द्वारा नियंत्रण

फसल अन्तराल एवं जुताई

जीरो टिलेज विधि का प्रयोग न करें क्योकि गेहूं की बुवाई के बाद उस खेत को धान के फसल अवशेष से ढकने पर इसका प्रकोप बढ़ता है, क्योंकि पुरानी फसल के समय वाले बिल/आवास नष्ट नही हो पाते हैं इसलिए खेत की जुताई कर दे, जिस खेत में फसल ली जा रही है उस खेत के आस – पास भी जुताई करे जिससे चूहों के आवास को नष्ट किया जा सके। जुताई करने के उपरान्त चूहों के बिलों में 49% तक की कमी देखी गई है। फसल चक्र जैसे धान – आलू , मूंगफली– आलू गन्ना – आलू आदि इस फसलचक्र को न अपनावे, ध्यान रहे अगली फसल ऐसी होनी चाहिए जिसमें चूहों के आक्रमण या निवास की सम्भवना कम से कम हो। धान की रोपाई करने से पहले पडलिग करे जो कि गन्ने के खेत के पास में होने वाले आक्रमण को कम करती है।

प्रतिरोधी प्रजाति एवं फसल का समय चक्र – चूहे की सूघने की शक्ति अधिक तीव्र होती है भोजन में बदलाव या फसल प्रणाली में कोई भी बदलाव इसकी आदत को प्रभावित करता है। इसलिए अगेती फसलों में इसका आक्रमण अधिक होता है क्योंकि उस समय खेती भोजन की उपलब्धता की कमी होती है। इसलिए अधिकतर क्षेत्रों में एक साथ बुवाई कटाई

जिससे इनके द्वारा होने वाली हानि को कम किया जा सके तथा इसकी संख्या को एक साथ नियत्रंण किया जा सके।

जैविक विधि द्वारा नियंत्रण

परजीवी एवं रोगाणु का प्रयोग

यह विधि प्राकृतिक रूप से अधिक व्यवहारिक एवं पर्यावरण सन्तुलन में अधिक लाभदायक है। इसके अन्तर्गत सालमोनेला बैक्टीरिया एवं म्यूरिन टाइफस फीबर बैक्टीरियम स्ट्रेन – 5170, रेटस रेटस एवं *बेन्डीकोटा बैनगालेनसिस* प्रजाति के नियंत्रण में अधिक प्रभावी पाया गया है। आस्ट्रेलिया में चूहे के द्वारा प्लेग फैलाने के समय *हीपेटिक निमेटोड* (Capillaria hepatica) के प्रयोग से सफलता पूर्वक नियंत्रण किया गया था। पंजाब में पाये जाने वाले *बेन्डीकोटा बैन्गालॉसिस* प्रजाति *ट्राइकोस्ट्रोगलिड निमेटेड* (*हेप्टेनास्कस बैन्डीकोटी*) नामक निमोटोड से ग्रसित होकर मर गये थे। इसी तरह खून चूसने वाली बग *पोलीप्लेक्स स्पाईन्यूलोउस* गुजरात में 1989 – 90 चूहे की मौत का कारण बनी थी ।

जनन क्षमता को प्रभावित करने वाले कारक

कुछ रासायनिक पदार्थ जैसे क्लोमीफेन टेट्राडीफोन, यूराडोन्टीन, कोलचिसिन, ग्लाइजोफ्रोल एवं एल्फा–क्लोरोहाइड्रिन के प्रयोग से चूहे की जनन क्षमता को पूरी तरह प्रभावित किया जा सकता है। इसके फलस्वरूप इनकी जनसंख्या को नियंत्रित करने में मदद मिलती है। यह *बन्डीकोटा बैन्गालेन्सिस* नामक प्रजाति के लिए पूर्णता उपयुक्त है। चूहे की अन्य प्रजाति जैसे रेटस रेटस के इथाइल मीथेन सल्कोनेट (FMS) अत्यधिक प्रभावी पाया गया है।

यांत्रिक विधि

इसके अन्तर्गत हम कई तरह की विधियों का प्रयोग करके हम चूहों को नियंत्रण करते है।

- **पकड़ कर मारना** : जब हम खेती की जुताई करते हैं तो चूहे जैसे *बन्डीकोटा बैन्गालेन्सिस* को पकड़कर डण्डे से पीटकर मारे। अन्य विधि में खेती की सिंचाई करें जिससे पानी इसके बिल में भर जाने पर ये बाहर निकलकर भागते हैं और इन्हें पकड़कर डण्डे से आसानी से मार सकते हैं। फसल की कटाई के उपरान्त चूहे के बिल दिखाई देने पर उसमें सूखे हुए गोबर के टुकड़े डालकर जला दे अथवा धान की पुआल को चूहे बिल में डालकर आग लगा दें जिसे अन्दर की तरफ आग की गर्मी व धूंआ पहुंचने पर चूहा बाहर निकलने पर जल कर मर जाता है या बिल के दूसरी निकास द्वार से निकल कर भाग जाता है जिसे पकड़ कर मार दिया जाता है।
- **जाल बिछाकर पकड़ना** : एक लकड़ी का पिंजरा जिसमें रोटी का टुकड़ा या अन्य खाने की सामग्री रखकर चूहों को आकर्षित करते हैं जिसके कारण चूहा इसके अन्दर आता है और पिंजरा का दरवाजा बन्द हो जाने पर चूहा अन्दर ही रह जाता है फिर इस लकड़ी के पिंजरे को पानी डुबो देते हैं जिससे चूहे मर जाता है। ऐसा करने पर हम 2–3 दिनों तक पिंजरे को इस तरह रख देते हैं कि चूहे के पिंजरे के अन्दर आने पर दरवाजा बन्द नहीं होता ऐसा इसलिए करते है क्योंकि चूहो को खतरा भापने की शक्ति अधिक होती है और ऐसा आभास भी होने पर वह उस स्थान पर आना छोड़ देता है।
- **रासायनिक विधि** : (चूहे को मारने वाली दवाओं का प्रयोग) : चूहे की जनसंख्या को नियंत्रण की यह सबसे प्रभावी एवं कम समय लेने वाली विधि है। इसके अन्तर्गत हम दो तरह की दवाओं का इस्तेमाल करते है।

तीक्ष्ण प्रभाव वाली दवा : इसके अर्न्तगत हम जिंक फारस्फाइड एन्युमिनियम फास्फाइड, बेरियम कार्बोनेट, आर्सेनिक ट्राइआक्साईड, थैलियम सल्फेट नामक रसायनिक का प्रयोग करते हैं। कुछ अन्य फासफोरस आधारित चूहकनाशी का खेतों में प्रयोग कर सकते हैं। यह बाजार में रेटोल नाम से उपलब्ध है। ध्रूमन रसायन जैसे एल्युमिनियम फास्फाइड का भूमि के अन्दर बिलों में प्रयोग अधिक प्रभावी रहता है।

धीमे प्रभाव से मारने वाली दवा : इस श्रेणी में आने वाले रसायन जैसे ब्रोमीथेलीन, फलुप्रोपेडीन, कैल्सीफेरोल एवं चैलीकैल्सीफेरोल का प्रयोग करने पर ये चूहे के खाने के पश्चात पेट में जाकर धीरे धीरे अपना प्रभाव दिखाते हैं जिससे चूहों को मरने में कुछ दिन लगते हैं। इन रसायनों में ब्रोमोथेलीन जो कि बन्डीकोटा बैन्गालौन्सिस के लिए अधिक प्रभावी है, इसकी 0.005 से 0.01 प्रतिशत की दर से प्रयोग करते हैं। वाफरिन नामक रसायन रेटस रेटस नामक प्रभावित के लिए अधिक प्रभावी पाया गया है। मुख्यतः ये रसायन खाने में 3–5 दिन के अन्दर चूहे को मार देते हैं। कोलीकैल्सीफेरोल नामक रसायन को चूहे के द्वारा खाने पर पेट की पाचन क्रिया बिगड़ जाती है जिससे चूहे खाना छोड़ देता है और भूख के करण मर जाता है।

प्रथम पीढ़ी के नये रसायनों द्वारा नियंत्रण : इसके अर्न्तगत आने वाले रसायनों को एन्टीकोगुलेन्ट कहते है। ये हाइट्रोक्सी कोयुमेरिनस कम्पाउन्ड या इण्डेन डायन कम्पाउड के अर्न्तगत आते हैं।

इन्हें एक से अधिक बार प्रयोग करना पड़ता है फलानुसार ये धीरे – धीरे अपना हानिकारक प्रभाव दिखाते हैं। इसके अर्न्तगत

वाफरिन, यूमारिन, कोयुमेटरेलायल, डाईफेसिनोन एवं क्लोराफेसिनोन आदि आते हैं। इनका प्रयोग प्रभावकारी होता है लेकिन काफी लम्बा समय लेने के कारण ये प्रचलित नहीं हो पा रहे हैं। हाल के वर्षो में रेरियम (काऊन मेट्रालापल) नामक रसायन का 0.75 प्रतिशत प्रयोग प्रभावी पाया गया है। यह बेन्गलिन्सिस के विरूद्ध अधिक प्रभावी है । इस रसायन को चूहों के बिल के 10 मीटर के आसपास प्रयोग प्रभावीशाली होता है।

द्वितीय पीढ़ी के नये रसायनों के द्वारा नियंत्रण : इस प्रकार के रसायनों में आने से चूहा नियंत्रण अधिक प्रभावी तरीके से किया जा सकता है। इसके अन्तर्गत डायफिनेकोअम, ब्रोडीफोकोअम, ब्रोमेडिओलोन अधिक रसायन आते हैं। उपरोक्त रसायनों में से सबसे अधिक प्रभावी ब्रोमेडिओलोन नामक रसायन पाया गया है इसको चूहों द्वारा खा लेने के पश्चात् 2–3 दिनों के अन्दर चूहे अपने बिल से बाहर आकर मर जाते हैं। अन्य रसायनों से 4–10 दिनों के अन्दर प्रभावी नियंत्रण किया जा सकता है। यह रसायन बहुआयामीय प्रभाव रखते हैं। इन रसायानों की एक खूरक ही चूहे के द्वारा खा लेने पर उनके मरने की सम्भावना 30–100 प्रतिशत तक हो जाती हैं। इन रसायन को चूहे के द्वारा पसन्द किये जाने वाले अनाज जैसे चावल, मोटे आनज, ज्वार, गेहँ आदि के साथ मिलकर प्रयोग किये जाते हैं। जो किसान के लिए आसानी से उपलब्ध हो जाते हैं। इनको अधिक प्रभावी बनाने के लिए इनके साथ 1–2 प्रतिशत मूगफली का तेल मिलाकर देने से चूहा के द्वारा इनको आसानी खा जाता हैं। इनको चूहे को खिलाने पहले 2–3 दिनो तक को आकर्षित करने के लिये चना व अरहर के दानों को खिलाया जाता है।

चूहे के नियंत्रण मे समय की महत्ता : भारतवर्ष की कृषि प्रणाली मे मई–जून के महीने, खरीफ के मौसम में तथा नवम्बर – दिसम्बर के महीने रबी के मौसम मे खेत खाली रहते हैं, तथा चूहे की उपस्थिति को खेतों मे भी देखा जा सकता है। यह समय चूहे नियंत्रण के उपाय अपनाने के लिए सर्वथा उपयुक्त हैं। इस समय अगर एक साथ योजना बनाकर नियंत्रण किया जावे तो चूहे की जनसंख्या को अचानक कम किया जा सकता हैं। लेकिन इस योजना का प्रभावी क्रियान्वयन करने के लिए सरकारी एवं प्राइवेट संस्थाओ को एक साथ प्रयास करना होगा क्योंकि विस्तृत क्षेत्र मे किसानों की सहभागिता सुनिश्चित करने के लिए यह अति आवश्यक है। इस समय जिंक फास्फाइड का प्रयोग अधिक मात्रा मे करने पर चूहे को आसानी से नियंत्रित किया जा सकता हैं। ऐसा करने पर चूहे जहां भी अपने आवास मे जाएगे वही जिंक फास्फाइड चारे के रूप मे मिलेगा, जिससे वह आसानी से फस जायेगा या भोजन एवं आवास की तलाश मे खुले मे घुमेंगे जिन्हें यांत्रिक विधि से पीट–पीट कर मार सकते हैं। इसके अतर्गत जिंक फास्फाइड का प्रयोग करने पर प्रयोग करने वाले क्षेत्र मे 80 प्रतिशत तक चूहे की जनसंख्या पर रोक लगाया जा सकता हैं, जिससे अगले फसल मौसम मे इसकी जनसंख्या हानिकारक स्तर तक नही पहुंच पायेगी। मानसून आने के पहले मई– जून महीने उपयुक्त होते हैं, क्योंकि इस समय इनके प्रजनन दर कम होती हैं। इस समय इनके आवास में स्थानों की सफाई करे जो कि इनकी सख्या को नीचे ले जाने में मददगार होता हैं। क्योंकि गर्मियों में उचित नमी व छायादार स्थान नहीं होने पर इनका प्रजनन बाधित होता हैं। मुख्यतः जहाँ धान फसल चक्र अपनाया जाता हैं, उन क्षेत्रों में, नवम्बर – दिसम्बर के महीने मे इसका नियंत्रण करने से अगली फसल जैसे गेहू, आलू, मटर इत्यादि फसलों को हानि कम पहुंचाती हैं। इसलिये धान के लिए 30–70 दिनों की फसल होने पर इसके नियंत्रण के प्रभावी कदम उठाने पर घान की फसल में भी हानि कम हो जाती है। गेहूँ की फसल मे कल्ले बनने की अवस्था मे इसके नियंत्रण के उपाय अपनाने चाहिए। गन्ने की फसल मे जुलाई – अगस्त, अक्टूबर – नवम्बर में उपयुक्त प्रभावी नियंत्रण प्रारम्भ करना चाहिए खेत मे चूहे के लिए भोजन की अधिकता होने पर दवाओं का प्रभाव कम हो जाता है।

आर्थिक क्षति स्तर : यह वह स्तर हैं जहाँ हम चूहों के नियंत्रिण के लिये प्रभावी कदम उठाते हैं। यह विभिन्न फसलों मे अलग – अलग हैं। मुख्यतः इसमें चुहकनाशी रसायन की कीमत एवं श्रम लागत हानि के तुलना मे 25 प्रतिशत तक पोल्ट्री में तथा मूंगफली गन्ना में 5–10 प्रतिशत, घान 1–0.1 गेहू में 1:8 तक रहती हैं। चूहो के नियंत्रण में उपयुक्त होने वाले रसायन व विधियों के अभाव के कारण इनका प्रकोप बढ़ता जा रहा हैं। अगर हम प्रसार कार्यकर्ता, प्राइवेट संस्था, समाजिक संस्थाओं को इस ओर जागरूक करे तथा उपयुक्त रसायन जोकि नियंत्रण में प्रभावी हैं, बाजार मे उपलब्ध कराये तो चूहों द्वारा होने वाली हानि को 70–80 प्रतिशत तक आसानी से कम किया जा सकता हैं। इसलिए चूहों के नियंत्रण के महत्व को किसानों तक पहुँचाने की आवश्यकता हैं। जिससे राष्ट्र हित मे अनाज को बचाकर राष्ट्रीय मुद्रा को बचा सके तथा गरीबों तक भोजन अधिक मात्रा मे पहुँच सके क्योंकि यह गरीबों तक पहुँचाने वाले अनाज मे ही 80–90 प्रतिशत हानि पहुचाते हैं।

पपीता के प्रमुख रोग एवं उनका निदान

अतुल कुमार एवं सोनी कुमारी
भाकृअनुप–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

पपीते का बिहार की कृषि में प्रमुख स्थान है। पपीते में 20 से अधिक रोगों का आक्रमण होता है, जिनमें कवक एवं विषाणु जनित रोग प्रमुख हैं। बिहार राज्य में सबसे अधिक समस्या विषाणु जनित रोगों की है जिसके कारण किसान पपीते की खेती में कम रूचि ले रहे हैं।

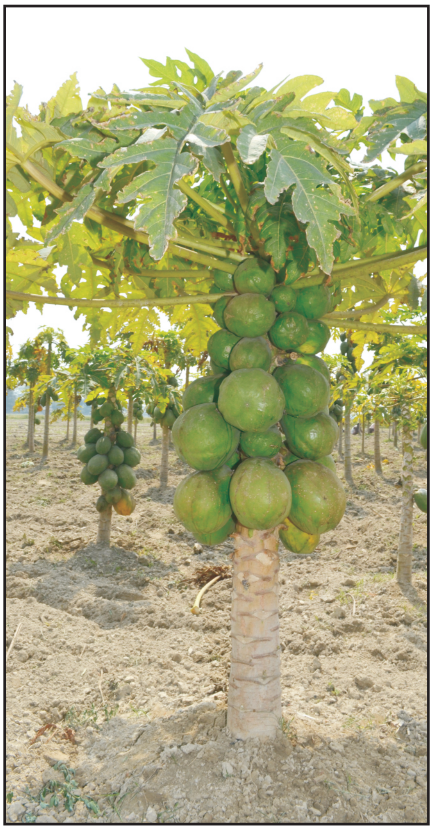

कवक जनित रोग

आर्द्र गलन (डैम्पिंग ऑफ)

यह पौधशाला में लगने वाला गम्भीर रोग है जिससे काफी हानि होती है। इसका कारक कवक पीथियम एफैनिडरमेटम है जिसका प्रभाव नये अंकुरित पौधों पर होता है। इस रोग में पौधे का तना प्रारम्भिक अवस्था में ही गल जाता है और पौधा मुरझाकर गिर जाता है।

नियंत्रण

- पौधशाला में जल निकास का उचित प्रबंध होना चाहिए एवं इसके लिए पौधशाला की उँचाई आस–पास की सतह से उपर होनी चाहिए जिससे जल जमाव न हो।
- नर्सरी की मिट्टी का उपचार फार्मेल्डिहाइड के 2.5 प्रतिशत घोल से करने के बाद 48 घंटे तक पॉलीथीन सीट से ढ़क देना चाहिए।
- बीजोपचाार कार्बेन्डाजिम अथवा मेटालैक्सिल + मेन्कोजेब के मिश्रण से 2 ग्राम/किलो बीज की दर से करें।
- पौधशाला में लक्षण दिखते ही मेटालैक्सिल + मेन्कोजेब के मिश्रण का 2 ग्राम/लीटर पानी से छिड़काव करें।

तना तथा जड़ सड़न रोग (कालर रॉट)

इस रोग में तने के निचले भाग के छाल पर जलीय (गीले) चकत्ते बनते हैं जो बाद में बढ़कर तनों के चारो तरफ से घेर लेते हैं। तने का उपरी छिलका पतला होकर गलने लगता है। उपरी पत्तियाँ मुरझाकर पीली हो जाती है, और पत्तियाँ गिर जाती है। रोगी पौधे में फल नही बनते हैं और यदि बन जाते हैं तो गिर पड़ते हैं। तने के आधार सड़ जाने के कारण पूरा पौधा टूटकर गिर जाता है। इस कारण जमीन के नीचे जड़े गलने लगती है। पौधे की पत्तियाँ पीली पड़ने लगती है और असमय ही नीचे गिरना आरम्भ कर देती है। बाद में सारी पत्तियाँ गिर जाती है और पौधा गलकर जमीन पर गिर जाता हैं।

नियंत्रण

- बगीचे में जल निकास का उचित प्रबंध होना चाहिए।
- रोगी पौधों को जड़ सहित उखाड़कर जला देना चाहिए, और रोगी पौधों के स्थान पर दूसरे नये पौधे नही लगाना चाहिए।
- जून, जुलाई और अगस्त के महीने में पौधों पर आधार से 50 से.मी. की ऊँचाई तक बोर्डो मिश्रण लगाने से रोग से बचा जा सकता है।
- यदि तने में धब्बे दिखाई देते हों तो (मेटालैक्सिल + मेन्कोजेब) का घोल बनाकर 2 ग्राम/लीटर पानी की दर से पौधे के तने के पास मिट्टी में छिड़काव करना चाहिए।

फल सड़न रोग

यह पपीते के फल का प्रमुख रोग है। इसके कई कवक कारक हैं जिसमें कोलेटोट्राईकम ग्लियोस्पोराइड्स प्रमुख है। अध पके एवं पके फल रोगी होते है। इस रोग में फलों के उपर छोटे गोल गीले धब्बे बनते हैं। बाद में ये बढ़कर आपस में मिल जाते हैं तथा इनका रंग भूरा या काला हो जाता हैं। यह रोग फल लगने से लेकर पकने तक लगता है जिसके कारण फल

पकने से पहले ही गिर जाते हैं।

नियंत्रण

- कॉपर आक्सीक्लोराईड 2.0 ग्राम/लीटर पानी में या मेन्कोजेब 2.5 ग्राम/लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करने से रोग में कमी आती है।
- बगीचे में जल निकास का उचित प्रबंध होना चाहिए।
- रोगी पौधों को जड़ सहित उखाड़कर जला देना चाहिए, और रोगी पौधों के स्थान पर दूसरे नये पौधे नही लगाना चाहिए।

कली एवं फल के तनो का सड़ना

यह पपीता में लगने वाली एक नई बीमारी है जो फ्यूजैरियम सोलनाई नामक कवक के द्वारा लगती है। शुरु में इस रोग के कारण फल तथा कलिका के पास का तना पीला हो जाता है जो बाद में पूरे तने पर फैल जाता है। जिसके कारण फल सिकुड़ जाते हैं तथा बाद में झड़ जाते हैं।

नियत्रण

- इसकी रोकथाम के लिए कॉपरआक्सीक्लोराइड (2 ग्राम प्रति लीटर पानी मे) का छिड़काव करना चाहिए।
- रोगी पौधों को उखाड़कर जला देना चाहिए।
- पपीते के बगीचे के आस–पास कद्दू कुल के पौधे नही होने चाहिए।

चूर्णी फफूँद

यह रोग ओडियम यूडिकम एवं ओडियम कैरिकी नामक कवक से होता है। इससे प्रभावित पत्तियों पर सफेद चूर्ण जैसा जमाव हो जाता है जो बाद में सूख जाती हैं।

नियत्रण

- इस रोग की रोकथाम के लिए घुलनशील सल्फर (2 ग्राम प्रति लीटर पानी में) का छिड़काव करना चाहिए।
- रोगी पौधों को उखाड़कर जला देना चाहिए।
- पपीते के बगीचे के आस–पास कद्दू कुल के पौधे नही होने चाहिए।

रिंग स्पॉट रोग/वलय रोग

पपाया वलय चित्ती विषाणु इस रोग का कारक है। इस रोग में पपीते की पत्तियाँ कटी फटी सी हो जाती हैं तथा हर गॉठ पर कटे फटे पत्ते निकलते हैं। पत्तियों के तने तथा फलों पर छोटे गोलाकार धब्बे बन जाते हैं और पौधे की वृद्धि रूक जाती है। पत्ती का डंठल छोटा हो जाता है और पुरानी पत्तियाँ गिर पड़ती है। पत्तियाँ छोटी खुरदरी तथा फफोलेदार हो जाती है। फूल काफी कम लगते हैं, एवं फल का आकार स्वस्थ पौधों की तुलना में काफी कम हो जाता हैं। इस रोग से इस राज्य में पपीते की खेती काफी सीमित होती जा रही है। अगर पहले वर्ष के फल में रोग के लक्षण दिखते है, तो फल तोड़ने के बाद पौधों को उखाड़ देना चाहिए।

बरसात के मौसम में इस किस्म में विषाणु (वाइरस) रोग लगता है जिससे फल का आकार प्रकार विकृत हो जाता है। इससे बचने के लिए खेत के ढ़ंग मे परिवर्तन कर देने से यह रोग नहीं लगता है। इसके लिए सितम्बर माह में बीज नर्सरी या गमलों में बोने चाहिए तथा अक्टूबर–नवम्बर तक पौधे खेत में लगा देने चाहिए। इस तरह प्रथम बरसात का समय रोग मुक्त रखने के लिए बच निकलता है। जाड़े तथा गर्मी में पौधे मजबूत एवं सहनशील हो जाते है। अतः अगले वर्ष बरसात होते ही पपीते के पौधे काफी मात्रा मे फल–फूल देना प्रारंभ कर देते है। अगली बरसात में विषाणु रोग का थोड़ा बहुत प्रकोप होने पर भी फल के गुणों पर कोई खास बुरा प्रभाव नहीं पड़ता है।

नियंत्रण

- रोगी पौधों को उखाड़कर जला देना चाहिए।
- माहूँ के नियंत्रण के लिए डाइमेथेएट 1 मिली/लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।
- पपीते के बगीचे के आस–पास कद्दू कुल के पौधे नही होने चाहिए।
- नीम की खली एवं नीम के तेल का प्रयोग करने से भी रोग में कमी आती है।
- वर्षा ऋतु के समाप्ति के बाद पपीता का बाग लगाने पर यह रोग कम दिखाई देता है।

पर्ण कुंचन रोग

यह पपीते का एक गंभीर विषाणु रोग है। इस रोग के कारण शुरु में पौधों का विकास रुक जाता है और पत्तियाँ गुच्छा नुमा हो जाती है तथा पतियों का आकार छोटा हो जाता है। पत्तियों का उपरी सिरा अन्दर की ओर मुड़ जाता है। प्रभावित पौधें में फूल एवं फल नही लगते हैं।

नियंत्रण

- सफेद मक्खी के नियंत्रण के लिए डाइमेथेएट 1 मिली/लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।
- रोगी पौधों को उखाड़कर जला देना चाहिए।

चीजें जो घटाती हैं कोलेस्ट्रॉल

मिथिलेश तिवारी

भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधन संस्थान, लखनऊ

कोलेस्ट्रॉल एक तरह का वसायुक्त तत्व है जिसका उत्पादन लिवर करता है। यह कोशिकाओं की दीवारों, नर्वस सिस्टम के सुरक्षा कवच और हॉर्मोस के निर्यात में अहम् भूमिका निभाता है। यह प्रोटीन के साथ मिलकर लिपोप्रोटीन बनाता है, जो फैट को खून में घुलने से रोकता है। हमारे शरीर में दो तरह के कोलेस्ट्रॉल होते हैं– एचडीएल (हाई डेंसिटी लिपोप्रोटीन या अच्छा कोलेस्ट्रॉल) और एलटीएल (लो डेंसिटी लिपोप्रोटीन, बुरा कोलेस्ट्रॉल)। एचडीएल यानी अच्छा कोलेस्ट्रॉल काफी हल्का होता है और यह ब्लड वेसेल्स मे जमें फैट को अपने साथ बहा ले जाता है। बुरा कोलेस्ट्राल यानी एलडीएल ज्यादा चिपचिपा और गाढ़ा होता है। अगर इसकी मात्रा अधिक हो तो यह ब्लड वेसेल्स और आर्टरी की दीवारों पर जम जाता है, जिससे खून के बहाव में रूकावट आती है। इसके बढ़ने से हार्ट अटैक, हाई ब्लडप्रेशर और ओबेसिटी जैसी समस्याएँ हो सकती है। कोलेस्ट्रॉल की जाँच के लिए लिपिड प्रोफाइल नामक ब्लड टेस्ट कराया जाता है। किसी स्वस्थ्य व्यक्ति के शरीर में कुल कोलेस्ट्रॉल की मात्रा 200 मिग्रा./डीएल से कम, एचडीएल 60 मिग्रा. डीएल से अधिक और एलडीएल 100 मिग्रा./डीएल से कम होना चाहिए। अगर सचेत तरीके से खानपान में कुछ चीजों को शामिल किया जाए तो बढ़ते कोलेस्ट्रॉल को नियंत्रित किया जा सकता है।

सूखे मेवे

बादाम, अखरोट और पिस्ते में पाया जाने वाला फाइबर, ओमेगा–3 फैटी एसिड और विटामिंस बुरे कोलेस्ट्रॉल को घटाने और अच्छे कोलेस्ट्रॉल को बढ़ाने में सहायक होते है। इनमें मौजूद फाइबर देर तक पेट भरे होने का एहसास दिलाता है। इससे व्यक्ति नुकसानदेह वसायुक्त स्नेक्स के सेवन से बचा रहता है।

- **कितना खाएं** : प्रतिदिन 5 से 10 दाने।
- **ध्यान रखें** : घी–तेल में भुने और नमकीन मेवों का सेवन न करें। इससे हाई ब्लडप्रेशर की समस्या हो सकती है। बादाम–अखरोट को पानी में भिगोकर और पिस्ते को वैसे ही छील कर खाना ज्यादा फायदेमद साबित होता है। पानी में भिगोने से बादाम–अखरोट में मौजूद फैट कम हो जाता है और इनमें विटामिन ई की मात्रा बढ़ जाती है। अगर अखरोट से एलर्जी हो तो इसके सेवन से बचें।

लहसुन

लहसुन में कई ऐसे एंजाइम्स पाए जाते हैं, जो एलडीएल कोलेस्ट्रॉल को कम करने में मददगार साबित होते हैं। वैज्ञानिकों द्वारा किए गए शोध के अनुसार लहसुन के नियमित सेवन से एलडीएल कोलेस्ट्रॉल का स्तर 9 से 15 प्रतिशत तक घट सकता है। इसके अलावा यह हाई ब्लडप्रेशर को भी नियंत्रित करता है।

- **कितना खाएं** : प्रतिदिन लहसुन की दो कलियां छीलकर खाना सेहत के लिए फायदेमंद होता है।
- **ध्यान रखें** : अगर लहसुन के गुणकारी तत्वों का फायदा लेना हो तो बाजार में बिकने वाले गार्लिक सप्लीमेंट्स के बजाय सुबह खाली पेट कच्चा लहसुन खाना ज्यादा अच्छा रहता है। कुछ लोगों को इससे एलर्जी होती है। अगर ऐसी समस्या हो तो लहसुन न खाएं।

ओट्स

ओट्स में मौजूद बीटा ग्लूकॉन नामक गाढ़ा चिपचिपा तत्व हमारी आंतो की सफाई करते हुए कब्ज की समस्या दूर करता है। इसकी वजह से शरीर में बुरे कोलेस्ट्रॅाल का अवशोषण नहीं हो पाता। वैज्ञानिकों द्वारा किए गए अध्ययनों से यह साबित हो चुका है कि अगर तीन महीने तक नियमित रूप से ओट्स का सेवन किया जाए तो इससे कोलेस्ट्रॉल के स्तर में 5 प्रतिशत तक कमी लाई जा सकती है।

- **कितना खाएं** : एक स्वस्थ व्यक्ति को प्रतिदिन लगभग 3 ग्राम बीटा ग्लूकॉन की जरूरत होती है। अगर रोजाना एक कटोरी ओट्स या 2 स्लाइस ओट्स ब्रेड का सेवन किया जाए तो हमारे शरीर को पर्याप्त मात्रा में बीटा ग्लूकॉन मिल जाता है।
- **ध्यान रखें** : ओट्स में मौजूद फाइबर और बीटा ग्लूकॉन पेट में जाकर फूलता है। इससे कुछ लोगों को गैस की समस्या हो सकती है। इसलिए जिन लोगों की पाचन शक्ति कमजोर हो,

उन्हें इससे बचना चाहिए। लैक्टोज, इंटॉलरेंस (दूध की एलर्जी) वाले लोगों को नमकीन ओट्स का सेवन करना चाहिए।

सोयाबीन और दालें

सोयाबीन, दालें और अंकुरित अनाज खून में मौजूद एलडीएल कोलेस्ट्रॉल को बाहर निकालने में लिवर की मदद करते है। ये चीजें अच्छे कोलेस्ट्रॉल को बढ़ाने में भी सहायक होती है।

- **कितना खाएं :** एक स्वस्थ व्यक्ति को प्रतिदिन 18 ग्राम फाइबर की जरूरत होती है। इसके लिए एक कटोरी रेशेदार सब्जियों (भिण्डी, पालक और बींस) के साथ वैकल्पिक रूप से स्प्राउट्स का सेवन पर्याप्त होता है। विशेषज्ञों के अनुसार प्रतिदिन सोयाबीन से बनी दो चीजों का सेवन जरूर करना चाहिए। इससे बैड कोलेस्ट्रॉल के स्तर में 5 प्रतिशत तक कटौती की जा सकती है। इसके लिए एक कटोरी उबला हुआ सोयाबीन, सोया मिल्क, दही या टोफू का सेवन किया जा सकता है।
- **ध्यान रखें :** यूरिक एसिड की समस्या से ग्रस्त लोगों के लिए दालों और सोयाबीन में मौजूद प्रोटीन नुकसानदेह साबित होता है। अगर आपको ऐसी समस्या हो तो इन चीजों का सेवन सीमित मात्रा में करना चाहिए।

नीबू

नीबू सहित सभी खट्टे फलों में कुछ ऐसे घुलनशील फाइवर पाए जाते हैं, जो स्टमक (खाने की थैली) में ही बैड कोलेस्ट्रॉल को रक्त प्रवाह में जाने से रोक देते हैं। ऐसे फलों में मौजूद विटामिन सी रक्तवाहिका नलियों की सफाई करता है। इस तरह बैड कोलेस्ट्रॉल पाचन तंत्र के जरिये शरीर से बाहर निकलता जाता है। खट्टे फलों में ऐसे एंजाइम्स पाए जाते हैं, जो मेटाबॉलिज्म की प्रक्रिया तेज करके कोलेस्ट्रॉल घटाने में सहायक होते हैं।

- **कितना खाएं :** गुनगुने पानी के साथ सुबह खाली पेट आधे नीबू के रस का सेवन करें।
- **ध्यान रखें :** चकोतरा बुरे कोलेस्ट्रॉल को घटाने में बहुत मद्दगार होता है। इसलिए कुछ लोग इसे भी अपनी डाइट में शामिल करते हैं, लेकिन अगर आप पहले से कुछ दवाओं को सेवन कर रहे हैं तो इसे अपनी डाइट में शामिल करने से पहले डॉक्टर से सलाह जरूर लें क्योंकि कुछ दवाओं के साथ इसका बहुत तेजी से केमिकल रिएक्शन होता है, जिसकी वजह से हार्ट अटैक और स्ट्रोक जैसी समस्याएं भी हो सकती है।

ऑलिव ऑयल

इसमें मौजूद मोनो अनसैचुरेटेड कैट कोलेस्ट्रॉल के स्तर को स्थिर रखने में सहायक होता है। यह ऑर्टरी की दीवारों को मजबूत बनाता है। इससे हृदय रोग की आशंका कम हो जाती है। यह हार्ट ब्लडप्रेशर और शुगर लेवल को भी नियंत्रित रखता है। रिसर्च से यह प्रमाणित हो चुका है कि अगर दस सप्ताह तक लगातार ऑलिव आयल में बना खाना खाया जाए तो इससे कोलेस्ट्रॉल के स्तर में 8 प्रतिशत तक कमी आ सकती है।

- **ध्यान रखें :** कुकिंग के लिए वर्जिन ऑलिव ऑयल और सैलेड ड्रेसिंग के लिए एक्सट्रा वर्जिन ऑलिव ऑयल का इस्तेमाल करना चाहिए। कुछ लोगों को इससे एलर्जी भी होती है, अगर ऐसी समस्या हो तो इसके बजाय फलेक्स सीड या राइस ब्रन ऑयल का सेवन किया जा सकता है। ऑलिव ऑयल हाई ब्लडप्रेशर और शुगर को नियंत्रित रखता है, लेकिन इसकी अधिक मात्रा दोनों चीजों को लेवल बहुत कम कर देती है।

सफल कहानी

समेकित कृषि कर एक कृषक ने बदली अपने जीवन की तस्वीर

अजीत कुमार सिंह[1], बृजेश पाण्डेय[1], नेहा राजन[1] एवं विनय कुमार सिंह[2]

[1]दिव्यायन कृषि विज्ञान केन्द्र, राँची, [2]भा.ग.अनु.सं., लखनऊ

कृषक का परिचय

नाम : श्री गन्दुरा उराँव
ग्राम : गुड़गुड़जाड़ी
प्रखण्ड : माण्डर
जिला : राँची
उम्र : 30 वर्ष
शिक्षा : इन्टरमिडिएट
जमीन : 3.2 हेक्टेयर (निजी जमीन)
का रकबा 4.8 हेक्टेयर (लीज पर ली गई)
मोबाईल नं : +91–7250959075

झारखण्ड राज्य की राजधानी राँची से 35 कि.मी. दूर जंगलों एवं पहाड़ों से घिरा हुआ गाँव गुड़गुड़जाड़ी, जहाँ की पूरी आबादी आदिवासी जनजातीय है; वहाँ पर न ही सिंचाई की कोई व्यवस्था थी, न आधुनिक कृषि तकनीकों की कोई जानकारी और न ही जीविकोपार्जन से जुड़ी हुई कोई गतिविधियाँ। सम्पूर्ण गाँव जुए एवं नशे का शिकार था। गाँव के सभी लोग बहुत आलसी किस्म के थे। उन्हीं में से श्री गन्दुरा उराँव एक ऐसा व्यक्तित्व है जो आज पूरे गाँव के लिए एक उदाहरण स्वरुप है। श्री उराँव के ऊपर उनके माता पिता, एक छोटे भाई एवं दो बहनों की जिम्मेदारी थी एवं उनके पास किसी प्रकार के जीविकोपार्जन का कोई साधन नहीं था। वे किसी प्रकार से अपना जीवन यापन कर रहे थे। परन्तु सभी विपरीत परिस्थितियों के बावजूद इस व्यक्ति ने कृषि के विभिन्न स्वरुपों को भली भाँति जानने की कोशिश की एवं कृषि के क्षेत्र में उन्नति कर अपने जीवन को एक नई दिशा देने में सफलता हासिल की।

दिव्यायन कृषि विज्ञान केन्द्र ने दिया जीवन को एक नया आयाम

आधुनिक कृषि तकनीकों को जानने की तीव्र इच्छा एवं कुछ करने के बुलंद हौसलों ने श्री गन्दुरा जी को वर्ष 2006 मे दिव्यायन कृषि विज्ञान केन्द्र, राम कृष्ण मिशन आश्रम, मोरहाबादी, राँची के प्रांगण में लाकर खड़ा कर दिया। यह केन्द्र पूरे झारखण्ड में अपने कृषि एवं कृषि से जुड़े हुए सभी क्षेत्रों में प्रशिक्षण देने की अद्भुत कला में प्रख्यात है। इस केन्द्र में साल भर आंतरिक एवं बाह्य प्रशिक्षण कार्य निरंतर चलता रहता है। श्री गन्दुरा जी ने समेकित कृषि प्रणाली में प्रशिक्षण के लिए नामांकन ले लिया एवं बहुत ही निष्ठा एवं तन्मयता के साथ अपना प्रशिक्षण काल पूरा किया। प्रशिक्षण के अंतराल में गन्दुराजी ने समेकित कृषि के विभिन्न आयामों जैसे बागवानी, कृषि, पशुपालन, मधुमक्खी पालन, केंचुआँ खाद, मशरूम खेती, बत्तख पालन, मुर्गी पालन, मछली पालन आदि के बारे में विस्तार से सीखा। साथ ही आधुनिक कृषि यंत्रों एवं नवीन उन्नत किस्मों की भी जानकारी ली।

आधुनिक तकनीकों के समावेश से कृषि कार्य की शुरुआत

प्रशिक्षण लेने के पश्चात् श्री गन्दुरा जी ने अपनी समस्त उद्यम एवं प्रयास से समेकित कृषि प्रणाली का एक नया प्रतिरूप अपने गाँव में तैयार किया। आज वह कृषि के सभी क्षेत्रों में अपना वर्चस्व बनाए हुए हैं। वे मुख्यतः खाद्यान्न फसलें, नगदी फसलें, सजावटी फसलें आदि की खेती करते हैं। गन्दुराजी ने फूलों की खेतीकर अपनी एक विशिष्ट पहचान बनाई है। वे मुख्यतः गेंदे एवं ग्लैडिओलस जैसे फूलों की खेती करते हैं। उनके कार्य करने का अंदाज एवं तरीका बिल्कुल अलग है जो उन्हें दूसरों से भिन्न बनाता है। वे बाजार के उतरते चढ़ते भाव की जानकारी रखते हैं एवं बाजार की मांग के आधार पर उत्पादन करते हैं। खेती के अलावा वो बत्तख पालन, मुर्गी पालन, बकरी पालन एवं मछली पालन में भी रुचि रखते हैं एवं उनकी वार्षिक आय में इन सभी कारकों का भी योगदान रहता है। आज भी गन्दुरा जी कृषि विज्ञान केन्द्र के वैज्ञानिकों के सम्पर्क में रहते हैं एवं जो भी कृषि संबंधित समस्याएँ आती हैं, वे उनका समाधान उनसे प्राप्त करते हैं।

वर्तमान स्थिति

आज गन्दुरा जी के पास सिंचाई की समुचित व्यवस्था है। नवीन कृषि यंत्र एवं ट्रैक्टर उनके कृषि कार्य में सहयोग दे रहे हैं। उनके पास अपने पाँच कुएँ और लीज पर लिया हुआ एक तालाब है जिसमें वे मत्स्य पालन करते हैं। गन्दुरा जी सरकार की विभिन्न योजनाओं के प्रति बहुत जागरुक रहते हैं एवं अपने ग्राम वासियों को भी समय–समय पर इसकी सूचना देते रहते हैं। वर्ष 2015–16 में उन्होंने अपने गाँव में झारखण्ड सरकार के सहयोग से "पूर्वी भारत में नील हरितक्रांति" योजना के अंतर्गत 125 एकड़ भूमि में धान की डीआरआरएच 2 किस्म के प्रत्यक्षण हेतु बीज लिया है एवं साथ ही 10 एकड़ में तिल की खेती हेतु बीज उपलब्ध कराया है। इसके पूर्व वे कई सारी योजनाएँ कृषि यंत्र से संबंधित ले चुके हैं। इस तरह वो अपने गाँव के लिए एक उत्प्रेरक का काम कर रहे हैं।

सफलता की कुंजी

श्री गन्दुरा जी के इस प्रभावशाली सफलता का मुख्य कारण समेकित कृषि प्रणाली पद्धति है। इसके अलावा उनका आत्मविश्वास, धैर्य, काम करने की तत्परता, एक सफल कार्य योजना एवं बाजार के मांग के आधार पर उत्पादन करने की क्षमता उनकी सफलता की कुंजी है।

निष्कर्ष

श्री गन्दुरा जी दिव्यायन कृषि विज्ञान केन्द्र में प्रषिक्षण लेने से पहले किसी प्रकार अपना एवं अपने परिवार का पालन पोषण कर रहे थे परन्तु प्रशिक्षण के बाद नवीन कृषि तकनीकों के द्वारा उन्होंने सघन कृषि करने में सफलता प्राप्त की एवं आज वे अपने समाज में एक प्रतिष्ठित व्यक्ति के रूप में जाने जाते हैं। श्री गन्दुराजी के द्वारा किए जा रहे कृषि कार्य सराहनीय एवं प्रशंसनीय हैं। उनकी सफलता की कहानी आज के शिक्षित युवावर्ग के लिए एक प्रेरणा स्त्रोत है जो जीविकोपार्जन के लिए कृषि को चयनित करते हैं।

आमोद–प्रमोद प्रभाग

जलवायु परिवर्तन–एक पौराणिक परिप्रेक्ष्य

अशोक कुमार श्रीवास्तव तथा सोमेन्द्र प्रसाद शुक्ल
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

भारतीय संस्कृति साहित्य अनन्त ज्ञान–गरिमा से परिपूर्ण है। इसी श्रृंखला में पुराणों का अत्यन्त सम्मान व गौरवशाली स्थान है।

श्रीमद्भागवत–सुधा सागर (शुक सागर) के स्कन्ध तीन अध्याय 13 ''वाराह अवतार की कथा'' में मनु भगवान ब्रह्मा से कहते है कि ''सब जीवों का निवास स्थान, पृथ्वी इस समय प्रलय के जल में डूबी हुई है। आप इस देवी के उद्धार का प्रयत्न करें''। बाद में वर्णन है कि ब्रह्मा जी की नाक से निकले सूकर के रूप में वाराह अवतार धारी भगवान ने जल में जाकर पृथ्वी का उद्धार किया।

ब्रह्माण्ड पुराण के द्वितीय पाद (अनुशङ्ग) में कल्प एवं मन्वन्तर का विषद वर्णन है तथा इसके चौथे उपसंहार पाद में में कल्प के प्रलय का उल्लेख किया है। ब्रह्माण्ड पुराण में वर्णित युगों के गुण धर्मों में समानता थी, लोग हमेशा युवा रहते थे, सौन्दर्य व आयु में एक बराबर थे तथा वर्ण व्यवस्था नहीं थी, सभी लोग प्राकृतिक वातावरण में रहते थे तथा जलवायु सुखद थी। मनुष्य घुमंतु जीवन व्यतीत करता था। साथ ही पक्षी, हिंसक जीव–जन्तु तथा सर्प नहीं थे। इस युग में ज्ञान की महत्ता सर्वाधिक थी।

इसके बाद आने वाले त्रेता युग में जब धर्म का एक चरण विलुप्त हो गया तथा मात्र एक ही वैदिक संहिता थी। इस युग के प्रारम्भ में वर्षा होती थी तथ वनस्पतियाँ भली प्रकार उगती थी। मनुष्यों ने घुमंतु जीवन शैली छोड़कर पहाड़ों तथा नदियों के किनारे घर बनाकर गाँव, कस्बे आदि में बसना प्रारम्भ कर दिया। ये अपने जीवन निर्वाह की समस्त सामग्री (भोजन आदि) वृक्षों से प्राप्त करते थे किन्तु कुछ जलवायु परिवर्तनों के कारण ये पृथ्वी द्वारा निगल लिए गए या वे लुप्त हो गए। इसके बाद भगवान ब्रह्मा के निर्देश पर पृथ्वी का दोहन करके कृषि व्यवस्था विकसित हुई। साथ ही समाज को सुचारू रूप से चलाने हेतु वर्ण व्यवस्था का निर्धारण, सप्तर्शियों द्वारा स्मृति तथा स्मृति धर्मों का निरूपण तथा राजा की सत्ता तथा कानून व दण्डनीति का निर्धारण हुआ।

ब्रह्माण्ड पुराण के अध्याय 36 में पृथ्वी के दोहन में उल्लेख है कि राजा पृथु के राज्याभिषेक के समय पृथ्वी अन्न हीन हो गई थी जो शायद जलवायु परिवर्तन के कारण था। इससे पहले पृथ्वी बिना जोते बोये भरपूर खाद्य सामग्री मुहैया कराती थी। अपनी प्रजा के कल्याण हेतु राजा पृथु ने पृथ्वी को समतल बनाया तथा दोहन कर अन्न उपजाकर प्रजा के प्राण की रक्षा की। इसी अध्याय में वर्णन है कि अन्य प्रजा जैसे ऋषियों, देवों, पितरों, असुरों, यक्ष तथा पुन्यजनों, राक्षस व पिशाचों, गन्धर्वों सर्पों, वृक्षों तथा लताओं एवं पर्वतों ने अपने ओज व जीवनदायी आवश्यक पदार्थों का पृथ्वी से दोहन किया।

श्रीमद्भागवत–सुधा सागर (शुक सागर) के चतुर्थ स्कन्ध अध्याय 16 ''वन्दीजन द्वारा महाराज पृथु की स्तुति'' के अनुसार कुछ अपरिहार्य कारणों से पृथ्वी में स्वयं ही अन्न एवं औषधियों को अपने भीतर छिपा लिया था तथा पृथ्वी के अन्न हीन होने से भूख के कारण प्रजा जनों के शरीर सूखकर काँटें हो गये थे। उन्होंने राज पृथु से अपने जीवन रक्षा की प्रार्थना की थी। राजा पृथु के बारे में उल्लेख है कि–

जब कभी वर्षा न होगी और प्रजा के प्राण संकट में पड़ जायेंगे, तो ये राजवेषधारी श्री हरि, इन्द्र की भाँति जल बरसा कर उनकी रक्षा करेंगे।

नारद पुराण के पूर्व भाग के प्रथम पाद के 38वीं विषय वस्तु ''चारों युगों की स्थिति का संक्षेप से तथा कलिधर्म का विस्तार से वर्णन एवं भगवान की अद्भुत महिमा का प्रतिपादन'' में उल्लेख है कि कलियुग में सभी मनुष्य अनावृष्टि से भयभीत होकर आकाश की ओर आँखें लगाए रहेंगे और क्षुधा के भय से कातर बने रहेंगे। उस अकाल के समय में मनुष्य कन्द, पत्ते और फल खाकर रहेंगे और अनावृष्टि से अत्यन्त दुःखित होकर आत्मघात कर लेंगे।

ब्रह्माण्ड पुराण के अध्याय 31 में चार युगों का वर्णनः जातियाँ तथा जीवन की अवस्थाओं में द्वापर युग के सांध्यमसा (द्वापर युग का अन्तिम चरण) में अनावृष्टि, अन्य आपदाएँ, रोग व्याधियाँ तथा मृत्यु होने लगी तथा सूखा पड़ने का भय होने लगा। कलियुग में सूखे से प्रभावित होने पर लोग

कृषि सम्बन्धी क्रिया–कलाप छोड़ने लगें। इसका कारण दयनीय अवस्था प्राप्त होने पर लोग अपना मूल स्थान त्यागकर नदियों के किनारे, नमः स्थानों पर (दलदल के पास), समुद्री तटों पर तथा पर्वतीय क्षेत्रों में रहने को विवश हो गये। इन्हें अपने भोजन हेतु सामान्य कृषि उत्पादों, अन्नों के अलावा फल, मूल तथा जीव–जन्तुओं के माँस पर निर्भर रहना पड़ा; शायद तभी से निरामिष (माँसाहारी) आहार प्रचलन में आया।

ब्रह्माण्ड पुराण के विषय 97 में ''श्री विष्णु में भक्ति होने का ज्ञान और कलिधर्म के निरूपण'' में उल्लेख है कि कलियुग में वृष्टि कम होगी; खेती में बहुत कम फल लगेंगे तथा वृक्षों के फल सारहीन होंगे। प्रायः छोटे–छोटे धान्य होंगे तथा अधिकतर बकरियों का दूध मिलेगा।

इसी पुराण के विषय 98 में ''युगान्त काल की अवस्था'' के निरूपण में उल्लेख है कि युगान्त काल में भारी वर्षा, प्रचण्ड आँधी और अधिक गर्मी पड़ेगी। वर्षा काल में आँधी के साथ कंकड़–पत्थरों की वर्षा होगी।

इसी पुराण के विषय 99 में ''नैमित्तिक और प्राकृत प्रलय के निरूपण'' में उल्लेख है कि एक सहस्त्र चतुर्युग बीतने पर भूतल प्रायः क्षीण हो जाता है, सौ वर्षों तक घोर अनावृष्टि होती है तथा अनेकों पार्थिव जीव नष्ट हो जाते है। इसके पश्चात् जगत् के संहार में भी, भगवान विष्णु सूर्य की रश्मियों में स्थित होकर सम्पूर्ण प्राणियों और पृथ्वी में स्थित समस्त जल को सुखा डालते है। समस्त लोगों के दग्ध होने के बाद भारी वर्षा से सम्पूर्ण जगत् आप्लावित हो जाता है तथा चर व अचर सब नष्ट हो जाते हैं।

ऐसी विषम परिस्थितियों से उबरने के लिए भी पुराणों में उपाय वर्णित है। श्रीमद्भागवत–सुधा सागर (शुक सागर) के चतुर्थ स्कन्ध के 18वें अध्याय 'पृथ्वी दोहन' में उल्लेख है कि राजन.............. आपको मुझे समतल करना होगा जिससे कि वर्षा ऋतु बीत जाने पर भी मेरे ऊपर इन्द्र का बरसाया हुआ जल सर्वत्र बना रहे–मेरे भीतर की आर्द्रता सूखने न पायें। यह आप के लिए बहुत मंगलकारक होगा।

इस प्रकार हम देखते है कि हमारे पुराणों में जलवायु परिवर्तन, इससे होने वाले अन्न उत्पादन पर प्रभाव, प्रजाजनों पर प्रभाव तथा इस विषम परिस्थितियों से उबरने हेतु कुछ अपेक्षित उपायों पर भी प्रकाश डाला गया है।

फागुन बदी सुदूज दिन, बादर होय न बीज।
बरसै सावन भादवा, साधो खेलो तीज।।

यदि फागुन बदी दूज को आकाश स्वच्छ हो तो सावन भादो अच्छी वर्षा होगी। आनन्द से तीज का पर्व मनाइए।

❖❖❖❖❖

ना अति बरखा ना अति धूप।
ना अति वक्ता ना अति चूप।।

न तो अत्यधिक वर्षा की अच्छी होती है और न अत्यधिक धूप ही अच्छी है। न तो बहुत बोलना अच्छा है और न अधिक चुप रहना ही अच्छा है।

आमोद–प्रमोद प्रभाग

गन्ना कृषकों की आर्थिक प्रगति में अग्रिम पंक्ति तकनीकी सुपुर्दिगी एक अहम परिप्रेक्ष्य

आर. एस. दोहरे, आर. एफ. ठाकुर' एवं चन्द्र पाल सिंह
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

परिचय

कृषि विकास की नीति निर्माण में यह आवश्यक है कि वैचारिक उपायों को इस प्रकार शामिल किया जाए जिससे जनसांख्यिकीय संरचना में लघु कृषकों के विकास का बोध सर्वोपरि हो। कृषि पर आधारित औद्योगिक सुधारों की दृष्टि से गन्ना एक पहली फसल है जो कि संगठित एवं असंगठित औद्योगिक श्रंखला द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में लाखों लोगों के जीविकोपार्जन में योगदान देती है क्योंकि गुड, चीनी तथा खंडसारी जैसे उद्योगों में गन्ना के कुल उत्पादन का आधे से अधिक हिस्सा कच्चे माल के रूप में उपयोग किया जाता है।

गुजरात राज्य में उगाई जाने वाली प्रमुख फसलों में गन्ना एक महत्वपूर्ण वाणिज्यिक फसल है। इस राज्य में वलसाड एक आदिवासी बाहुल्य जनपद है जहाँ के कृषक गन्ने की खेती को वाणिज्यिक फसल के रूप उगाते हैं। इस जनपद में दक्षिण पश्चिमी मानसून द्वारा जून से सितंबर के महीने में लगभग 63 दिनों में औसतन 2350 मि. मी. वर्षा (जिला प्रोफाइल, 2009) होती है। एक अनुमान के अनुसार, गन्ने की खेती के कुशल प्रबंधन के तहत जनपद में इसका उत्पादन 70 टन प्रति हेक्टेयर है। सत्तर के दशक में सिंचाई के नवीनतम संसाधनों एवं तकनीकों के आने से किसानों का झुकाव गन्ने के वाणिज्यिक उत्पादन की ओर शुरू हुआ परंतु उत्पादन के परम्परागत तरीकों के कारण गन्ने की खेती ज्यादा लाभकारी नहीं हो पाई।

वर्तमान अध्यन के माध्यम से गन्ने की अग्रिम पंक्ति तकनीक सुपुर्दिगी द्वारा कृषकों के प्रक्षेत्रों पर गन्ना उत्पादन की सार्थकता जानने का प्रयास किया गया है। गन्ना उत्पादन बघने के लिए कृषि विज्ञान केंद्र, वलसाड द्वारा अग्रिम पंक्ति तकनीकी हस्तांतरण का कार्य कृषकों के प्रक्षेत्रों पर किया गया।

कार्यप्रणाली और दृष्टिकोण

गन्ने की तकनीकी सुपुर्दिगी प्रक्रिया में कृषि विज्ञान केन्द्र, वलसाड ने कुछ निश्चित मापदण्डों के साथ गाँवों का सर्वेक्षण किया जिसके आधार पर सात गाँवों के किसानों के प्रक्षेत्रों को गन्ना उत्पादन प्रौद्योगिकियों के प्रसार के लिए चयनित किया गया।

'कार्यक्रम समन्वयक, कृषि विज्ञान केंद्र, वलसाड (गुजरात)

इन आदिवासी बाहुल्य गांवों मे कृषकों के यहाँ गन्ने की खेती के परम्परागत तरीकों जैसे कि मिश्रित किस्मों का बीज रोपण, प्रचलित फसल सुरक्षा उपायों का प्रयोग आदि का प्रचलन पाया गया। गन्ने के उन्नत उत्पादन को दृष्टिगत करते हुए राज्य कृषि विश्वविद्यालय द्वारा संस्तुति की गई गन्ने की किस्मों तथा नवीनतम उत्पादन प्रौद्योगिकियों की सिफारिशों को कृषि विज्ञान केन्द्र, वलसाड के अनुदेशात्मक प्रक्षेत्र पर खेत में परीक्षणों के आयोजन के माध्यम से उपयुक्तता के लिए मूल्यांकन किया गया। गन्ने की खेती के लिए गन्ना उत्पादन की कुल तकनीकी जरूरत के आधार पर 55 किसानों को व्यावहारिक प्रशिक्षण प्रदान किया गया। चयनित गन्ने की किस्मों की गुणवत्तायुक्त रोपण सामग्री की उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिए कृषि विज्ञान केन्द्र के अनुदेशात्मक प्रक्षेत्र पर गन्ने का बीज उत्पादन किया गया। गन्ने की किस्मों और उत्पादन की तकनीकों में सुधार सिद्ध उत्पादन क्षमता दिखाने के उद्देश्य से गन्ना कृषकों के खेतों में प्रदर्शनों का आयोजन किया गया। सफल प्रदर्शन प्रक्षेत्रों को गन्ना उत्पादन के नवाचारों में बेहतर विश्वास और उन्हें अपनाने के लिए "फार्मर्स फील्ड स्कूल" के रूप में इस्तेमाल किया गया। लागत और लाभ का अनुपात जानने के लिए प्राप्त आंकघें का विश्लेषण किया गया। पारस्परिक चर्चा सत्र के आयोजन के माध्यम से गन्ना उत्पादन की नवीनतम तकनीकों को अपनाने के गति निरोधकों, उत्पादन में कमी लाने वाले कारकों एवं गन्ने के हितधारकों के साथ पता लगाकर समुचित समाधान निकालने के प्रयास किए गए।

परिणाम और चर्चा

गन्ना उत्पादन में रुकावटें

निश्चित मापदण्डों के साथ गाँवों के सर्वेक्षण के तहत गन्ना उत्पादन में कमी के निम्नलिखित कारकों का का पता चलाय

- **पुरानी किस्मों की व्याप्तता:** कृषकों द्वारा गन्ने की पुरानी किस्मों कोएन 671 और कोएन 97009 की खेती प्रचलित पायी गयी जो प्रायः सूखा रोग से ग्रसित होने वाली, कम उपज वाली तथा जल्दी रोग ग्रसित होने वाली पायी गईं हैं।
- **उच्च गन्ना बीज दर:** किसान प्रायः 6–7 टन प्रति हेक्टेयर रोपण सामग्री का उपयोग करते पाये गए जिससे गन्ना के बीज पर अत्यधिक राशि का खर्च होना पाया गया।
- **अशुद्ध रोपण सामग्री:** किसानों द्वारा गन्ना बीज के चयन को बहुत महत्व न दिए जाने के कारण उन्हें गन्ना बीज रोपण सामग्री के मिश्रित रूप को प्रयोग

करते पाया गया।

- **गन्ने की कम उपज:** गन्ना किसानों के खेतों में अच्छी प्रबंधन प्रथाओं के तहत लगभग 70 टन प्रति हेक्टेयर की पैदावार प्राप्त की गई।
- **गुणवत्तायुक्त बीज की गैर उपलब्धता:** उच्च गुणवत्तायुक्त बीज सामग्री की अनुपलब्धता के साथ– साथ इसके स्रोत तक किसानों की पहुँच अत्यंत सीमित पायी गई ।
- **कृषकों में तकनीकी ज्ञान की कमी:** गन्ना उत्पादकों में इसके उत्पादन से संबन्धित तकनीकी जानकारी का आभाव पाया गया और इसकी खेती के अधिकतर तरीकों में पारंपरिक प्रचलन पाया गया।
- **संसाधनों का अभाव:** आदिवासी किसानों के पास उत्पादन आदानों की लागत को वहन करने की क्षमता में कमी पायी गई।
- **भूमि स्वास्थ्य के प्रति अनभिज्ञता:** ज्यादातर गन्ना कृषक अपने खेत की मृदा के स्वास्थ्य के प्रति उदासीन पाये गए।

तकनीकी हस्तांतरण हस्तक्षेप

- **प्रशिक्षण:** गन्ने की उन्नत किस्मों की रोपण सामग्री, इष्टतम बीज दर, गन्ना बीज का उपचार, रोपण तकनीक, भूमि में पोषण तत्व प्रबंधन, कीट नियंत्रण आदि के लिए गन्ना किसानों का चयन करके उन्हें प्रशिक्षण दिया गया।
- **उन्नत तकनीकी प्रदर्शन:** इसके अन्तर्गत उन्नत किस्मों कोएन 05071 और कोएन 05072 की रोपण सामग्री तथा बीज दर 4.5 टन प्रति हेक्टेयर के साथ भूमि जांच के आधार पर खाद एवं उर्वरकों का प्रयोग तथा बेहतर उत्पादन प्रौद्योगिकियों की उत्पादन क्षमता को प्रदर्शित करने के लिए किसानों के खेतों पर प्रदर्शन लगाए गए।
- **गुणवत्तायुक्त गन्ना बीज की आपूर्ति:** कृषि विज्ञान केन्द्र के अनुदेशात्मक खेत से अधिक उपज देने वाली गन्ना की किस्मों के बीज को लाकर इसकी आपूर्ति सुनिश्चित की गई।
- **किसान फील्ड स्कूल:** बेहतर विश्वास और गन्ना नवाचारों को अपनाने के लिए सफल प्रदर्शन के खेतों को एक संभावित विस्तार उपकरण के रूप में इस्तेमाल किया गया।

प्रदर्शन का परिणाम

प्रदर्शन के आंकड़ों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि स्थानीय चेक किस्म कोएन 671 की भारित औसत गन्ना उपज 81.75 टन प्रति हेक्टेयर और लागत–लाभ अनुपात 1:2.6 की तुलना में प्रदर्शन किस्म कोएन 05071 की भारित औसत गन्ना उपज 108. 25 टन प्रति हेक्टेयर के साथ लागत–लाभ अनुपात 1:4.8 रहा जो कि अपने समकक्ष चेक किस्म से 32.40% अधिक पाया गया। अपने समकक्ष स्थानीय चेक के शुद्ध लाभ रूपये 88688/– प्रति हेक्टेयर की तुलना में प्रदर्शन का शुद्ध लाभ रूपये 193220/– प्रति हेक्टेयर पाया गया जो कि चेक किस्म से रूपये 104532/– अधिक था। इसी प्रकार स्थानीय चेक किस्म कोएन 97009 की भारित औसत गन्ना उपज 82.83 टन प्रति हेक्टेयर और लागत–लाभ अनुपात 1:2.2 की तुलना में प्रदर्शन किस्म कोएन 05072 की भारित औसत गन्ना उपज 97.13 टन प्रति हेक्टेयर के साथ लागत–लाभ अनुपात 1:3.8 रहा जो कि अपने समकक्ष चेक किस्म से 17.31% अधिक पाया गया। अपने समकक्ष स्थानीय चेक के शुद्ध लाभ रूपये 94514/– प्रति हेक्टेयर की तुलना में प्रदर्शन का शुद्ध लाभ रूपये 179514/– प्रति हेक्टेयर पाया गया जो कि चेक किस्मों से रूपये 85000/– अधिक था। शुद्ध लाभ की दृष्टि से उच्च आर्थिक लाभ मुख्यतः गन्ना कृषकों में तनीकी ज्ञान एवं कौशल, खेत में लगाए गए प्रदर्शनों से 'कर के सीखने की प्रवृत्ति', कृषि विशेषज्ञ एवं साथी किसानों से विचार विमर्श तथा उपयुक्त समय पर विशेषज्ञ सलाह का प्रतिफल है। रोपण सामग्री की इष्टतम दर (4.5 टन प्रति हेक्टेयर) का उपयोग करने से गन्ना बीज की लागत में 20 प्रतिशत की कमी आयी और किसानों में प्रचलित दर (6–7 टन/हेक्टेयर) की तुलना में अधिक उपज भी दर्ज की गई।

प्रभावी क्षैतिज विस्तार

सफल प्रदर्शनों का "फार्मर्स फील्ड स्कूल" के रूप में भरपूर दोहन करके गन्ना उत्पादन के क्षैतिज विस्तार को गति दी गई। गन्ना कृषकों की तकनीकी मांग की पूर्ति को अग्रिम पंक्ति तकनीकी सुपुर्दिगी द्वारा उत्तरोत्तर बढ़ाया गया। वर्ष 2002–12 के दौरान 2833 टन गुणवत्तायुक्त गन्ने के बीज का उत्पादन किया गया जिससे 124 हेक्टेयर क्षेत्रफल को आच्छादित करके 1041 गन्ना कृषकों को लाभान्वित किया गया। इस दौरान 97 प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों का आयोजन करके गन्ना कृषकों में ज्ञान और कौशल का स्तर बढ़ाया गया जिससे 65 गावों के 2452 कृषक लाभान्वित हुए। इसी प्रकार 160 प्रक्षेत्र प्रदर्शनों को 39 हेक्टेयर क्षेत्रफल में आयोजित करके गन्ना विकास में तकनीकी नवाचार अपनाने को गति दी गई। सफल खेत प्रदर्शनों का उपयोग "फार्मर्स फील्ड स्कूल" के रूप में करने से तकनीकों का प्रसार किसानों के नेतृत्व में अधिक हितकारी हुआ।

निष्कर्ष

गन्ना कृषकों की आर्थिक प्रगति में अग्रिम पंक्ति तकनीकी सुपुर्दिगी की प्रक्रिया प्रभावी एवं आर्थिक लाभ पहुंचाने में सक्षम है। वलसाड जिले के आदिवासी किसानों को गन्ने की खेती से अधिक उत्पादन और आय लाभ प्राप्त हुआ। गन्ना कृषकों के किफायती उत्थान में यह एक व्यापक परिप्रेक्ष्य है।

आमोद–प्रमोद प्रभाग

सफलता प्राप्ति के सूत्र

आर.एस. चौरसिया
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

''मंजिल उन्ही को मिलती है जिनके सपनो में जान होती है

पंख से कुछ नही होता हौसलों से उड़ान होती है।''

जीवन का प्रत्येक पहलू आज प्रतियोगिता बन चुका है प्रत्येक व्यक्ति और लोगो को पीछे छोड़कर आगे बढ़ना चाहता है किन्तु सफल वही होगा जो सर्वश्रेष्ठ होगा और जिसके हौसले बुलन्द होगे।

सफलता के लिए प्रेरणा, व्यक्तित्व परिश्रम, धैर्य, आशा एवं समय का सदुपयोग बहुत आवश्यक है। जीवन के प्रत्येक कार्य में एक अदृश्य शक्ति कार्य करती है जिसे प्रेरणा कहते है। प्रेरणा मनुष्य को सदैव कुछ न कुछ करने के लिए अग्रसर करती है। व्यक्ति किसी से प्रेरित होकर ही किसी कार्य को करता है।

प्रेरणा को क्रियान्वित करने में तीव्र इच्छा–शक्ति की आवश्यकता होती है। कहा भी गया है कि–संसार में प्रत्येक व्यक्ति बिजयी नही होता, विजयी वही होता है जो सफल होने की दृढ़ इच्छा रखता है। बिना इच्छा शक्ति के किसी कार्य को पूर्ण नही किया जा सकता है।

सफलता प्राप्ति के लिए आत्मविश्वास होना अति आवश्यक है। आत्मविश्वास के महत्व को स्पष्ट करते हुए सैम्युअल जॉनसन ने लिखा है–महान कार्यो के लिए आवश्यक है– आत्मविश्वास। आत्मविश्वास के अभाव में कोई व्यक्ति किसी कार्य को अपने हाथ में ले ही नही सकता, उसे सम्पन्न करने का तो प्रश्न ही नही उठता। आत्मविश्वासी होना सफलता की कुंजी है अतः आत्मविश्वासी बने किन्तु अति आत्मविश्वासी कदापि न बने। किसी ने ठीक लिखा है–

कौन कहता है आसमां में छेद नहीं हो सकता; एक पत्थर तो तबीयत से उछालो यारो।

परिश्रम और संघर्ष – जिसके अभाव में सफलता की कल्पना करना भी व्यर्थ है। एकांग्र मन से निरन्तर प्रयत्न करना सफलता प्राप्ति का मार्ग है सफलता प्राप्ति के लिए कोई छोटा रास्ता न अपनाएं, क्योंकि –''सफलता का कोई रहस्य नही होता यह अधिक परिश्रम चाहती है।''

किसी भी प्रकार का छोटा रास्ता सफलता की चोटी पर नहीं पहुँच पाता है क्योंकि ''सफलता का कोई रहस्य नहीं होता यह अधिक परिश्रम चाहती है।''

समय का सदुपयोग सफलता प्राप्ति के लिए अति आवश्यक है। समय किसी का इंतजार नही करता, यह निरन्तर चलता रहता है। अतः भविष्य के लिए सबसे प्रबन्ध वर्तमान का यथाशक्ति उपयोग है।

व्यक्ति को प्रत्येक कार्य स्वयं ही करना चाहिए। कहा भी गया है – ''किसी कार्य को खूबसूरती से करने के लिए व्यक्ति को कार्य स्वयं ही करना चाहिए।'' व्यक्ति को धैर्य पूर्वक परिणाम की प्रतीक्षा करनी चाहिए क्योंकि प्रत्येक कार्य धीरे–धीरे अपने समय से होता है, अतः अधीर न बनें। कहा भी गया है– धीरे–धीरे रे मना धीरे सब कुछ होय। माली सीचै सौ घड़ा ऋतु आए फल होय।।

सुनहरे भविष्य का सुखद पहलू है– आशा। आशा सूर्य की किरण की भांति है। भविष्य की आकांक्षाओं से चिंतित नही होना चाहिए और न ही विपरीत परिणामों से निराश होकर प्रयास करना ही छोड़ देना चाहिए। व्यक्ति को सदैव अपने अतीत से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए अर्थात् असफलता के कारणों का पता लगाकर उन्हे दूर करने का उपाय खोजना चाहिए।

''अतीत वृत्ततः शिक्षेत् वर्तमानो कृयानृतिः।

लक्ष्य भविष्याभिमुखमृ सन्मार्ग एष नेतरः।।

बूढ़े लोग

आर.एस. चौरसिया, आशुलिपिक
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

सारी उम्र जिन्हे ढोते है घर के बूढ़े लोग।
उनके लिए बोझ होते है घर के बूढ़े लोग।।
उन्हे पता है जब ये पकेगी तब वो नही होंगे।
फिर भी नयी फसल बोते हैं घर के बूढ़े लोग।।
बच्चे कहते है तहजीब नयी क्या सीखेगें।
ये सब तो बूढ़े तोते है घर के बूढ़े लोग।।
कभी देखना, एक उजाला फैला रहता है।
जहां फरिश्तों से सोते है घर के बूढ़े लोग।।
कभी–कभी जब और किसी बूढ़े से मिलते है।
चुपके–चुपके क्यों रोते है घर के बूढ़े लोग।।
इनको छुओ सांप बनकर तब भी ठंडक देंगे।
चन्दन का दरख्त होते है घर के बूढ़े लोग।।
बोझ पाप का बढ़े तो इनके कदमों में रख दो।
तीरथ है, गुनाह धोते है घर के बूढ़े लोग।।

आमोद–प्रमोद प्रभाग

अंडमान के दिल की धड़कन ''हैवलॉक''

आशीष सिंह यादव
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

यूँ तो अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह अपने आप में समुद्र की गोद में बसा छोटा हिंदुस्तान है, लेकिन इन की गोद में हैवलॉक द्वीप को यदि इन सारे द्वीप समूह की धड़कन कहा जाए तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। अंडमान द्वीप पर अपने कार्यकाल में अपने संस्थान के दोस्तों के साथ बिताए दिनों की खुशनुमा यादें मेरे साथ हैं, लेकिन हैवलॉक द्वीप पर बिताए दिन मेरे लिए अविस्मरणीय हैं। हैवलॉक द्वीप का नाम अंग्रेज हुकूमत के प्रधान हेनरी हैवलाक के नाम पर रखा गया है। यह अंडमान का प्रमुख पर्यटन स्थल है और हर साल हजारों–लाखों की संख्या में सैलानी इस द्वीप को देखने तथा रहने आते हैं। पोर्ट ब्लेयर से 55 किलोमीटर दूर उत्तरी पूर्वी दिशा में स्थित हैवलॉक द्वीप के लिए पोर्ट ब्लेयर से दिन में 3 या 4 बार नियमित समय पर फेरी (जलयान) की सुविधा उपलब्ध है, जबकि पवन हंस के हेलीकाप्टर द्वारा भी हैवलॉक पहुंचा जा सकता है।

हैवलॉक द्वीप का दृश्य देखकर एवं इस द्वीप की हरियाली देखकर मन प्रसन्न हो जाता है। हालांकि अंडमान के प्रायः सभी द्वीप हजारों सालों से वन सम्पदा भरपूर हैं तथा प्राकृतिक हरियाली और पेड़ पौधों से परिपूर्ण है। द्वीप पर पहुँचते ही समुद की ठंडी रेत एवं उत्ताल तरंगे हमारा स्वागत करती प्रतीत होती हैं। हम सभी जब भी यहाँ आये, डाल्फिन रिसार्ट में रुकते थे। यह रिसार्ट बिल्कुल समुद्र के तट पर बना है। खिड़की से बाहर देखने पर दूर–दूर तक फैला समुद्र का नीला पानी एवं हरे पेड़ों से ढकी पहाड़ियाँ दिखती हैं। रिसार्ट के किनारे किनारे टहलना बहुत ही अच्छा लगता है। यहाँ के पाँच गाँव गोविन्दनगर, राधानगर, विजयनगर, श्यामनगर, कृष्णानगर के समुद्री तट अपने आप में बहुत अलग हैं। यहाँ का 'राधानगर समुद्री तट' सबसे अच्छा और बढ़िया समुद्री तट है। सन 2004 में टाइम पत्रिका ने इसे एशिया का सबसे बेहतरीन तथा स्वच्छ तट घोषित किया है। यहाँ के सुन्दर समुद्री तट, तटों पर बसे छोटे–छोटे होटल आफर यहाँ के लजीज 'सी फूड' का आनन्द ले सकते हैं। घोंघे, सिप, शंख से बनी न जाने कितने प्रकार की चीजें आप यहाँ खरीद सकते हैं। राधानगर तट से थोड़ी दूर एलीफेंटा तट एक और आकर्षक पर्यटन स्थल है, यहाँ स्नॉर्कलिंग एवं ग्लासबोट पर बैठ कर समुद्र के अन्दर बसते जीवों को देखने का बड़ा रोचक विकल्प है, यहाँ ट्रैकिंग भी बहुत लोकप्रिय है। हैवलॉक द्वीप पर सैलानियों को स्कूबा डाइविंग बहुत पसंद आती है। हैवलॉक द्वीप पर स्कूबा डाइविंग किफ़ायती तथा लोकप्रिय है। हालांकि इन चीजों की जानकारी आपको यहाँ के स्थानीय प्रशासन एवं टूर आपरेटरों के द्वारा भी प्राप्त हो सकती है, जो तमाम इन चीजों की सूचना आपको दे सकते हैं। हमने हैवलॉक का अथ पता करने की कोशिश की तो पता चला कि हैवलॉक का मतलब ही होता है 'रफ्तार' और वाकई यहाँ के माहौल में यह देखा जा सकता है। यहाँ सैलानी चलते हुये, किसी रिक्श में घूमते हुये अपनी ही मौज़ में दिखते हैं। यहाँ टैक्सी, टू व्हीलर या साइकिल भी किराए पर ले सकते हैं। यहाँ आकर यहाँ का नारियल पानी पीना न भूलें। सैलानी यहाँ कि नैसर्गिक सुन्दरता को अपनी आखों में समेटते आनन्दमयी स्मृतियाँ साथ में लेकर लौटते हैं। हैवलॉक द्वीप पर बिताए दिन मेरे स्मृति पटल पर हमेशा अंकित रहेगा। यदि आप कभी अंडमान की यात्रा पर जायें तो 'हैवलॉक द्वीप' की यात्रा अवश्य करें, जहाँ असीमित खुशियाँ और सुकून आपका इन्तजार करते हैं।

आमोद–प्रमोद प्रभाग

"तुम हो"

सैय्यद इरफ़ान अनवर
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान,
लखनऊ

दिन मेरा आज खुश है, तो इसकी वजह तुम हो,
दिल में, मेरे छुपे हैं, वो राज़ मेरे तुम हो।
फूलों के रंगों की सभी, तारीफ़ क्या करें,
इस में है जो बसी वो, खुश्बू की क़बा तुम हो।
बिखरे हैं आसमान में, तारे सभी जगह,
बारिश की धूप में खिला, एक इंद्रधनुष तुम हो।
फूलों की शोख़ डालियाँ, करने लगीं हैं सलाम,
गुलशन भी झूमता है कि, मेहमान मेरे तुम हो।
चढ़ता है यूं नशा कि, बहकने लगे हैं कदम,
मैं खुद को रोकूँ कैसे, कि साक़ी मेरे तुम हो।
कैसे काटूँ राह मैं, अंधेरे बहुत हैं यहाँ,
मैं तुझसे ही पूछता हूँ कि, रहबर भी मेरे तुम हो।
वाबस्ता हूँ इस हद तक, ऐ जान–ए–वफ़ा तुझसे,
मैं तेरी निशानी हूँ, और मेरा पता तुम हो।
आने से तेरे ख़्वाहिशें, ऐसे गईं हैं बदल,
मैं लब को हिलाता हूँ, और दस्त–ए–दुआ तुम हो।
तुम जो मिल गए मुझे तो दिल ने कुछ ऐसा कहा,
मैं आज जो 'अनवर' हूँ, तो इसकी भी वजह तुम हो।
दिल मेरा आज खुश है.......................

गज़ल

आनन्द मोहन श्रीवास्तव
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान
लखनऊ–226002

प्रेम की राह भी क्या निराली, खार ही खार छाये हुये है।
ना सताओं हमें हम तो यूँ ही, इस कद़र चोट खाये हुऐ है।।

जब्त भी कर रहे हैं ये आँसू, कोई गिरने न पायें जमी़ पर।
मेरे दामन पर जितने गिरे है, पूरा दामन जलाये हुये है।।

इन आँखों में तुम ही बसे हों, और ख्यालों में ऐसे रमें हों।
इन्तज़ारी बनी बेकरारी, कितने सपने सजाये हुये हैं।।

राज की बात है क्या सुनाऊँ, कैसे तुमकों सनम भूल पाऊँ।
तारे गिन–गिन गुजारी हैं राते, कितने सदमें उठाये हुये है।।

भूलने की जो कोशिश की उनकों, सारी नाकाम निकली कसम़ से।
हमने जितना भुलाया है उनकों सामने वो ही आये हुये है।।

पूछता अब नहीं हाल कोई, कोई देता तसल्ली न मुझकों।
बस तेरी याद में ऐ सनम् हम, सारे गम को भुलायें हुये है।।

है मुहब्बत की दुश्मन ये दुनियाँ, देखते आ रहे हैं सदा सें।
राह में चल दियें हम भी "आनन्द", याद तेरी बनाये हुए है।।

अक्षय ऊर्जा भंडार समृद्धि का आधार

नीरज सिंह
पूर्व छात्र, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

किसी भी देश की अर्थव्यवस्था उसकी ऊर्जा आवश्यकता और पूर्ति पर निर्भर है। गांव में ऊर्जा की नियमित एवं पर्याप्त आपूर्ति नहीं होने के कारण लोग रोजगार के लिए शहरों की ओर पलायन करते हैं जिसके कारण गांव की अपेक्षा शहरों में भीड़ बढ़ती जा रही है। ऊर्जा आपूर्ति के लिए गैर नवीकरणीय ऊर्जा स्त्रोतों जैसे कोयला, कच्चा तेल आदि पर निर्भरता बढ़ जाने एवं इन स्त्रोतों को अस्तित्व में बनाए रखने के लिए अक्षय ऊर्जा स्त्रोतों से बिजली प्राप्त करने का विकल्प रह जाएगा। अक्षय ऊर्जा नवीकरणीय होने के साथ-साथ पर्यावरण के अनुकूल भी है। भारत में अक्षय ऊर्जा के कई स्त्रोत उपलब्ध हैं। सुदढ़ नीतियों द्वारा इन स्त्रोतों से ऊर्जा प्राप्त की जा सकती है।

सौर ऊर्जा

सूर्य से ऊर्जा प्राप्त करने के लिए फोटोवोल्टेइक सेल प्रणाली का प्रयोग किया जाता है। फोटोवोल्टइक सेल सूर्य से प्राप्त होने वाली ऊर्जा को विद्युत ऊर्जा में बदल देता है। भारत में सौर ऊर्जा की काफी संभावनाएं है क्योंकि देश के अधिकतर हिस्सों में साल में 250-300 दिन सूर्य अपनी किरणें बिखेरता है। फोटोवोल्टेइक सेल के जरिए सूर्य की किरणों से ऊर्जा प्राप्त की जा सकती हैं। सरकार ने वर्ष

2009 में सौर ऊर्जा को बढ़ावा देने के लिए जवाहरलाल नेहरू राष्ट्रीय सौर मिशन का अनुमोदन किया जिसका उद्देश्य वर्ष 2022 तक ग्रिड विद्युत शुल्क दरों के साथ समानता लाने के लिए देश में सौर ऊर्जा प्रौद्योगिकियों का विकास और संस्थापन करना है। सरकार की इस भागीदारी से लोग सौर ऊर्जा को समझने लगे हैं।

देश के टेलीकॉम टॉवर प्रतिवर्ष लगभग 5 हजार करोड़ का तेल जला रहे हैं। यदि वह अपनी आवश्यकता सौर ऊर्जा से प्राप्त करते हैं तो बड़ी मात्रा में डीजल बचाया जा सकता है। सौर ऊर्जा को बढ़ावा देने के लिए लोगों को इसकी ओर आकर्षित करना जरूरी है। लोग इसको समझने तो लगे हैं लेकिन इसका प्रयोग करने से कतराते हैं। सौर ऊर्जा अभी महंगी है और इसके प्रति आकर्षण बढ़ाने के लिए जागरूकता जरूरी है। साथ ही यदि इसे स्टेटस सिंबल बना दिया जाए तो लोग आकर्षित होंगे। समाज के कुछ जागरूक लोगों को इकट्ठा करके पहले उन्हें इसकी ओर आकर्षित किया जाए तो धीरे-धीरे और लोग भी इसका महत्व समझने लगेंगे।

सौर ऊर्जा को विकसित करने में जर्मनी ने सराहनीय कार्य किया है। जर्मनी पहले अपनी ऊर्जा आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आयात पर निर्भर था। उसने अपनी अर्थव्यवस्था सुदढ़ करने और ऊर्जा आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए सौर ऊर्जा को विकसित किया। लगभग 10 लाख घरों में छत पर फोटोवोल्विक सेल लगाए गए जो सफल हुए। आज जर्मनी के लाखों लोगों का रोजगार अक्षय ऊर्जा से जुड़ा हुआ है।

पवन ऊर्जा

भारत में पवन ऊर्जा की अपार क्षमताएं हैं। नवीन और अक्षय ऊर्जा मंत्रालय के अनुसार भारत में वायु द्वारा 48,500 मेगावॉट तक बिजली उत्पादन की क्षमता है। लेकिन पवन ऊर्जा का विकास अभी धीमी गति से हो रहा है। भारत में केवल 12,800 मेगावॉट की क्षमता ही स्थापित की जा सकी है। वायु की तीव्र गति से वायु टरबाइन के घूमने से ऊर्जा प्राप्त होती है, लेकिन यह ऊर्जा वायु की गति पर निर्भर है। टरबाइन के घूमने के लिए 5.5 मीटर/सेकेण्ड की रफ्तार से वायु आवश्यक है। भारत में तमिलनाडु, महाराष्ट्र, गुजरात, कर्नाटक और राजस्थान में पवन ऊर्जा का कार्य चल रहा है।

जल ऊर्जा

जल से बिजली प्राप्त करने का सबसे पुराना तरीका पन बिजली संयंत्र है जो बांध पर निर्भर होते हैं। इसके तहत नदी के पानी को बांध में एकत्रित कर लिया जाता है। इसके बाद बांध का द्वार खोल दिया जाता है और पानी तीव्र गति से पाइप में गिरता है और टरबाइन पर लगते ही टरबाइन चलने लगता है और बिजली का उत्पादन होता है। नदियों का बहता पानी और समुद्र से उत्पन्न ज्वारभाटा व जल तरंगें ऊर्जा का प्रमुख स्त्रोत बन सकते हैं और इससे बड़ी मात्रा में बिजली उत्पादित की जा सकती है। विदित है कि जल का आवेग वायु के आवेग से भारी होता है, अतः छोटे से झरने से भी काफी बिजली बनाई जा सकती है।

भारत की सीमाएं तीन तरफ से समुद्र से घिरी हैं जिसके चलते भारत ऊर्जा

उत्पादन में इसका विशेष लाभ उठा सकता है। समुद्र में उत्पन्न होने वाले ज्वार–भाटे व लहरों से भी बिजली प्राप्त की जा सकती है। इससे ऊर्जा प्राप्त करने के लिए समुद्र के कोल पर बैराज बना दिया जाता है और उसके अन्दर टरबाइन लगे होते हैं। जब ज्वार तीव्र गति से इसके अंदर प्रवेश करती है तो टरबाइन चलता है और बिजली उत्पन्न होती है। इसी तरह जब पानी वापिस बाहर आता है तब भी बिजली पैदा होती है। इसके अलावा समुद्र तट से परे पानी के भीतर चक्कियां लगाने से भी बिजली प्राप्त की जा सकती है। ये चक्कियां ज्वार–भाटे से चलती है। समुद्र में उत्पन्न होने वाली लहरों से भी बिजली प्राप्त की जा सकती है।

भू–तापीय ऊर्जा

भू–तापीय ऊर्जा पृथ्वी से प्राप्त होने वाली ऊर्जा है। पृथ्वी के भीतर गर्म चट्टानें पानी को गर्म करती है और इससे भाप उत्पन्न होती है। ऊर्जा प्राप्त करने के लिए पृथ्वी के गर्म क्षेत्र तक एक सुरंग खोदी जाती है और इसके जरिए भाव को ऊर्जा संयंत्र तक लाया जाता है जिसके पश्चात् टरबाइन घूमने लगते है। भू–तापीय ऊर्जा के लिए लगभग 3 किमी. गहराई तक जमींन के भीतर खुदाई करके जांच करनी होती है।

बायोमास एवं जैव ईंधन

कृषि और वानिकी अवशेषों का प्रयोग ऊर्जा प्राप्त करने के लिए किया जाता है। जैविक पदार्थों से लगभग 16 हजार मेगावॉट बिजली उत्पादित की जा सकती है। भारत की लगभग 90 प्रतिशत ग्रामीण जनसंख्या जैव पदार्थों का प्रयोग खाना बनाने एवं ऊष्णता प्राप्त करने में करती हैं। इसके अलावा कृषि से निकलने वाले व्यर्थ पदार्थ जैसे खाली भुट्टे, फसलों के डंठल, भूसी आदि और शहरों व उद्योगों के ठोस कचरे से भी बिजली बनाई जा सकती है।

गैर पारंपरिक स्त्रोतों से प्राप्त होने वाली ऊर्जा में लचीलापन होता है अर्थात कोयले से ऊर्जा प्राप्त करने के लिए 2 हजार मेगावॉट या इससे ज्यादा का प्लांट लगाना पड़ता है जबकि गैर परंपरागत स्त्रोतों से ऊर्जा प्राप्त करने लिए एक छोटी सी इमारत में भी 15–20 मेगावॉट का प्लांट लगाया जा सकता है। इन स्त्रोतों को चलाने के लिए ज्यादा प्रशिक्षण की भी आवश्यकता नहीं है। कोई भी व्यक्ति इसे आसानी से चला सकता है। अतः अक्षय ऊर्जा के क्षेत्र में कृषिगत शोध संस्थानो एवं विश्वविद्यालयो के आपसी शोध सहयोगी कार्यक्रम चलने से युवा शोधार्थियो को कार्य करने का अवसर मिलने की अपार संभवानाए मौजूद हैं। आज भारत अपनी अक्षय ऊर्जा की क्षमताओं को पहचान लेगा तो कल पूरे विश्व के लिए आदर्श बनेगा।

व्यक्तित्व पर परिवेश का असर

सी.पी. सिंह
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

कबीरा संगत साधु की,
ज्यों गंधी का वास।
जो गंधी कुछ देय नहिं,
तो भी वास सुवास।।

हमारे पौराणिक महाकाव्य गीता में उल्लिखित वर्णन के अनुसार किसी भी व्यक्ति का प्रथम कर्तव्य है कि वह अपने को सर्वोपरि समझ कर दायित्वों को निर्वहन करे। लोगों को अंहकार व अति उत्साह में अपने कर्तव्यों से विमुख नहीं होना चाहिए और न ही कोई ऐसा कार्य करना चाहिए जो कि मर्यादा के विपरीत हो। अमर्यादित व्यक्ति का पतन अवश्यंभावी है जिसे दुनिया की कोई शक्ति नहीं बचा सकती है। अतः मर्यादा का पालन ही अपने आप में मर्यादा है और इस बात का हमेशा ध्यान रखना चाहिए।

व्यक्ति गलत मार्ग क्यों अपना लेता है? उसकी सोच नकारात्मक क्यों हो जाती है? इस पर विचार करना व इसका निराकरण करना अपने आप में एक ज्वलंत विषय है। अगर हम किसी अबोध बालक पर नजर डालेंगे तो हमें इस बात का एहसास होता है कि मनुष्य जन्म से अच्छी या बुरी सोच लेकर पैदा नहीं होता बल्कि वह जो भी सीखता या समझता है अपने परिवेश से ही सीखता है और उसी के अनुसार अपनी सोच बनाता है। अतः हम अपने परिवेश को अच्छा कैसे बनाएं, ताकि आने वाली पीढ़ियों की सोच अच्छी हो और एक स्वस्थ समाज का निर्माण हो सके।

एक सर्वांगीण विकसित व्यक्ति में निहित समस्त आन्तरिक एवं बाह्य लक्षणों के समावेश से किसी व्यक्ति विशेष के व्यक्तिव्त का निर्माण होता है। विज्ञान के नजरिए से अगर इन लक्षणों के उद्रव एवं विकास का विश्लेषण करें तो प्रथम दृष्टया हम यही कहने लगते है कि बच्चे में माता–पिता के अमुक–अमुक गुण या लक्षण परिलक्षित हो रहे हैं जैसे कि बच्चे का रंग, आँख, ओंठ, नाक और बाद में बाल, ऊँचाई, कद, डील–डौल और आवाज तक की तुलना उसके जनकों से करने लगते हैं। यह जननिक लक्षण माता–पिता से बच्चों में वंशानुगत आते रहते हैं। यद्पि इन लक्षणों का पाया जाना भी एक जैविक प्रक्रिया है औश्र इसमें भ्रम की स्थिति नहीं होनी चाहिए। इन जननिक लक्षणों में यदि वांछित लक्षण प्रभावी पाया गया, जिसकी संभावना कम होती है क्यों कि वांछित लक्षण ज्यादातर तिरोहित या कम प्राभावी पाए जाते हैं, तो व्यक्तित्व में चार चांद लग जाते है और यही लक्षण यदि अवांछनीय हों तो व्यक्तित्व में धब्बे का कार्य करते है। मगर इन लक्षणों का व्यक्ति में आना या न आना पूर्णतया प्रकृति पर निर्भर है जिसमें सामान्य जन की भूमिका मात्र जीवनसाथी के चयन तक ही सीमित है।

उपरोक्त जननिक लक्षणों के अतिरिक्त व्यक्तित्व के विकास में जिन महत्वपूण गुणों का समावेश होता है, अधिकतर वह गुण व्यक्ति को उसके परिवेश से प्राप्त होते हैं। बच्चे के जन्म लेते ही इसकी शुरूआत हो जाती है। हालाकि कि हमारे पौराणिक ग्रंथ महाभारत में इस बात का उल्लेख किया गया है कि अभिमन्यु ने गर्भ में ही चक्रव्यूह तोडने की कला अपने पिता अर्जुन से सीख ली थी। इसके अतिरिक्त अमेरिका के सानफ्रांसिसको विश्वविद्यालय के मनोवैज्ञानिको ने दो तिहाई गर्भकाल के बाद बच्चे को छेडने पर उसकी प्रतिक्रिया करने के अवलोकनों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला है कि वह बच्चे ज्यादा कुसाग्र बुद्धि के पाए गए जिन्हें गर्भकाल में क्रिया और प्रतिक्रिया की प्रारम्भिक शिक्षा दी गई।

बच्चा जन्म के पश्चात सर्वप्रथम अपनी मॉ की गोद के परिवेश का अहसास करता है और मॉ के ममत्व के साथ–साथ उसके आन्तरिक और बाह्य गुणों की छत्रछाया में विकसित होने लगता है। मॉ के इन गुणों का सीधा प्रभाव बालक पर पड़ने लगता है, मसलन मॉ के दूध की प्रकृति का प्रभाव उसके शारीरिक विकास पर पड़ता है और इस दूध की प्रकृति पर मॉ के खान–पान की रूचि व उपलब्धता का असर पड़ता है। मॉ के स्वभाव जैसे कि सौम्यता या जिद्दीपन का असर बच्चों में परिलक्षित होने लगता है क्योंकि बच्चे को जब तक भाषा का ज्ञान नहीं होता तब तक वह मॉ की ऑख व चेहरे के द्वारा प्रदर्शित हाव–भावों पर प्रतिक्रिया करने लगता है। यदि यही क्रियाएँ एवं प्रतिक्रियाएँ बारबार दोहराई जाती रहें तो वह बच्चे की आदत बन जाती है कि जिसका सीधा असर व्यक्ति के व्यक्तित्व पर पड़ता है।

जब बच्चे को बोलना सिखाया जाता है या वह स्वयं सीखने लगता है तो भाषा के स्वरों पर कई बार माता–पिता का असर देखा जाता है जो कि पैतृक हो सकता है मगर स्वरों की तीव्रता पर माता–पिता के साथ–साथ परिवार के अन्य सदस्यों का असर भी बच्चों में पाया जाता है। जहाँ तक भाषा की शब्दावली का प्रश्न है वह तो पूर्णतया बच्चे के परिवेश और खासतौर पर परिवार पर निर्भर करती है। इस संदर्भ में

यह कहना भी आवश्यक है कि बच्चे पर भाषा का असर सबसे अधिक उस व्यक्ति का पड़ता है जिसका उसे सर्वाधिक सानिध्य प्राप्त होता है अक्सर पाया गया है कि बच्चियों का समय अपेक्षाकृत माताओं के पास अधिक गुजरता है। बालक या बालिकाओं के शारीरिक विकास में पैतृक गुणों का योगदान तो होता ही है जो कि उसे अपने पित्रों के माध्यम से प्राप्त होते हैं मगर इसमें परिवेश से संबन्धित बिन्दुओं जैसे कि पारिवारिक खान–पान, खाने की अभिरूचि, खाद्य पदार्थों की उपलब्धता, परिवार की क्रय शक्ति, स्वास्थ्य संबंधी जानकारी, खेल कूद या व्यायाम, परिवार एवं आस–पास की स्वच्छता, मित्रों का स्वास्थ्य, मानसिक दबाव या स्वछन्दता आदि का योगदान अपेक्षाकृत अधिक होता है। अगर हम इन बिन्दुओं का विश्लेषण करें तो पाएंगे कि जहॉ शारीरिक विकास में परिवेश संबंधी बिन्दुओं का अधिक महत्व है वहीं मानसिक विकास में पैतृक गुणों का योगदान भी कम नहीं है।

व्यक्तित्व के विकास से अगले चरण में प्रवेश करने पर बच्चों के उपर सबसे अधिक असर उनके मित्रों का पड़ता है क्योंकि बच्चे अपने मन की बात सबसे अधिक मित्रों से शेयर करते हैं। इसका कारण शायद यह होता है लगभग एक ही उम्र के होने से वह एक दूसरे के मनोभावों को अपेक्षाकृत अधिक अच्छी तरह समझते हैं। यहॉ तक देखा गया है कि जब वह बोल तक भी नहीं पाते फिर भी एक दूसरे की बात समझ लेते हैं। इसके बाद बच्चों पर शिक्षकों का गहरा असर पड़ता है क्योंकि वह शिक्षक को ही सिखाने का एकमात्र साधन समझते हैं। उसके बाद विद्यालय के पर्यावरण, जिसमें वहॉ का ड्रेस कोड, पढाई का माध्यम, बात–चीत में भाषा का प्रयोग, शिक्षकों की योग्यता एवं आधुनिक तकनीकों द्वारा उसका अनुप्रयोग, स्वच्छता, अनुशासन, खेल–कूद एवं छात्रावास की सुविधाएं और वहॉ के माहौल के साथ–साथ अन्य गैर शैक्षणिक गतिविधियों आदि प्रमुख हैं'; का विद्यार्थी के व्यक्तित्व पर सीधा एवं गहरा असर पड़ता है। यहॉंतक कि व्यक्ति के जीवन की आगे की कडी का निर्धारण उसकी शैक्षणिक योग्यता एवं विकसित हुए व्यक्तित्व पर ही निर्भर करता है।

व्यक्ति के सामाजिक परिवेश की श्रंखला में उसके परिवार का असर पड़ना स्वाभाविक ही नहीं अपरिहार्य होता है। मॉ–बाप व परिवार के अन्य सदस्यों के बाद पत्नी के आगमन व सानिध्य का असर अलग–अलग व्यक्तियों पर अलग–अलग ढंग से पड़ सकता है, वह इस बात पर निर्भर करता है कि व्यक्ति अपने सिद्धान्तों में कितना कठोर, लचर या समझौतावादी है। आवासीय क्षेत्र में रहने वाले अड़ोसियों–पड़ोसियों के व्यवहार, उनकी शिक्षा, आजीविका, उनके परस्पर सम्बन्धों आदि का असर भी व्यक्ति के व्यक्तित्व पर पड़ता है खासतौर इस परिवेश का असर बच्चों पर अधिक पड़ता है हालांकि महिलाए भी इससे अछूती नहीं रह पाती हैं। सामाजिक ताने–बाने की अगली कड़ी में रिश्तेदार, मित्रगण, मोहल्ले तथा स्थानीय गॉव, कस्बे या शहर के वह लोग आते हैं जिनसे हमारा आए दिन सम्पर्क होता रहता है और विचार–विनमय, आमोद–प्रमोद आदि होता रहता है। इन सभी क्रियाओं एवं प्रतिक्रियाओं से जिस परिवेश का सृजन होता है उसका असर व्यक्ति विशेष के व्यक्तित्व पर पड़ता है।

किसी भी व्यक्ति का जितना समय जहॉ बीतता है वहां के परिवेश का असर पड़ना स्वाभाविक है और सामान्यतः किसी भी का व्यक्ति का अधिकतम समय उसके कार्यस्थल पर ही बीतता है। अगर हम सेवा क्षेत्र को लें तो कार्यस्थल के परिवेश में उसके उच्चाधिकारी एवं अधीनस्थ कर्मचारियों का क्रमशः निर्देशन एवं सहयोग, कार्य करने की प्रचलित प्रणाली, मूलभूत एवं तकनीकी सुविधाएं, सेवा की प्रकृति एवं जिम्मेदारी आदि का प्रभाव व्यक्ति विशेष की कार्यप्रणाली पड़ता है और उसके व्यक्तित्व में परिवर्तन आ सकता है। इसी प्रकार व्यवसाय के परिवेश में वह सभी विषय आते है जो कि व्यवसाय को प्रभावित करते हैं इनमें व्यवसाय का स्तर, गलाकाट प्रतिस्पर्धा, ग्राहकों की सामान्य प्रवृत्ति, व्यवसायी वर्ग की मनोवृत्ति, सरकारी तंत्र का सहयोग एवं हस्तक्षेप, नियम–उपनियम, कर तथा लाइसेंस प्रणाली, क्रेडिड की सुविधा, ट्रांसपोर्ट, विद्युत एवं कानून व्यवस्था आदि प्रमुख है। इन सभी कारकों से मात्र व्यवसाय ही प्रभावित नहीं होता बल्कि व्यवसायी की मनोवृत्ति में परिवर्तन आ सकता है और जिसका असर उसके व्यक्तित्व पर पड़ सकता है। कृषकों का संपर्क समाज के लगभग सभी वर्गों यानि अपने स्वयं के वर्ग के साथ–साथ व्यवसायियों, सरकारी तन्त्र एवं अन्य सेवा प्रदायी वर्गों से बना रहता है और वह सभी व्यक्तित्व को प्रभावित करते हैं।

इन सभी कारकों के अतिरिक्त एवं अहम कारक है जो कि व्यक्ति के व्यक्तित्व प्रभावित करता है वह है जलवायु एवं किसी देश विशेष का निवासी होना। जहॉं जलवायु एवं भौगोलिक स्थिति के अनूकूलन हेतु वहॉ के निवासियों में उपयुक्त शारीरिक परिवर्तन के साथ–साथ मानसिक परिवर्तन होना स्वाभाविक है वहीं देश विशेष की आर्थिक स्थिति, नागरिकों को सरकारी प्रणाली द्वारा प्रदत्त सुविधाएं नागरिक, नागरिक स्वतन्त्रता, देश स्थिति, नागरिकों को सरकारी प्रणाली द्वारा प्रदत्त सुविधाएं, नागरिक स्वतन्त्रता, देश विशेष का इतिहास, वहॉ की सभ्यता का विकास आदि भी व्यक्ति के व्यक्तित्व करते हैं।

व्यक्ति अपने व्यक्तित्व के विकास के आधार पर जीवन की यात्रा में निरंतर बढ़ता रहता है और इस यात्रा से अनेकानेक अनुभवों को प्राप्त करता रहता है। इन अनुभवों का प्रभाव जाने अनजाने उसके

व्यक्तित्व पर पड़ता रहता है और व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास की यह प्रक्रिया निंरतर चलती रहती है। इस कथित यात्रा के अनुभव यदि सुखद एवं सुगम हुए तो व्यक्ति अपेक्षाकृत कम कठोर होता है बजाय उनके जिन्हें कदम–कदम पर कठनाइयॉ, धोखे, छलावा, ढोंग, पाखंड, पक्षपात या उपेक्षा आदि का सामना करना पड़ता है।

जहॉ व्यक्तिगत अनुभवों का जन्म व्यक्ति की जीवन यात्रा में आए परिवेशों से होता है वहीं व्यक्ति के आंतरिक स्वभाव का प्रभाव उसके व्यक्तित्व पर पड़ता है जैसे कि यदि आप अच्छे हैं तो ज्यादातर लोग आपकों अच्छे लगते हैं, आपकी प्रवृत्ति मददगार है तो आपको हर जगह मदद प्राप्त हो जाती है। मगर कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जिनकी आप 99 प्रतिशत मामलों में मदद करते है मगर 1 प्रतिशत मामलों में मदद न कर पाने की स्थिति में आप उनकी नजर में बुरे इंसान बन जाते हैं। अतः स्वार्थी लोगों की संतुष्टि के लिए अपने व्यवहार में अनुचित परिवर्तन लाना व्यक्ति में मानसिक द्वांदता उत्पन्न करता है।

परिवेश और व्यक्तित्व दोनों ही शब्दों की सीमा को सीमित करने का मतलग है कि आप स्वंय को सीमित कर रहे हैं। अतः इस विषय की इतिश्री करना न्योचित न होगा। पाठकों के असीमित विचार मंथन हेतु इस विषय की मात्र शुरूआत करके हम इतिश्री करते हैं।

बिन मौसम की वर्षा

साहब दीन 'दीन'
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

बिन मौसम के बरसात भई, धरती पर विपदा फाटि परी,
सन् दुइ हजार पन्द्रह मइहाँ, यह विकट प्रकति कै मार परी,
पशु–पक्षी हाल बेहाल भये, आमौ के बगिया सूनि परी,
अपना तौ पेटु भरै जस–तस, अब पशुवन का कस पेटु भरी।।1।।

फागुन मा सावन कै फुहार, औ चैत बदरिया भादौं कै,
बैशाखै ओला, बज्रपात, औ चक्रवात बिन मौसम कै,
दाना, भूसा बर्वादभवा, सब रंग बिगरिगा सब्जी कै,
सब खून सुखान किसानन कै, औ सूखिगा पानी आँखिन कै।।2।।

अइस समय का चक्र चला, सगरे सपना–सपना होइगे,
थी खून पसीने की कमाई, वहिके अबतौ लाले होइगे,
बिटिया, लरिका के व्याहै के, सारे सूरज काले होइगे,
हैं बहुत किसानन प्रान तजे, घर 'दीन' बहुत सूने होइगे।।3।।

भू–कम्प

साहब दीन 'दीन'
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

पच्चिस अप्रैल दुइ हजार पन्द्रह, आवा भू–कम्प प्रलय कारी,
नेपाल सहित उत्तर भारत, तिब्बत, भूटान, पाक झारी,
बहुभवन गिरे, बस्ती उजरीं, जन, धन कै हानि भवै भारी,
धरितउ कै छाती फाटि कहूँ भू–स्खलन कहूँ पर भा भारी।।1।।

धरती कांपी जन–जन काँपा, थर्राय गयी दुनिया सारी,
सब प्रगति केर पहिया रुकिगा, नेतन का पाठ मिला भारी,
जो मरे कफन को तरसि गये, जो बचे मुसीबत सिर भारी,
अब नहीं जीविका कोई बची, है राहत पर मारा–मारी।।2।।

नेपाल केरि दुर्दशा देखि कालौ कै पेंडुरी कांपि गवै,
नर–नारिन केर करूण क्रन्दन सुनि–सुनि कै छाती फाटि गवै,
बिटिया, लरिका चिल्लाय रहे उनके ऊपर गिरि गाज गवै,
आँखिन कै आँसू सूखि गये. अब जीवन कै सब आस गवै।।3।।

कुछ चेत करौ कुछ शर्म करौ ना राजनीति इस वक्त करौ,
घड़ियाली आँसू बन्द करौ मिलिकै उन सब की मदद करौ,
अबतौ लकीर का ना पीटौ गा साँप निकरि ना बहस करौ,
कह रही प्रकृति कुछ 'दीन' सुनौ अब तौ मानुष के कर्म करौ।।4।।

दुई हर खेती एक हर बारी।
एक बैल से भली कुदारी।।

दो हल से खेती और एक हल से बाग–बगीचे का काम होता है, किन्तु एक बैल रखने की अपेक्षा तो कुदाल से ही खोलना अच्छा है।

आमोद–प्रमोद प्रभाग

नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति (कार्यालय–3), लखनऊ छमाही प्रगति

नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति (कार्यालय–3) लखनऊ की वर्ष 2015–16 की प्रथम अर्धवार्षिक बैठक दिनांक 16.06.2015 को भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ में की गई। बैठक की अध्यक्षता डा. ओ.के. सिन्हा ने की। बैठक के प्रारम्भ में नराकास (कार्यालय–3) के सचिव डा. पी.के. सिंह ने सभी सदस्य कार्यालयों से आये कार्यालय प्रमुखों एवं अन्य सदस्यों का स्वागत किया। कार्य–सूची के सभी बिन्दुओं पर क्रमवार विस्तृत चर्चा की गयी। सदस्य कार्यालयों में अभी प्रशिक्षण हेतु बचे कार्मिकों की पहचान करके उनकों प्रशिक्षित करने की व्यवस्था की जाए। नराकास (कार्यालय–3) के ई–मेल एकांउट narakas3@yahoo.in से जोड़कर फेसबुक एकांउट बनाया गया है। सभी सदस्य कार्यालय इससे जुड़कर अपने कार्यकलाप एवं उपलब्धियाँ इसमें प्रदर्शित कर सकते हैं। इस दौरान सदस्य कार्यालयों को विभिन्न कार्यो हेतु पुरस्कृत किया गया।

क. कार्यालयी कार्यों हेतु पुरस्कृत कार्यालय

क्र.सं.	कार्यालय	स्थान
1.	पुलिस उप महानिरीक्षक, ग्रुप केन्द्र, केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल, लखनऊ	प्रथम पुरस्कार
2.	मण्डल रेल प्रबंधक कार्यालय, पूर्वोत्तर रेलवे, लखनऊ	द्वितीय पुरस्कार
3.	जगजीवन राम रेलवे सुरक्षा बल अकादमी, लखनऊ	तृतीय पुरस्कार
4.	अनुसंधान अभिकल्प और मानक संगठन, लखनऊ	चतुर्थ पुरस्कार
5.	रेल संरक्षा आयोग, तकनीकी विंग, लखनऊ	पंचम पुरस्कार
6.	कर्मचारी भविष्य निधि संगठन, उप क्षेत्रीय कार्यालय, लखनऊ	षष्टम पुरस्कार
7.	पुलिस महानिरीक्षक, मध्य सेक्टर, केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल, लखनऊ	सप्तम पुरस्कार
7.	पूर्वी उ.प्र. भू. स्था. ऑ.के., भारतीय सर्वेक्षण विभाग, लखनऊ	सप्तम पुरस्कार
8.	अन्वेषण प्रभाग, राष्ट्रीय जल विकास अभिकरण, लखनऊ	अष्टम पुरस्कार
9.	मण्डल रेल प्रबंधक कार्यालय, उत्तर रेलवे, लखनऊ	नवम पुरस्कार
10.	पासपोर्ट कार्यालय, लखनऊ	दशम पुरस्कार

ख. पुरस्कृत राजभाषा पत्रिकाएँ

क्र.सं.	कार्यालय	स्थान
1.	मण्डल रेल प्रबंधक कार्यालय, उत्तर रेलवे, लखनऊ	प्रथम पुरस्कार
2.	राष्ट्रीय मत्स्य आनुवांशिक संसाधन ब्यूरो, लखनऊ	द्वितीय पुरस्कार
3.	मण्डल रेल प्रबंधक कार्यालय, पूर्वोत्तर रेलवे, लखनऊ	तृतीय पुरस्कार
4.	पूर्वी उ.प्र. भू. स्था. ऑ.के., भारतीय सर्वेक्षण विभाग, लखनऊ	सांत्वना पुरस्कार
5.	पुलिस उप महानिरीक्षक, ग्रुप केन्द्र, केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल, लखनऊ	सांत्वना पुरस्कार

शब्दकोश

(पिछले अंक से आगे)

A

Anabiosis	प्रसुप्त जीवन पुनर्जागरण
Anabolism	उपचय
Anabolite	उपचम पदार्थ
Anachoresis	प्रतिगामी कायांतरण
Anacrdisceae	ऐनाकार्डिऐसी
Anacrobe	अवायुजीव
Anadrarius	अपुमंगी
Anadromic	उर्ध्वगामी
Anaerobe	अवामुजीव
Anaerobiosis	अवामुजीवन
Analogous	अनुरूप
Analogous serum	सद्दश सीरम
Analysis	विश्लेषण
Analysis of data	आंकडों का विश्लेषण
Anameta dromous venation	अग्रप चांतरी शिराविन्यास
Ananthous	अपुष्पी
Anaperturate	द्वारकहीन
Anaphase	पश्चावस्था
Anatherous	अकोशतंतुक
Anatomy	शरीर
Anatropous	प्रतीप
Androcyte	पुंकोशिका
Androdioecious	भिन्नोभय पुर्लिगी
Androecium	पुमंग
Androgeneous	पुंजनक
Androgenesis	पुंसोत्पादक
Androphore	पुमंगधर
Anemometer	वायुवेगमापी
Anemophilous	वायुपरागित
Anemophily	वायुपरागण
Anemophobe	वायुभीरू
Anemophyte	वातपरागित पादप
Anesthesia	संवेदनाहरण
Aneuploidy	असुगुणिता
Angiosperm	आवृतवीजी
Angular leaf spot	कोणीय पर्ण दाग
Angusti	सकरा
Anionic exchange	ऋणामनिक विनमम
Anise	सोंफ
Aniseed	सोंफ (बीज)
Anisogamy	असमयुग्मन
Annealing	अनीलीकरण
Annual	वर्षी या वार्षिक
Annual review	वार्षिक पुनरावलोकन
Annual ring	वर्षिक वलय
Annulus	वलयिका
Anomalous growth	असंगत वृद्धि
Anomalous result	असंगत परिणाम
Anomaly	असंगाती
Anomocytic	अनियम कोशिका
Antagonistic fungi	विरोधी कवक
Antagonistic microorganism	विरोधी सूक्ष्मजीव
Antenna	श्रृंगिका
Anthecology	पुष्प परिस्थितिकी
Anther	पुमंग
Anther	परागकोश
Anther culture	पराग संवर्धन
Antheridium	पुंधानी
Antherozoid	प्रमणु
Anthesis	प्रफुल्लन
Anthodium	मुंडक
Anthogenesis	नर मादा उत्पादन
Anthological	पुष्पीम
Anthracanose	एनथ्रिकनोज, रूक्ष रोग
Anthracanose of bean	बीन का रूक्ष रोग
Anthracanose of Cauliflower	फूलगोभी का रूक्ष रोग
Anti	प्रति
Antibiosis	प्रतिजीविता
Antibiotics	प्रतिजैविक औषधिमां
Antibody	प्रतिरक्षी
Anticlinal	अपनतिक
Anticodon	प्रतिकोडॉन, प्रतिकूट
Antigen	प्रतिजन
Antinpetalous	दलभिमुख
Antipodal	प्रतिव्यासांत कोशिका
Antipodal cell	प्रतिव्मासांत कोशिकामें
Antiseptic	रोगाणुरोधक मा प्रतिरोधी
Antiserum	प्रतिलसी मा प्रतिसीरम
Antitoxin	प्रति आविशा
Antittranspirant	प्रतिवाष्पोत्सर्जक

B

Body cell	देह कोशिका
Bog	दलदल
Boiling point	क्वथनाक
Bollistospore	प्रक्षिप्त बीजाणु
Bolt	उत्स्फुटन
Booster dose	अभिवर्धक, वर्धक मात्रा
Boosting	अभिवर्धन
Border flowering	उपान्त पुष्प
Border fruit	उपान्त फल
Border pornchyma	सीमान्त मृदूतक
Bordered pit	परिवेशित गर्त
Bororice	गरमा धान
Botanical name	वानस्पितिक नाम
Botany	वनस्पति–विज्ञान
Bottle gourd	लौकी
Boundary layer	परिसीमा स्तर

C

Coacervate	संराशियन
Coacervate	सहपुंजित
Coaction	सहक्रिया
Coaetaneous	समकालिक
Coagulant	स्कंदक
Coagulation	स्कंनदन, समानता
Coagulin	श्मानक
Coagulum	स्कंद, श्मान, जमा हुआ
Coarse	अपरिष्कृत, स्थूल, मोटा, कचा
Coated	लेप लगा हुआ
Coating	विलेप
Cob	गुल्ली
Coccus	गोलाणु
Cochlea	फली कुंडल
Cocoa	कोको
Coconut	नारियल
Co-cultivation	सह-पालन
Co-culture	सह-संवर्धक
Codominace	सहप्रभाविता
Codominant	सहप्रमुख, सहप्रभावी
Codon	प्रकूट
Coefficient	गुणांक
Coenobiology	संजैविकी
Coenobium	संमंडल
Coenocarpium	संफल
Coenocarpus	समण्डपी
Coenocyte	संकोशिका
Coenosorus	संसोरस
Coenospecies	संजाति
Coenozygote	संयुग्मज
Coenzyme	सहएन्जाइम, सहक्षोभक
Cofactor	सहकारक
Coffee	काफी
Cogeneric	संजातीम मा समजातीम
Cogenric	सहवंशी
Cohesion	संलग्नता, ससंजन
Cohleariform	चम्मचरूपी
Coil	कुंडली
Colchicines	कॉल्चिसिन
Cold blooded	भिन्न तापी
Cold hardiness	शीत सहनशीलता
Cold resistance	शीत रोध
Cold storage	शीत भण्डार
Cold test	शीत परिरक्षण
Cold tolerant	शीत सहिष्णु
Coleoptile	प्राकुर–चोल
Collar rot	परिबन्ध या कंठ सड़न
Collateral	सहगामी
Collateral	शाखिक
Collateral brunch	संपर्पूिवक शाखा
Collateral bundle	वहिः पोशवाही पूल
Collection	संग्रहण
Collenchyma	स्थूल कोणोतक
Collet	त्वचा आवरणहीन स्थल
Colligate	सहयोजी

Colloid	कलिल
Collor	परिबन्ध
Colonial	निवही
Colonization	उपनिवेशन
Colony	जन्तुदल, उपनिवेश, बस्ती
Colorific	वर्णद
Colpus	विदरक
Columella	स्थम्भास्थि
Columella	स्तंभिका
Column	स्तम्भ
Columnar	स्तम्भाकार
Coma	रोमगुच्छ
Comalius	रोमगुच्छी
Combination	संमोजन
Combined	संमोजित
Combining ability	संमोजी क्षमता
Command area	कमान क्षेत्रों
Commensalism	सहभोजिता
Commercial	वाणिज्य सम्बंधी
Commercial crop	वणिज्य फसल
Committed expenditure	प्रतिशत व्ङ्ग
Communis	समाजी
Community	समुदाय
Community complex	समुदाय संमिश्र
Comose	रोमगुच्छी
Compactness	संहनन
Companion cell	सहकोशिका
Companion crop	सहचर फसल
Compatibility	सुसंगतता, निषेच्मता
Compatible	सुसंगत
Compensation point	प्रतिफलबिन्दु
Competence	योग्यता या सामर्थ्य
Competence	क्षमता
Competetive economy	प्रतिस्पर्धात्मक अर्थव्यवस्था
Competetiveness	प्रतिस्पर्धात्मकता
Competition	प्रतियोगिता
Competitive inhibition	प्रतियोगिता निरोध
Compilation	संकलन
Compital	संगामी
Complement	पूरक
Complementary crop	पूरक फसल
Complementary gene	पूरक जीन
Complementation	पूरकीकरण
Complete	द्विपरिदल पुंजी
Complete flower	द्विपरिदल पुंजी पुष्प
Complex race	जटिल प्रभेद
Complexity	गूढ़ता या जटिलता
Component	संघटक, घटक
Composit	गुच्छीम मा सग्रंथित
Composit variety	संकुल प्रजाति
Compositae	कम्पोजिट
Composition	संघटन, संमोजन
Composting	कम्पोस्ट बनाना
Compound	यौगिक, संयुक्त
Compound	यौगिक
Compound leaf	संयुक्त पर्णी

Compression	संपीडन, दबाव
Compression	संपीडाश्म
Computer	कम्प्यूटर
Concentrated	सान्द्रित
Concentration	सान्द्रता
Concentration	संद्र
Concentric	सकेन्द्रीम
Concentric bundle	संकेन्द्री पूल
Concept	अवधारणा
Conceptacle	धानी
Concerned	चिन्तित
Condition	दशा, अवस्था, स्थिति
Conditioned	प्रतिबन्धित
Conditioning	अनुकूलन
Conducting	संवाहक मा प्रवाहक
Conducting tissue	चालक उतक
Conduction	संवहन
Conductivity	संवाहकता मा चालकता
Conduplicate	समंतर्वलित
Cone	शुंक
Conical flask	शंकुकार बोतल
Conjoint bundle	संयुक्त बंडल
Conjuctive use of organo-inorganic fertilizers	कार्बनिक-अकार्बनिक खादों के संमुक्त प्रमोग से
Conjugant	संमुग्मी
Conjugated	संयुग्मित
Conjugated protein	संयुग्मित प्रोटीन
Conjugation	संमुग्मन
Connective tissue	मोजी ऊतक
Consecutive	क्रमागत
Consequent	अनुवर्त्ती
Conservation	संरक्षण
Conservation of bio-diversity	जैव विविधता का संरक्षण
Consistency	टिकाऊपन
Consociation	संसंध
Consolidated	संपीडित
Consolidation	सुदृढ़ीकरण
Consortium	संमुक्तता
Constant	स्थिर, सतत, स्थिरांक
Constituent	अवमव
Constitution	बनावट, संरचना, संघटन
Constitutive enzyme	अहेतुक एन्जाइम
Constraint	अवरोध
Constricted	संकुचित
Constriction	संकुचन
Consumer	उपभोक्ता
Consumptive use	वाष्पन वाष्पोतसर्जन
Contact	संपर्क
Contact herbicide	संस्पर्श शाकनाशी
Contact poison	स्पर्श विष
Contagious	स्पर्शजन्म मा स्पर्शज
Contaminate	संदूषण, दूषित, संक्रमण, संक्रमित
Content	मात्रा, अंश
Continous cropping	निरंतर फसल
Continuous variation	संतत विविधता

Contour	समोच्च रेखा
Contour bunding	समोच्च बांध बांधना
Contour tillage	समोच्च कर्षण
Contractile root	संकुचनशील मूल
Contractile vacuole	संकुचनशील धानी
Contribution	अंशदान
Control	नियंत्रण
Controlled	नियन्त्रित
Convection	संवहन
Convective ventilation	संवहनी संवातन मा वामु संचार
Conventional breeding	परम्परागत प्रजनन
Convergence	अभिसरण
Convergent	अभिसारी
Convergent evolution	अभिसारी विकास
Conversion	रूपन्तरण
Cooperative farming	सहकारी खेती
Coordination	समन्वमन
Copse	गुल्मवन
Coral wood	प्रवाल लकड़ी
Coralline algae	प्रवाली कवक
Cordate	ह्रदयाकार
Corelative	सहसंबंधी
Coriaceous	चर्मिल
Coriander	धनिया
Cork	काग मा काष्ठीम, डाट
Corm	घनकन्द
Corn	मक्का
Corolla	दलपुंज
Corollet	दलक
Corom	धनकंद
Corona	किरीट
Corporation farming	निगम खेती
Corpus	पिंड
Correlation	सह-सम्बन्ध
Correlation linear	रेखीम सह-सम्बन्ध
Corresponding	अनुरूप
Cortex	वल्क
Cortial	वल्कीम
Corticated	वल्किल
Corymb	समशिख पुष्पक्रम
Corymb	समशिख
Cosmopolitan	विश्वव्मापी
Cost	लागत
Cost effectiveness	लागत की प्रभाविकता
Costa	पर्शुका, अग्रशिरा
Costal venation	मध्य शिराविन्यास
Cotton boll	कपास गोलक
Cotton plug	रुई की डाट
Cotton seed	विनौला
Cottony	कपासी
Cotyledom	बीजपत्र
Cotyledons	बीजपत्र
Cotyliform	चक्रीनुमा
Coupling	संलग्नता, संमोजन, युग्मन
Coupling hydraulic	द्रवचालित युग्मन
Covariation	सहविचरण/सहभिन्नता

Cover	आवरण
Cover crop	भूमि संरक्षी फसल
Cover crops	भूमि –संरक्षण सस्य
Cover smut	आवृत कंड
Cowpea	लेबिया

D

Dual purpose variety	दोहरे उपयोग वाली किस्म
Duct	वाहिनी
Ductus	वहिनी
Dumping	सन्निक्षेपण
Dung	खाद, गोबर
Duplicate	द्विक
Duplication	द्विगुणन
Duramen	कठोर द्वारू
Duration	अवधि

E

Eradication	उन्मूलन
Eradiculose	मूलिका रहित
Eramous	शाखारहित
Erianthous	उर्णपुष्पी
Ericaceae	ऐरीकेसी
Erosion	अपरदन

F

Fragmentation	खंडन
Fragrance	सुगंध
Frass	कीटमल
Free central placenta	स्तंभीय बीजांडासन
Free central placentation	मुक्त–अक्षीय बीजांडन्यास
Free space	मुक्त आकाश
Freezing	हिमीकरण
Freezing injury	प्रषीतज क्षति
French bean	फ्रेंचबीन
Frequency factor	आवृति गुणक
Frond	प्रपर्ण
Frost injury	तुषार क्षति
Frost resistance	तुषार प्रतिरोध
Fructiferous	फलधारी
Fructification	फलन
Fructose	फल शर्करा
Frugivorus	फलभक्षी
Fruit blight	फल अंगमारी
Fruit bud	फल कलिका
Fruit cocktail	फल मिश्रण
Fruit cracking	फल–तिड़कन
Fruit crop	फल फसल
Fruit culture	फलोत्पादन
Fruit fall	फलझड़
Fruit fly	फल मक्खी
Fruit fly of mango	आम की फल मक्खी
Fruit fulness	फलिता

G

Grade	श्रेणी, वर्ग
Graded seeds	वर्गीकृत बीज
Grader	ग्रेडर, श्रेणित्र
Gradient	प्रवणता, मात्रा
Grading	श्रेणीकरण
Grading machine	श्रेणिमन मशीन
Graft	कलम, कलम लगाना
Graft hybrid	कलमज संकर
Graftage	कलम बंधन विगलन
Grafted plant	कलमी पौधा
Grafting	कलम बांधना
Grain	दाना, कण, अनाज
Grain clearing	दाने की सफाई
Grain drill	वपित्र
Grain feeding device	बीजपाती साधन
Gram	चना
Graminicolous	तृणवासी
Graminoeous	धासरूपी
Granular	कणिक
Granulate	दानेदार
Granulation	कणिकामन
Granules	दाने, कण, कणिका
Grape bitter rot	अंगूर का कषण
Grass	घास
Grass land	घास वाली जमीन
Gravel	बजरी
Graveolens	तीक्ष्णगंधी
Gravitational water	गुरुत्वीय जल
Gravity	गुरुत्व
Gray	भूरा, धूसर
Grazing	चरना
Great millet	ज्वार
Green	हरा, हरित
Green algae	हरित शैवाल
Green ear disease	हरित वाली रोग
Green fodder	हरा चारा
Green fruit warm	हरित फल कृमि
Green gram	मूंग
Green house	पौधा धर
Green mannure	हरी खाद
Green mold	हरा फफूंद
Green mosaic virus	हरित किर्मीर विषाणु
Green pea	हरा मटर
Green pepper	हरी मिर्च
Greenhouse	पौधघर
Grind	पीसना
Grinder	पीसने की मशीन मा चक्की
Gross energy	कुल, सकल ऊर्जा
Gross production	सकल उत्पादन
Gross return	समग्र प्रफिल
Ground nut	मूँगफली
Ground tissue	आधार ऊतक, भरण–उतक
Growing condition	वर्धन परिस्थितियां
Growing period	वर्धन काल
Growing point	वर्धनांक
Growing seseason	वर्धन मौसम
Growth	वृद्धि
Growth inhibitor	वृद्धिरोधक
Growth cabinet	बढ़वार कोठरी
Growth chamber	बढ़वार, वर्धन कक्ष
Growth curve	वृद्धि वक्र
Growth factor	वृद्धि गुणांक
Growth habit	बढ़वार प्रवृत्ति

H

Hub	नाभि
Hub crop	नाभि सस्य
Hull	तुश
Humid	आर्द्र
Humid climate	आर्द्रजलवायु
Humidification	वामुवीय नमीकरण
Humidifier	आर्द्रता मन्त्र
Humidity	आर्द्रता
Humification	ह्यमूस भवन
Humilis	वामन
Humus	अगलित जीवांश
Husk	भूसी

I

Intine	अंतःचोल
Intracellular	अन्तरकोशकीम
Intracellular	अंतः कोशिका
Intraction	अभिक्रमा, परस्पर प्रतिक्रिमा
Intraseminal	अंतर्बीजीय
Intraspecific	आन्तरजातीय
Intraspesific	अंतःजातीम, अंतर्जातीम
Intrazonal soil	अंतःस्तर मिट्टी
Introduction	प्रवर्तन
Introvert	अन्तर्मुखी
Intrusive growth	अंतर्वेधी वृद्धि
Intussuception	कणाधान
Invasion	प्रकोप
Inventry	वस्तुसूची
Inversion	प्रतिलोमन
Invivo	जीवे
Involucel	सहपत्रिका चक

J

Jurassic	जुरैसिक
Jute	पटसन

K

Knapsack	थैला, झोला, पिठ्ठू
Knock down	कम कर देना

L

Loacal symptoms	स्थानीम लक्षण
Load	लादना
Loam	दोमट
Loam	दुमट
Loam	दुमट
Lobate	पालियुक्त
Lobule	पालिका

Local	वहाँ पर पाये जाने वाला
Local variety	स्थानिय किस्म
Locality of origin	उद्गम स्थल
Localized infection	स्थानीम संक्रमण
Locule	कोष्ठक
Loculicidal	कोष्ठ विदारक
Locus	विस्थल
Lodging of haulm	तनों का पतन, अवशमन
Loganiaceae	लोगेनिएसी
Logarithmic phase	लागेरिथ्मीय प्रावस्था
Logistic support	संबद्ध सामग्री की आपूर्ति द्वारा सहारा प्रदान करना
Logotype	वृत प्ररूप
Long day plant	दीर्घ प्रदीप्तिकाली पौधा
Long shaped variety	लम्बाकार किस्म
Long term experiment	दीर्घावधि प्रमोग, लम्बावधि परीक्षण
Long term storage	दीर्घकालीन भंडारण
Longivity	दीर्घामु, आमुकाल
Loose smut	श्लथ कंड
Loose smut	अनाव तकंड श्लथ कंड
Loose soil	भुरभुरी मिट्टी
Loss of bio-diversity	जैव विविधता की हानि
Low land	निम्न भूमि
Lowest significant different	न्यूनतम सार्थक अन्तर

M

Modeling	प्रतिरूपण मा प्रतिकृति
Moder	कोडिल
Moderated	थोड़ा, हल्का
Modern embryology	आधुनिक भ्रौणिकी
Modes of nutrition	पोषण के प्रकार
Molecular	आणुविक
Mollis	मृदु रोमिल
Monadelphous	एकसंधी
Monandrous	एक पुंकेसरी
Mongoose	नेवला
Monitoring	अनुवीक्षण
Monky puzzle	ऑरोकैरिया
Mono culture	एक धान्य कृषि
Monocarpellary	एकांडपी
Monocarpic	सकृत्फली
Monocaryotic	एक केन्द्र
Monocaulous tree	एक स्तंभीय वृक्ष
Monocephalous	एक मुंडकी
Monochasial	एकलषाखी
Monochromic	एकवर्णी
Monoclinous	उभयलिंगी
Monoclonal	एक कलोनी
Monocolpate	एक विदरकी
Monocotyledon	एक बीजपत्री
Monocotyledons	एकदलीम
Monoecious	उभयलिंगाश्रयी
Monoembryonic	एकभ्रूणी
Monogenesis	अलैंगिक जनन
Monogenic	एकलिंगी
Monohybrid	एकसंकर
Monolet	एकआर
Monomerous	एकभागी
Monopetalous	एकदली
Monophalogy	आकृति विज्ञान
Monophyletic	एकस्रोतोद्भवी
Monoplanetic	एकचल
Monoploid	एकगुणित
Monopodial	एक लाक्षी
Monoporate	एक छिद्रकी
Monopterous	एकपक्ष
Monorichous	एरोकमी
Monosaturated fatty acid	एकल संतृप्त वसीय अम्ल
Monosomic	एकन्यूनसूत्र
Monosperm	एकबीजी
Monospore	एकबीजाणु
Monotocous	सकृत्फली
Monotypic	एकलप्ररूपी
Monoverticillate	एकलचक्रक
Monoxylic	एकदारूक
Monozygotic twins	एक युग्मजी ममज
Moor	मूर
Moraceae	मोरेसी
Morass	अनूप
Morning glory	मार्निंग ग्लोरी
Morphogenesis	संरचना विकास
Morphological	आकारकीम मा बाह्य रूप में
Morphology	आकारिकी
Morphospecies	रूपजाति
Mortality	घातकता
Mortality	मृत्यु संख्या
Mortality rate	मृत्यु दर
Mosaic	मोजेक, किर्मीर
Moss	मॉस
Moth flower	शल्भ पुष्प
Mother cell	जनन कोशिका
Mother of vinegar	चुक्रजननी
Mother plant	मातृ पौधा
Mottling	कर्बुरण
Mould	फफूँदी

N

Nucellar beak	बीजांडकाय चंचु
Nucellar embryo	बीजांडकायिक भ्रूण
Nucellus	बीजांडकाय
Nuciferos	दृढ़फलधर
Nuclear	नाभिकीम या केन्द्रकीम
Nuclear Membrane	केन्द्रकीय झिल्ली
Nucleated	केन्द्रकित
Nucleic acid	नाभिकीम अम्ल
Nuclein	नाभिक प्रोटीन
Nucleolar organizer	केन्द्रिक संधटक
Nucleolus	केन्द्रिक
Nucleoplasm	केन्द्रकद्रव्य
Nucleosome	केन्द्रिकाभ
Nucleur seed	मूलाधार बीज
Nucleus	केन्द्रक
Nucleus seeds	नाभिकीम बीज
Nullisomic	द्विन्यूनसूत्री
Nursery	पौधशाला, नर्सरी, रोपण
Nursery bed	रोपण क्यारी
Nursery sowing	नर्सरी में बोना
Nursery tree	रोपणी वृक्ष
Nut	ढिबरी, दृढ़ फल गुठली
Nutation	शखा चक्रण
Nutmeg	जायफल

O

Orange	संतरा
Orate	छिद्रकयुक्त
Orbicular	सकेन्द्रशल्की
Orchard	फलोद्यान
Orchid	अर्किड
Orchidaceae	अर्किडेसी
Orchis	आर्किस
Order	गण (वर्गीकरण के संदर्भ में)
Order	क्रम
Order ranking	कोटि क्रम
Ordovician	आर्डोविशन
Oreao	पर्वत
Orgadophilous	वनस्थलरागी
Organelle	कोशिकांग
Organic	जैव
Organic	कार्बनिक
Organic Farming	जैविक खेती
Organic mannure	जीवांश खाद
Organic matter	कार्बनिक पदार्थ
Organogenesis	अंग विकास
Organolle	कोशिकांग
Organotrophy	कार्बनिक पोशिता
Orientale	पूर्वी
Orientation	दिक्विन्यास
Origin	उद्गम, उत्पत्ति
Orthocarpus	ऋजुफली

P

Pod borer	शिम्ब बेधक
Pod rot	फली विगलन
Podetium	प्रवृत
Point of infection	संक्रमण बिन्दु
Pointed gourd	परवल
Poisonous	विशाक्त
Polarity	ध्रुवणा
Pollen	पराग
Pollen born	पराग जनित
Pollen chamber	पराग कोष्ठ
Pollen fertility	पराग जनन क्षमता
Pollen parent	पराग जनक
Pollen sac	परागपुट
Pollen sterility	पराग बन्ध्मता
Pollen tube	पराग नलिका
Pollen viability	पराग जीवन क्षमता

Pollinate	परागण
Pollination	परागण की प्रक्रिया, परागण
Pollinium	परागपिंड
Pollutants	प्रदूषक
Poly Saturated fatty acids	असंतृप्त वसीम अम्ल
Polyandrous	पृथक पुंकेसरी
Polyanthous	बहुपुष्पी
Polyaselphous	बहुसंधी
Polycarpellary	पृथक अंडपी
Polychasium	बहुशाखी
Polydelphic	बहुअंडाशयी
Polyembryony	बहुभ्रूणता
Polygamous	सर्वलिंगी
Polygenesis	बहूदभवन
Polygenic	बहुजीनिक
Polygenic character	बहु जीनिक गुण
Polygenic inheritance	बहु जीनिक वंशागति
Polygenic resistance	बहु जीनिक प्रतिरोधकता
Polygonales	पालीगोनेलीज
Polymorphic	पॉलीमार्फिक
Polymorphism	पॉलीमार्फिज्म, बहुरूपता
Polynervous venation	शिराबहुल विन्यास
Polyoicous	बहुलिंगाश्रयी
Polypetalous	पृथक्दलीय
Polyphagous	बहुभक्षी
Polyphyletic	बहुस्रोतोद्‌भवी
Polyploid	बहुगुणित
Polysiphonic	बहुसाइफनी
Polysome	बहुसूत्र
Polyspore	बहुबीजाणु
Polystely	बहुरंभता
Polytenic chromosome	बहुसूत्र गुणसूत्र
Polythene film	पॉलीथीन की पतली पर्त
Polythene lined	पॉलीथीन लगा अस्तर
Polytomous	बहुभाजी
Polyunsaturated fatty acid	बहु असंतृप्त वसीम अम्ल
Pomegranate	अनार
Pomiferous	पोमधर
Ponora	फलवष्तांत
Pooled data	संमोजित आंकड़े
Poplar	पॉप्लर
Population	जीव या पौध संख्या, जनसंख्या
Population dynamics	जनसंख्या गतिकी
Population genetics	समष्टि आनुवंषिकी
Porandrous	रंध्रस्फुटनी
Porate	मुखकी
Pore-space	रन्ध्राकाश
Porogamy	अंडद्वारी प्रवेष
Porosity	सरन्ध्रता
Porous	सरन्ध्र
Portable	सुबाह्य
Porus	मुखक
Position effect	स्थानिक प्रभाव
Positive compound growth	सकारात्मक मिश्रित वृद्धि
Post pollinated nucellus	परागणेत्तर बीजांडकाय
Post-cropping	पश्च शस्मन
Post-emergence herbicide	अंकुरण के पश्चात उपयोगी शाकनाशी
Post-harvest	कटाई-उपरान्त मा फसलोपरान्त
Pot experiment	गमलों में परीक्षण या प्रयोग
Potamophilous	नदीरागी
Potato	आलू
Potato blight	आलू की अंगमारी
Potato wilt	आलू की म्लानि
Potential	सामर्थ्य
Potential	सामर्थ्यता, विभव
Potential disease	प्रबल रोग
Potential inoculum	निवेश द्रव्म सम्भाव्मता
Powdery	चूर्णिल
Powdery mildew	श्वेत चूर्णआसिता, चूर्णिल आसिता

Q

Quarantine plants	संगरोधी पौधे
Quarantine regulation	संगरोधनिममन

R

Ribosome	श्राइबोसोम
Ribulose	श्राइबोलोस
Rice	चावल
Rice downy mildew	चावल की मृदारोमिल फफूंदी
Rice nematode	धान की सूत्रकृमि
Ridge	कटक
Rim	किनारा, उपान्त
Rimose	विदीर्ण
Ring	वलय
Ringens	मुँहखुला
Ripening	पुर्ण विकास
Riverine forest	नदीय जंगल

S

Spatial	आकाशीय
Spatulate	स्पैचुलाट
Specialised farming	विशिष्ट कृषि
Species	जाति, प्रजाति
Specific gravity	विषिष्ट धनत्व, आपेक्षिक घनत्व
Specific heat	विशिष्ट ऊष्मा
Speciosus	सुन्दर
Spermatogenesis	शुक्रजनन
Spiculum	शिखाग्र
Spike	कणिश
Spikelets	शूककामें
Splash	उच्छलन/आस्फालन
Spoilage	विकृत पत्र
Sponsor	प्रवर्तित
Spontaneous	स्वत:उत्पन्न या स्वभाविक
Spontaneous mutation	स्वत: उत्परिवर्तन
Spore	बीजाणु
Sporocarp	बीजाणु–फलिका
Sporoderm	बीजाणु चर्म
Sporogony	बीजाणु उद्‌भवन
Spraying	छिड़काव
Spreeding	फैलनेवाली किस्म
Sprig	उपप्ररोह
Sprigging	तृण रोपण
Sprinkler–irrigation system	सेक्ल सिंचाई प्रणाली
Sprinkler irrigation	छिड़काव सिंचाई
Sprout	अंकूरण
Spudding	स्पडन
Spur	दलपुट,

T

Treatment	उपचार
Treatment	जॉच करना
Tree	पेड़, वृक्ष
Trellis	जाल
Trench	खाई
Trench layering	खाई–दाब

U

Univalent	अयुग्म
Universal veil	परिगुंठिका

V

Viability	जीवनक्षमता
Vigour	ओज
Vine	लता
Vinegar	सिरका
Virescence	हरीतिमागम
Viropescis	विषाणु स्थिरण
Virulence	उग्रता
Virus	विषाणु
Virus disease	विषाणु रोग

W

Wild fruit	वन्य फल
Wilding	वन्यन
Wilt	म्लानि
Wilting	मुरझाना, म्लाना होना
Wilting coefficient	म्लानि गुणांक

X

Xylem	दारु, जाइलम

Y

Yound seed	तरुण बीज

Z

Zygogamy	जाइगोयुग्मन
Zygomorphic	एकव्यास समिति
Zygospore	युग्माणु

अभिषेक कुमार सिंह
सी.पी. सिंह

आपके पत्र

Phone: 0522- 2841022-24
Fax: 0522 – 2841025
Web : www.cishlko.org
e- mail : cishlibrary@gmail.com

भा.कृ.अनु. परिषद – केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान
पुस्तकालय, सूचना एवं सूचीकरण यूनिट
रहमानखेड़ा, डाकघर काकोरी, लखनऊ– 226 101

ICAR-Central Institute For Subtropical Horticulture
Library, Information & Documentation Unit
Rehmankhera, P.O. Kakori, Lucknow – 226 101

F.No.54-1/2015-16/ /739 दिनांक 18/05/2015

सेवा में,
डा0 पी0 के0 सिंह
प्रभारी राजभाषा प्रकोष एवं प्रधान वैज्ञानिक (फसल सुधार)
भा.कृ.अनु.प. – भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान
रायबरेली रोड, पो0 दिलकुशा
लखनऊ 226 002

विषयः पावती 'इक्षु' राजभाषा पत्रिका वर्ष 3 अंक 2 जुलाई – दिसम्बर 2014.

महोदय,

"इक्षु राजभाषा पत्रिका वर्ष 3 अंक 2 जुलाई – दिसम्बर 2014." दिनांक 18/05/2015 को एक प्रति प्राप्त हुई।

राजभाषा पत्रिका इक्षु भेजने के लिए सधन्यवाद।

भवदीय

अध्यक्ष
पुस्तकालय सलाहकार समिति

10343/ AKSMU/ 11/08/2015

Dr. P.K. Singh

PREVIEW MAIL Aug 11, 2015 Tuesday 11:39:20 AM

From: Swami Bhaveshananda
To: rsifko@sancharnet.in
Subject: Acknowledge the receipt of IISR magazine volume no 2
Date: 11 Aug 2015 11:26:48 AM

To,
11, August, 2015
Dr. P.K.Singh
Incharge, Rajbhasa Cell and Principle Scientist (Crop Improvement)
ICAR- Indian Institute of Sugarcane Research,
Rae Bareli Road, Post- Dilkusha, Lucknow- 226002, U.P.
Email: iisrlko@sancharnet.in

Dear Sir,
We thankfully acknowledge the receipt of IISR magazine volume no 2, July to December 2014. We hope this magazine will be informative and useful for scientist & staff of our KVK. We will also send articles for publication for your esteemed magazine time to time.
With regards,

Yours in the Service of God,

(Swami Bhaveshananda)
Secretary

RAMAKRISHNA MISSION ASHRAMA
Divyayan Krishi Vigyan Kendra
Morabadi, RANCHI - 834008 (Jharkhand)
Ph.: 2551008,2551970, Fax : 0651-2552427
E-mail : [illegible]@gmail.com ; Website : www.rkmranchi.org

सेवा में,
डॉ. पी. के. सिंह
प्रभारी, राजभाषा प्रकोष्ठ एवं प्रधान वैज्ञानिक (फसल सुधार)
भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान
लखनऊ – 226002 (उ. प्र.)

महोदय,

भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान द्वारा प्रकाशित राजभाषा पत्रिका 'इक्षु' में प्रकाशित आलेख बहुत सरल होते हैं। इसमें ज्ञान-विज्ञान के आलेख तो होते ही हैं, साथ ही आरोग्य एवं संजीवनी तथा आमोद-प्रमोद से जुड़े विषयों पर भी आलेख प्रकाशित किए जाते हैं। इतने सारे अवयवों के संकलन से यह पत्रिका बहुत ही ज्ञानवर्धक एवं मनोरंजक हो जाती है। इसके लिए इक्षु के संपादक मंडली के सारे सदस्य बधाई के पात्र हैं।

धन्यवाद,

भवदीय,
डॉ. रंजय कुमार सिंह
वरिष्ठ वैज्ञानिक
केन्द्रीय शुष्क अनुसंधान संस्थान
जोधपुर- 342003
राजस्थान

समाचार प्रभाग

लखनऊ **जागरण सिटी** दैनिक जागरण

तकनीक से रूबरू हुए किसान

- भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान में प्रशिक्षण कार्यक्रम

जासं, लखनऊ : भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान द्वारा विकसित तकनीक काश्तकारों के लिए मददगार साबित हो सकती है। संस्थान में इन तकनीकों को देखकर किसान अभिभूत हो गए।

मौका था गन्ना संस्थान में शुरू हुए पांच दिवसीय प्रशिक्षण कार्यक्रम का। कार्यक्रम में बिहार की चीनी मिलों से आए प्रतिनिधियों के अलावा 50 गन्ना किसानों ने हिस्सा लिया। संस्थान के निदेशक डॉ. ओके सिन्हा ने कहा कि किसान संस्थान का अभिन्न अंग है। संस्थान के प्रधान वैज्ञानिक डॉ.एके शाह ने बताया कि प्रशिक्षण कार्यक्रम में किसानों को उन्नत गन्ना तकनीकों पर प्रायोगिक जानकारी देने के लिए प्रतिभागियों को एक दिवसीय बिसवां चीनी मिल, सीतापुर क्षेत्र के गन्ना खेतों का भ्रमण करवाया गया।

गन्ना के साथ मसूर, आलू, धनिया तथा सरसों की फसल देखकर किसानों ने सहफसली के बारे में जानकारी ली। गन्ना की दो पंक्तियों के बीच मसूर तथा धनिया की दो पंक्तियां, सरसों की एक पंक्ति तथा गन्ने की दो पंक्तियों के मध्य ऊंची मेड़ पर आलू की खेती बिसवां मिल क्षेत्र के किसान वैज्ञानिक सलाह पर सफलतापूर्वक कर मुनाफा अर्जित कर रहे हैं।

राष्ट्रीय **सहारा** 2015-16

अपना शहर लखनऊ

गन्ना अनुसंधान संस्थान की तकनीकों से गदगद किसान

हिन्दुस्तान लखनऊ • मंगलवार • 10 फरवरी 2015 04

गन्ना उपज बढ़ाने की तकनीक सीखी

लखनऊ। भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान में सोमवार को बिहार के गन्ना किसानों के लिए पांच दिवसीय कृषक प्रशिक्षण का शुभारंभ हुआ। उद्घाटन निदेशक डा. ओके सिन्हा ने किया।

संस्थान में प्रशिक्षण प्रभारी डा. एके शाह ने बताया कि कार्यक्रम में बिहार के हरिनगर तथा नरकटिया गंज चीनी मिल क्षेत्रों के 50 गन्ना किसानों ने गन्ना खेती के लिये नई तकनीक की जानकारी प्राप्त की। प्रशिक्षण 13 फरवरी तक चलेगा।

अमर उजाला

लखनऊ | शनिवार | 14 मार्च 2015

किसानों को दी गई गन्ने की नई किस्मों की जानकारी

लखनऊ। गन्ने की खेती में आधुनिक शोध को किसानों और इंडस्ट्री तक पहुंचाने के लिए इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ शुगरकेन रिसर्च (आईआईएसआर) तीन दिन की गोष्ठी एग्रोटेक-2015 आयोजित कर रहा है। गोष्ठी के दूसरे दिन शुक्रवार को किसानों और इंडस्ट्री को नई तकनीक से रूबरू कराया गया। आईआईएसआर के प्रधान वैज्ञानिक डॉ. एके साह ने बताया कि नई गन्ना किस्मों का प्रदर्शन किया गया। इस आयोजन में दूसरे वैज्ञानिक संस्थान भी भाग ले रहे हैं। एग्रीकल्चर टुडे ग्रुप के साथ संयुक्त रूप से आयोजित इस कार्यक्रम में संस्थान के निदेशक डॉ. ओके सिन्हा, पूर्व कृषि उत्पादन आयुक्त अनीस अंसारी, एग्रीकल्चर टुडे समूह के अध्यक्ष एमजे खान भी शामिल हुए।

लखनऊ, 14 मार्च 2015 **दैनिक जागरण**

एग्रो-टेक से किसानों को लाभ

- भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान में एग्रो-टेक 2015

डेली न्यूज़ एक्टिविस्ट, लखनऊ 14 मार्च 2015

भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान में एग्रो-टेक 2015 का आयोजन

किसानों को दी गई जानकारी

आज बारिश के आसार

कल्पतरु एक्सप्रेस

'खेती में तकनीक व उपलब्धियों का प्रदर्शन अहम'

नई दिल्ली, मंगलवार, 10 फरवरी, 2015 **भवदीय प्रभात**

भारतीय गन्ना अनुसंधान में बिहार के कृषक सीख रहे हैं गन्ना उपज बढ़ाने की तकनीक

अमर उजाला

लखनऊ | बृहस्पतिवार | 18 जून 2015

आईआईएसआर के वैज्ञानिकों को यूपी का कृषि सम्मान

लखनऊ। भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान (आईआईएसआर), लखनऊ के वैज्ञानिकों को गन्ना शोध कार्य में उल्लेखनीय उपलब्धियां हासिल करने पर प्रदेश का कृषि सम्मान से नवाजा गया है। यहां प्रधान वैज्ञानिक डॉ. एके साह को यूपी कृषि विज्ञान अकादमी के कृषि वैज्ञानिक पुरस्कार से सम्मानित किया गया है। यह पुरस्कार उन्हें नैनी कृषि संस्थान इलाहाबाद में आयोजित तीन दिवसीय तृतीय यूपी कृषि विज्ञान अधिवेशन के समापन समारोह में दिया गया। समारोह में राज्यपाल राम नाईक, इलाहाबाद के सांसद श्यामाचरण गुप्त, अकादमी के महानिदेशक प्रोफेसर राजेन्द्र कुमार मौजूद रहे। संस्थान के पूर्व निदेशक डॉ. सुशील सोलोमन को गन्ना कटाई उपरांत प्रबंधन क्षेत्र में शोध के लिए अकादमी द्वारा लाइफ टाइम अचीवमेंट पुरस्कार दिया गया। वहीं प्रधान वैज्ञानिक डॉ. सुधीर शुक्ला को मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन तथा पेड़ी प्रबंधन में उत्कृष्ट शोध कार्य के लिए यूपी कृषि विज्ञान अकादमी फेलो से सम्मानित किया गया। डॉ. अमरीश चंद्र, अध्यक्ष, पादप दैहिकी एवं जीव रसायन विभाग को अकादमी फेलो सम्मान देने की घोषणा भी की गई।

कल्पतरु एक्सप्रेस 6 लखनऊ, गुरुवार 18 जून 2015

सम्मानित किए गए कृषि वैज्ञानिक

युनाइटेड भारत **समाचार**

लखनऊ, गुरूवार, 18 जून, 2015

कल्पतरु एक्सप्रेस 2 लखनऊ, मंगलवार 20 जनवरी 2015

गन्ना संस्थान में सात दिवसीय प्रशिक्षण शुरू

राष्ट्रीय **सहारा**

समाचार प्रभाग

YOUNG INDIA • YOUNG PAPER

NBT नवभारत टाइम्स

फास्ट न्यूज

बेमौसम बारिश से गन्ने में लगा कीट

■ एनबीटी, लखनऊ : प्रदेश में बेमौसम बारिश और ओले गिरने से गेहूं और दलहन फसलों की तरह गन्ने की फसल को भी नुकसान पहुंचा है। बारिश के कारण गन्ने में पायरिला कीट लग गया है जिससे फसल बर्बाद होने का संकट पैदा हो गया है। गन्ने की फसल में लगे कीटों का सर्वेक्षण सोमवार को भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान लखनऊ के प्रधान वैज्ञानिक डॉ. एके साह ने किया। उन्होंने बिसवाँ चीनी मिल क्षेत्र में गन्ने के खेत में जाकर वहां फसलों का ब्यौरा लिया। जहां यह पाया गया कि सभी खेतों में पायरिला कीट का हमला हो चुका है। डॉ. साह ने गन्ना किसानों को बताया कि पत्तियां पीली पड़नी शुरू हो चुकी हैं। मगर उन्हें परेशान होने की जरूरत नहीं। गन्ने के खेत में पायरिला कीट को खाने वाले कीट इपीरिकेनिया के ककून और अंड समूह भी दिखाई पड़े। इनकी संख्या आने वाले कुछ दिनों में और बढ़ सकती है। इपीरिकेनिया कीट पायरिला कीट को खा लेते हैं जिससे गन्ने की फसल को ज्यादा नुकसान नहीं पहुंचेगा। उन्होंने किसानों को बताया कि जहां पर पायरिला कीट का आक्रमण हो चुका है वहां पर वह इपीरिकेनिया कीट के ककून को पत्ती समेत काटकर पायरिला प्रकोप वाले खेतों में डालकर अपने गन्ने की फसल को बचा सकते हैं।

देशी बीज व खादों पर शोध करें वैज्ञानिक

- भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान में कृषक सम्मेलन

जागरण संवाददाता, लखनऊ : देशी कृषि व्यवस्था, फसलों तथा बीजों पर विदेशी मुल्कों की नजर है। इसलिए वैज्ञानिक देशी बीज बनाने व देशी खादों पर ज्यादा से ज्यादा शोध करें जिससे हमारी पारंपरिक तथा लाभकारी कृषि व्यवस्था बची रहे।

भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान में आयोजित कृषक सम्मेलन को संबोधित करते हुए यह बात सांसद कौशल किशोर ने कही। खेतों में जैविक खाद के प्रयोग को बढ़ावा देने के लिए उन्होंने वैज्ञानिकों, अधिकारियों तथा कृषकों से सम्मिलित प्रयास करने का आह्वान किया। साथ ही उन्होंने संस्थान द्वारा जैविक खादों के उत्पादन तथा किसानों के बीच वितरण के प्रयासों की प्रशंसा की। कौशल किशोर ने संस्थान द्वारा विकसित गन्ना उत्पादन तकनीकों तथा मशीनों का निरीक्षण भी किया।

इस मौके पर संस्थान के निदेशक डॉ. ओके सिन्हा ने संस्थान द्वारा किए जा रहे कार्यों की जानकारी दी। कार्यक्रम में क्षेत्रीय परियोजना निदेशक डॉ. यूएस गौतम, गन्ना विकास निदेशालय के निदेशक डॉ. एससी दिवाकर, केंद्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान के निदेशक डॉ. शैलेंद्र राजन तथा कृषि विज्ञान केंद्र के डॉ. राजेश सिंह मौजूद थे।

सम्मेलन में उपस्थित लोग

सम्मानित किए गए किसान

इस अवसर पर बिटाना देवी, हंस राम, संगीता शर्मा, द्वारिका प्रसाद प्रजापति, मुन्नी लाल, अनिल कुमार शर्मा, कर्ताराम वर्मा, अंगद सिंह तोमर, बृजेश वर्मा, हेमराज, राजनाथ सिंह, कौशल किशोर को प्रशस्ती पत्र व स्मृति चिन्ह देकर सम्मानित किया गया।

मेरठ-मोदीपुरम जागरण

ब्राजील की तर्ज पर संचालन से उबरेगा चीनी उद्योग

अमर उजाला सोमवार | 20 जनवरी 2015

नई तकनीक से बढ़ेगा गन्ना उत्पादन

लखनऊ। गन्ना की खेती और प्रोसेसिंग में नई तकनीक के लिए सात दिवसीय प्रशिक्षण की शुरुआत सोमवार को भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान (आईआईएसआर) में हुई। कार्यक्रम का उद्घाटन संस्थान के निदेशक डॉ. ओके सिन्हा ने किया। डॉ. सिन्हा ने कहा कि नई तकनीक की जानकारी से उन लोगों को फायदा होगा जो गन्ना शोध, चीनी उद्योग तथा निजी क्षेत्र के कृषि निवेश निर्माता कंपनियों में कैरियर बनाना चाहते हैं।

the pioneer

LUCKNOW | TUESDAY | JANUARY 20, 2015

Training on cane production technology begins

PIONEER NEWS SERVICE ■ LUCKNOW

A seven-day training on advances in sugarcane production technology started at Indian Institute of Sugarcane Research in Lucknow on Monday. The training was inaugurated by IISR director OK Sinha.

In his inaugural lecture, Sinha elaborated on the sugarcane scenario in India and remarked that information and knowledge provided through this training might be helpful for trainee students in terms of in-depth knowledge in sugarcane crop and sugarcane production technology.

This knowledge would be of great help for students, especially in making career in sugarcane research, sugar industry and input manufacturers company, he added.

A total of 20 students of BSc (Agriculture), SHIATS (Formerly Allahabad Agricultural University), are participating in this residential training.

According to training incharge and principal scientist AK Sah, during the training programme, lecture sessions on cane varieties, planting methods, seed cane production, crop diversification, nutrient management, micro-propagation, sugarcane diseases and pests, post-harvest management, communication strategy will be organised.

At the same time, learning-by-seeing' sessions on sugarcane production technology and sugarcane machinery will be organised to provide practical exposure to the trainees.

IISR director OK Sinha delivering lecture on the sugarcane scenario in India

कल्पतरु एक्सप्रेस

लखनऊ | बुधवार | 25 मार्च 2015

उन्नत बीज व तकनीक से बढ़ेगी गन्ना उपज

HINDUSTAN TIMES, LUCKNOW
TUESDAY, JANUARY 20, 2015

hindustantimes | metro | 03

Seven-day training in cane production tech underway at IISR

LUCKNOW: Week-long training on advancements in sugarcane production technology started at the Indian Institute of Sugarcane Research on Monday. It is expected all trainees acquire in-depth knowledge of cane production.

Twenty students of BSc (Agriculture) from SHIATS, Allahabad, are participating.

According to in-charge training and principal scientist AK Sah, lectures on cane varieties, planting methods, seed cane production, crop diversification, nutrient management, micro-propagation, sugarcane diseases and pests, post-harvest management and communication strategy will be organised, along with 'learning by seeing' sessions. HTC

दैनिक जागरण | 9

उन्नत किस्मों से बढ़ेगी गन्ने की पैदावार

जनादेश टाइम्स

उन्नत किस्म और तकनीक से बढ़ेगी गन्ने की पैदावार

दैनिक जागरण 20 जनवरी 2015

गन्ना उत्पादन तकनीक पर प्रशिक्षण

जासं, लखनऊ : भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान (आईआईएसआर) में सोमवार को सात दिवसीय प्रशिक्षण कार्यक्रम की शुरुआत हुई। कार्यक्रम का उद्घाटन करते हुए संस्थान के निदेशक डॉ. ओके सिन्हा ने कहा कि यह प्रशिक्षण गन्ना उत्पादकों के लिए काफी लाभकारी होगा। प्रशिक्षण प्रभारी डॉ. एके साह ने बताया कि प्रशिक्षार्थियों को गन्ने की विभिन्न प्रजातियों, बोआई विधि, पोषक तत्व प्रबंधन, कीट प्रबंधन आदि की जानकारी दी जाएगी। कार्यक्रम में इलाहाबाद कृषि विश्वविद्यालय के 20 कृषि स्नातक छात्र भाग ले रहे हैं।

मोदीपुरम, मेरठ में 23 जनवरी 2015 को आयोजित
'किसान–विज्ञान समागम'

21–28 फरवरी, 2015 तक संस्थान में राष्ट्रीय विज्ञान सप्ताह मनाया गया

संस्थान में 19 मार्च, 2015 को आयोजित हिंदी कार्यशाला

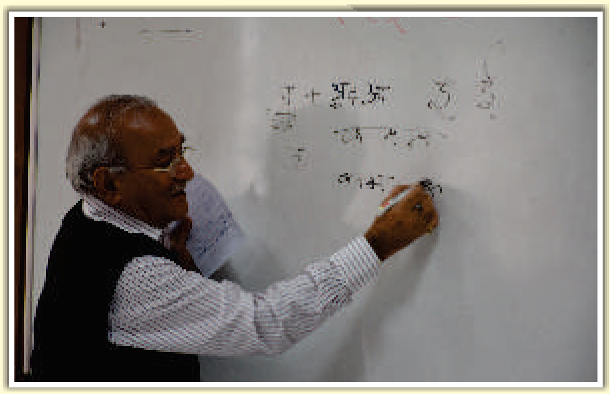

संस्थान में 17 जून, 2015 को आयोजित हिन्दी कार्यशाला

16 जून 2015 को संस्थान में आयोजित नराकास कार्यालय-3 की बैठक

16 जून 2015 को संस्थान में आयोजित नराकास कार्यालय-3 की बैठक

हर कदम, हर डगर
किसानों का हमसफर
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद

Agrisearch with a human touch

भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

विजन

प्रभावी, वैश्विक स्तर पर प्रतिस्पर्द्धात्मक तथा जीवन्त गन्ना कृषि विकसित करना।

मिशन

भारत में चीनी और ऊर्जा की भावी आवश्यकता को पूरा करने के लिए गन्ने के उत्पादन, उत्पादकता, लाभदेयता तथा टिकाऊपन में वृद्धि करना।

उद्देश्य एवं ध्येय

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा सन् 2001 में अनुमोदित संस्थान का अधिदेश निम्नवत है :

- गन्ने तथा अन्य शर्करा फसलों के उत्पादन एवं सुरक्षा तकनीकों के सभी पक्षों पर मूलभूत एवं प्रयुक्त शोध करना
- गन्ना प्रजनन संस्थान, कोयम्बटूर के सहयोग से उपोष्ण क्षेत्रों हेतु प्रजातियों के प्रजनन का कार्य करना
- गन्ना में फसल विविधता एवं मूल्य संवर्द्धन पर अनुसंधान
- समन्वित शोध, सूचना तथा प्रजनन सामग्री के परस्पर आदान–प्रदान हेतु राज्य कृषि विश्वविद्यालयों, शोध संस्थानों और अन्य संस्थानों के साथ सहयोग स्थापित करना।
- क्षेत्रीय, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तरों पर कृषकों, उद्योगों तथा अन्य उपयोगकर्ताओं को प्रशिक्षण, सलाह और विशेष सेवाएं प्रदान करना।